भूदान-गंगा

[प्रथम खण्ड]

विनोबा

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन
राजघाट, काशी

निवेदन

पू० विनोबाजी के गत पाँच वर्षों के प्रवचनों में से महत्त्वपूर्ण प्रवचन तथा कुछ प्रवचनों के महत्त्वपूर्ण अंश चुनकर यह संकलन तैयार किया गया है। संकलन के काम में पू० विनोबाजी का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है। पोचमपल्ली, १८-४-'५१ से पोचमपल्ली, ३०-१-'५६ तक की यात्रा का काल उन्हींकी सलाह के अनुसार चुना गया है। गंगा तो सतत बहती ही रहेगी।

संकलन के लिए अधिक-से-अधिक सामग्री प्राप्त करने की चेष्टा की गयी है। फिर भी कुछ अंश अप्राप्य रहा।

भूदान-आरोहण का इतिहास, सर्वोदय-विचार के सभी पहलुओं का दर्शन तथा शंका-समाधान आदि दृष्टिकोण ध्यान में रखकर यह संकलन किया गया है। इसमें कहीं-कहीं पुनरुक्ति भी दिखेगी। किन्तु रस-हानि न हो, इस दृष्टि से उसे रखना पड़ा है।

संकलन का आकार सीमा से न बढ़े, इसकी ओर भी ध्यान देना पड़ा है। यद्यपि यह संकलन एक दृष्टि से पूर्ण माना जायगा, तथापि उसे परिपूर्ण बनाने के लिए जिज्ञासु पाठकों को कुछ अन्य भूदान-साहित्य का भी अध्ययन करना पड़ेगा। सर्व-सेवा-संघ की ओर से प्रकाशित १. कार्यकर्ता-पाथेय, २. साहित्यिकों से, ३. सर्वोदय के आधार, ४. संपत्तिदान-यज्ञ, ५. जीवन-दान, ६. शिक्षण-विचार और सस्ता साहित्य-मण्डल की ओर से प्रकाशित १. सर्वोदय का घोषणा-पत्र, २. सर्वोदय के सेवकों से जैसी पुस्तकों को इस संकलन का परिशिष्ट माना जा सकता है। संकलन के कार्य में यद्यपि पू० विनोबाजी का सतत मार्ग-दर्शन प्राप्त हुआ है, फिर भी विचार-समुद्र से मौक्तिक चुनने का काम जिसे करना पड़ा, वह इस कार्य के लिए सर्वथा अयोग्य थी। त्रुटियों के लिए क्षमा-याचना।

—निर्मला देशपांडे

अनुक्रम

पृष्ठ

पृष्ठ

652.

पृष्ठ

भूदान-गंगा

(पहला खण्ड)

प्रथम दान

: १ :

हम लोग पैदल चलकर आ रहे हैं। हमने सुना था, आपके इस मुल्क में दुःखी लोग बहुत हैं। वैसे सारे हिन्दुस्तान में हर जगह दुःखी लोग हैं, लेकिन आपके इस मुल्क में कम्युनिस्टों की वजह से बहुत ज्यादा तकलीफ है। किन्तु हम तो कम्युनिस्टों से डरते नहीं, कम्युनिस्ट कोई राक्षस नहीं हैं, हमारे जैसे ही वे हैं। हैदराबाद-जेल में बहुत-से कम्युनिस्ट नेता दो-तीन साल से गिरफ्तार पड़े हैं। अभी रामनवमी के रोज जाकर हमने उन लोगों से मुलाकात की। हमने देखा, वे भी हम-आप जैसे सीधे-सादे मनुष्य हैं। फिर भी उन लोगों ने यहाँ बहुत भय पैदा कर दिया, ऐसा सब लोग कहते हैं। लेकिन अगर इस गाँव के गरीब और श्रीमान्, दोनों मिलकर रहेंगे, तो आपके गाँव को कोई दुःख नहीं होगा। हम इस गाँव के सभी लोगों से कहना चाहते हैं कि आप एक हो जाइये। गाँव में कुछ लोग दुःखी हैं, तो कुछ लोग सुखी भी हैं। जो लोग सुख में हैं, उनसे हम प्रार्थना करते हैं कि आप जरा अपने गाँव के दुःखी लोगों की चिंता कीजिये। हम लोगों को गांधीजी ने एक बड़ा रास्ता बताया है कि हम किसीको तकलीफ नहीं देंगे। जो दुःखी हैं, उन्हें जरा सब्र रखना चाहिए। अगर हम सहन नहीं करेंगे, तो हमारा काम नहीं होगा। जो हमारे दुःख हैं, जो हमारी तकलीफें हैं, उन्हें सज्जनों के सामने रख देना चाहिए। बोलने में जरा भी डर नहीं रखना चाहिए। असत्य कभी नहीं बोलना चाहिए। अतिशयोक्ति कभी करना नहीं, जैसा है वैसा ही बताना

चाहिए। इस तरह अगर गरीब दुःखी लोग हिम्मत और सुखी लोग दयाभाव रखेंगे, तो आपके गाँव में कम्युनिस्टों का कोई उपद्रव नहीं हो सकता।

भूमिदान का संकल्प

आज इस गाँव के हरिजन लोग हमसे मिलने आये थे। उन्होंने कहा कि हमें अगर कुछ जमीन मिलती है, तो हम मेहनत करेंगे और मेहनत का खाना खायेंगे। हमने उनसे कहा : अगर हम आपको जमीन दिलायेंगे, तो आप सब लोगों को मिलकर काम करना होगा। अलग-अलग जमीन नहीं देंगे। उन्होंने कबूल किया कि हम सारे एक होंगे और जमीन पर मेहनत करेंगे। फिर हमने कहा कि इस तरह हमें लिख दो, आपकी अर्जी हम सरकार में पेश कर देंगे। किन्तु उन्हें १०० एकड़ अपने यहाँ की जमीन देने के लिए यहीं के एक भाई तैयार हो गये। उन्होंने हमारे सामने हरिजनों को वचन दिया कि आपको इतनी जमीन हम दान देंगे। वह भला मनुष्य यहाँ आपके सामने है। अगर वह जमीन नहीं देता, तो ईश्वर का गुनहगार बनेगा। आप उसे याद रखिये। लेकिन वह जमीन देगा, तो हरिजनों पर यह जिम्मेदारी आयेगी कि सारे-के-सारे प्रेमभाव से एक होकर उसे जोतें। अगर ऐसे सज्जन लोग हर गाँव में मिलते हैं, तो कम्युनिस्टों का मसला हल ही समझो। आप यह जरूर समझ लें कि हिंदुस्तान में श्रीमान् लोग अपने हाथ में ज्यादा जमीन नहीं रख सकते। कोई भी श्रीमान् गरीबों की मदद के सिवा अपनी भूमि अपने हाथ में रख नहीं सकता। सरकार भी चाहती है कि कुछ-न-कुछ जमीन सब लोगों को मिले।

जमीन के साथ गृहोद्योग भी

लेकिन आप लोगों को मैं और एक बात कह देना चाहता हूँ। अगर सब लोगों को जमीन दे भी दें, तो भी हम सबका जीवन पूर्ण सुखी नहीं बनेगा। आपके गाँव में कुल तीन हजार लोग रहते हैं और गाँव की सारी जमीन कुल मिलाकर छह हजार एकड़ है। उसमें अच्छी जमीन भी आयी, खराब जमीन भी आयी और पत्थर भी आये। मतलब यह हुआ कि हरएक आदमी को इस गाँव में एक-एक एकड़ से ज्यादा जमीन नहीं है। अब आप

देखिये कि एक एकड़ जमीन की काश्त करने से क्या एक साल का खाना-कपड़ा आदि सभी चीजें मिल जायँगी ? इसलिए जरूरत इस बात की है कि जमीन की काश्त के साथ-साथ दूसरे धंधे भी गाँव में चलने चाहिए। यहाँ इतने लोग इकट्ठे हुए हैं। इनमें कितनी ही स्त्रियाँ हैं, कितने ही पुरुष और कितने ही बच्चे हैं। पर उनमें कोई नंगा है ? हरएक स्त्री और पुरुष के कपड़े हैं। देखो वह बच्चा है, उसके भी कपड़े हैं। आप यह सारा कपड़ा बाहर से खरीदते हैं। सरकार तो कहती है कि आप अपने गाँव में थोड़ी कपास लगाइये, तो उस पर लगान भी माफ कर देंगे। वह ऐसा इसलिए कहती है कि अगर हरएक गाँव में कपास होगी, तो हरएक गाँव के लोग सूत कात सकेंगे और अपना कपड़ा बना सकेंगे। लेकिन आज हमारी यह दरिद्र दशा हुई है कि लोग फटे कपड़े पहनते हैं। हमें दिन-ब-दिन कपड़ा कम मिलनेवाला है।

पहले के जमाने में हर गाँव में कपास होती थी। हर गाँव में सूत कातते थे और अपना कपड़ा पहनते थे। गांधीजी ने समझाया है कि हिन्दुस्तान के किसान जैसे अपना अनाज पैदा कर लेते हैं, वैसे ही जब वे अपने लिए कपड़ा भी पैदा करने लगें, तभी सुखी होंगे, नहीं तो नहीं। इस तरह अगर आप उद्योग करेंगे, तो आपके गाँव के बुनकरों को भी काम मिलेगा। ये बुनकर हमसे आकर कह रहे थे कि 'हम महीने में आठ थान बुन सकते हैं, लेकिन हमें सूत दो ही थान का मिलता है, तो क्या करें ?' भला उन बुनकरों को मैं कहाँ से सूत दे सकता हूँ ? हाँ, आप परमेश्वर की प्रार्थना कीजिये कि भगवन् ! वर्षा-काल में सूत की बारिश करो। तब फिर इन बुनकरों को बारिश से सूत मिल जायगा। मानो मृग नक्षत्र में सूत की बारिश होनी चाहिए।

सारांश, मैं कह रहा था कि अगर आप सब लोग गाँव में कपास बोयें और सूत कातें, तो आपके गाँव के बुनकर जिन्दा रहेंगे। नहीं तो ये मरनेवाले हैं। अरे, मिलवालों के पास सूत है कहाँ ? वे लड़ाई के पहले हरएक आदमी के लिए १७ गज कपड़ा बुनते थे, पर अब १२ गज ही दे रहे हैं। आप लोग

यह मत समझिये कि मिलवाले कहीं से ज्यादा सूत लायेंगे। अगर आपको विलायत से सूत ला दें, तो क्या आप वह विलायती सूत पसन्द करेंगे ? जब आपको बाहर से अन्न ला दें, सूत भी ला दें, तो इस देश में रहते ही किसलिए हैं ? बाहर ही क्यों नहीं चले जाते ? लेकिन अगर आपको इसी जगह रहना है, तो हर गाँव में अन्न पैदा होना चाहिए, हर गाँव में कपड़ा पैदा होना ही चाहिए। सूत कातना इतना आसान काम है कि पाँच साल का लड़का भी अपना सूत कात सकता है। इसी तरह से दूसरे भी गाँव के उद्योग हैं, वे सारे उद्योग गाँव में चलने चाहिए। इस तरह सारा गाँव एक होकर उद्योगों में लग जाय, एक-दूसरे पर प्रेम करे, तो कम्युनिस्ट लोग भी संतुष्ट हो जायेंगे। इसलिए अब भय छोड़ दीजिये और काम में लग जाइये।

सिंदी-ताड़ी छोड़ो

एक बहुत बुरी बात मैं इस मुल्क में देख रहा हूँ कि हजारों लोग शराब या सिंदी पीया करते हैं। इससे कोई लाभ नहीं होता, सब तरह की हानि ही है। अगर यह ताडी और सिंदी का मामला जारी रहा, तो आपकी अक्ल कुछ काम नहीं देगी। निश्चित समझ लें कि आप लोगों पर किसी-न-किसी दूसरे का राज्य रहेगा, अपना खुद का राज्य न रहेगा। सिंदी-ताड़ी का व्यसन हिन्दू-धर्म के विरुद्ध है, मुसलिम-धर्म के विरुद्ध है। सभी धर्मों ने इसका विरोध ही किया है।

पोचमपल्ली, जिला—नलगुंडा (तेलंगाना)
१८-४-'५१

अभी मैं एक छोटे गाँव से हो आया। उस गाँव को लूटकर आया हूँ। उस गाँव में ५० एकड़ जमीन एक श्रीमान् भाई से गरीबों को दिलवायी। उसके पहले भी ८ गाँवों में इसी तरह १०० और ७५ एकड़ जमीन लोगों से ली तथा गरीबों को दिलवायी। आज आपके गाँव को भी कुछ लूटनेवाला हूँ। लेकिन ये कम्युनिस्ट लोग कहेंगे कि पाँच-पाँच हजार एकड़ जमीनवाला सौ एकड़ जमीन दे देता है, तो उससे क्या होगा? मैं कहता हूँ कि जरा सब्र रखो। अभी पाँच हजार में से जो सौ देता है, वह प्रेम से देता है तो मैं लूँगा और बाकी के चार हजार नौ सौ एकड़ भी मेरे ही हैं। जब ये लोग देखेंगे कि हम गरीबों को जमीन देते जाते हैं, उससे हमें उनका प्रेम ही मिलता है, तो फिर वे खुद कहेंगे कि और भी ले लो।

तीसरे कदम में सब ले लूँगा

इस पर कम्युनिस्ट कहेंगे : 'कैसा भोला आदमी है।' लेकिन मैं उनसे कहूँगा कि मैं भोला नहीं, अपना धंधा मैं खूब जानता हूँ। एक दफा थोड़ी भावना और थोड़ा वातावरण होने दो कि जमीन गरीबों को देने में लाभ है। वातावरण तैयार हो जाने पर तो कानून करा ही लूँगा। फिर राह नहीं देखूँगा कि आज १०० एकड़ है, पाँच साल बाद और १०० एकड़ मिलेगी और फिर पाँच साल के बाद शेष १०० एकड़। इस तरह चार हजार मिलने में तो सौ बरस बीत जायँगे। बात यह है कि हवा बदल जानी चाहिए और हवा बदल जाती है, तो कानून उसके साथ आता ही है। अगर मैं वातावरण तैयार कर दूँ, तो लोग कानून भी पसन्द करेंगे। माँ-बाप ऐसा ही तो करते हैं। वे बच्चे को मिठाई खिलाते हैं, तो वह प्रेम से खिलाते और तमाचा लगाते हैं, तो भी प्रेम से लगाते हैं। लेकिन जो कोई लूटने के लिए आते हैं, वे भी बच्चे को मिठाई खिलाते हैं, पर वह प्रेम की मिठाई नहीं होती। इसी तरह मैं जो जमीन लेता हूँ, वह प्रेम से लेता हूँ।

मुझे आश्चर्य लगता है कि जहाँ मैं जाता हूँ, लोग जमीन देने के लिए क्यों तैयार होते हैं। सोचता हूँ कि क्या यह गांधीजी की करामात है? लोग जब जानते हैं कि यह गांधीजी का मनुष्य है, तो प्रेम से देने के लिए तैयार हो जाते हैं। लेकिन इतनी ही बात नहीं, और भी बात है। गांधीजी की करामात है, लेकिन परमेश्वर की भी करामात है। परमेश्वर की महिमा है कि लोग यह जानने लगे कि इतनी सारी जमीन अपने हाथ में रखकर कोई ले जानेवाला नहीं है। आखिर इतनी जमीन को वे खुद भी तो नहीं जोत सकते। इतनी जमीन अपने हाथ में रखने से कोई लाभ नहीं, यह बात उनके ध्यान में आ गयी। इसीलिए आज मैं वामनावतार बन गया और कहता हूँ कि जमीन दे दो। तीन कदम दोगे तो भी बस है। लेकिन मुझे जो सौ एकड़ मिले हैं, उतने ही मेरे नहीं हैं। वह जो चार सौ एकड़ बचे हैं, वे सारे-के-सारे मेरे ही हैं। जैसे वामन के तीन कदमों में सारा त्रिभुवन आ गया, वैसा ही यह मामला है। अगर यह सारी खूबी गरीब लोग समझेंगे, तो सारा गाँव सुखी होगा।

यह तो मैं कम्युनिस्टों का ही काम कर रहा हूँ। यह एक फच्चर है, उस फच्चर को डालता हूँ और फिर उस पर कानून का हथौड़ा पड़ेगा। हमारा काम सिर्फ कानून से नहीं होगा, अगर यह फच्चर काम नहीं देगी। इसका आरम्भ होता है दान से और समाप्ति होती है कानून से। कम्युनिस्ट आरम्भ करेंगे लाठी से और समाप्त करेंगे कानून से! आखिर कानून से समाप्ति वे भी करेंगे और मैं भी करूँगा, लेकिन आरम्भ में मैं प्रेम और दान चाहता हूँ और वे लाठी तथा लूट चाहते हैं।

बविलापल्ली
२१-४-'५१

भूमिदान में श्रीमानों का भी बचाव : ३ :

मेरी माँग है कि गरीबों के लिए कुछ भूमिदान दीजिये। मैं गरीबों की ओर से यह जो दान माँग रहा हूँ, उसमें न सिर्फ गरीबों का, बल्कि श्रीमानों का भी बचाव है। लोग मुझे कहते हैं कि 'फलाना मनुष्य श्रीमान् है, इसलिए उसके घर मत ठहरो।' मैं उनसे पूछता हूँ कि अच्छे मकान को आग लगाओगे या बुरे मकान को? मुझे श्रीमानों के घर में ठहराया जाता है, तो मैं यही कोशिश करता हूँ कि इस घर में आग कैसे लगेगी। मैं चाहता हूँ कि आग लगाने का काम उन घरों के मालिकों द्वारा ही हो। मैं उनको यह समझाऊँगा कि 'भाई, तुम्हारे घर को आग नहीं लगी है, बल्कि यह तो यज्ञ उज्ज्वल हो रहा है।'

सिवनगुड़ा
२२-४-'५१

हवा, पानी के समान जमीन भी सबकी : ४ :

जमीन तो आधार है और हरएक को वह आधार मिलना चाहिए। हरएक को जमीन मिलनी चाहिए, लेकिन उससे कोई श्रीमान् बनेगा, ऐसी आशा न करनी चाहिए। जैसे हरएक को हवा चाहिए, लेकिन किसीको हवा मिलती है, तो हम उसे श्रीमान् नहीं कहते। पानी भी हरएक को चाहिए, लेकिन पानी पर से हम किसीकी सम्पत्ति नहीं नापते। जैसे हवा और पानी है, वैसे ही जमीन है। जिन्दा रहने के लिए भूमि आधार है, लेकिन श्रीमान् बनने के लिए उद्योग ही आधार है। गाँवों की उन्नति करनी है, तो गाँव के उद्योग बढ़ाने चाहिए। आजकल लोगों का यह खयाल हो गया है कि हिन्दुस्तान में सबको जमीन मिल जाय तो मामला हल हो जाय, सब सुखी हो जायँ। लेकिन यह गलत खयाल है। जमीन की तकसीम जरूर होनी चाहिए, फिर भी इतने भर से देश सुखी नहीं होगा। जिस देश में उद्योग नहीं, उस देश में लक्ष्मी नहीं रहती।

नोरेगुडेम
२८-४-'५१

जमीन और सम्पत्ति गाँव की : ५ :

आप देख रहे हैं कि लोग थोड़ा-थोड़ा भूमिदान दे रहे हैं। लोगों के दिल बदल रहे हैं। इस तरह अगर लोगों के दिल बदल जाते हैं, तो कानून की कोई जरूरत नहीं रहती। प्रेम से ही सारा कारोबार चलेगा। समझने की बात यह है कि सारा गाँव एक परिवार है। जैसे बारिश का पानी और सूर्य-प्रकाश सबके लिए है, वैसे आपका यह सारा गाँव होना चाहिए, सबका होना चाहिए। सब गाँववालों को एक हो जाना चाहिए और समझना चाहिए कि सारी जमीन सबकी है। सिर्फ भूमि ही नहीं, बल्कि अपने पास जो भी सम्पत्ति है, सब-की-सब गाँव की है।

पेद्दमुंगल
२९-४-'५१

भूमि सबकी माता है : ६ :

जब हम कहते हैं कि 'भूमि सबकी माता है', तो फिर कुछ लड़कों का उस पर हक हो और कुछ उसके पास पहुँच भी न सकें, यह हो नहीं सकता। इसलिए जाहिर है कि जमीन बँट जानी चाहिए। उसके लिए दो रास्ते हैं, कत्ल का और कानून का। कत्ल का तो रास्ता भारत में चल नहीं सकता। सरकार मौके पर कानून जरूर बनायेगी और सरकार का वह कर्तव्य भी होगा। लेकिन वह काम इस ढङ्ग से होना चाहिए कि केवल गरीब ही नहीं, बल्कि श्रीमान् भी उसमें अपना हित समझें। आखिर कानून तो बनाना पड़ता ही है, लेकिन उसके लिए वातावरण अनुकूल करना चाहिए। इसीलिए मैंने एक नया प्रयोग शुरू किया है। मैं गरीबों के लिए भूमिदान माँग रहा हूँ। अगर जमीनवाले मेरी बात समझ जायेंगे, तो उनका जीवन पलट जायगा और वे अपना सारा जीवन गरीबों की सेवा में दे देंगे। वामन-अवतार में भगवान् ने तीन कदम भूमि माँगी थी। लेकिन वह तीन कदम भूमि त्रिभुवनव्यापी बन गयी, क्योंकि वामनावतार के कारण बलि राजा का परिवर्तन हो गया था।

मिरियालगुड़ा
७-५-'५१

: ७ :

छठा लड़का समाज

मुझे खुशी हो रही है कि यहाँ कुछ गरीबों ने भी दान दिया। असल में लेना है श्रीमानों से ही, लेकिन गरीबों को भी पुण्य की, दान की प्रेरणा होनी चाहिए। उन्हें भी आपस में एक-दूसरे की फिक्र करने का धर्म समझना चाहिए। जिनको खाने को भी नहीं मिलता, ऐसों को कुछ देना गरीबों का भी धर्म है। गरीब के घर में भी नया लड़का पैदा होता है, तो सब बाँटकर खाते हैं। इसी तरह हमें समझना चाहिए कि हमारे घर में पाँच लड़के हैं, तो छठा लड़का समाज है। चाहे श्रीमान् हो या गरीब, उसके घर में और एक व्यक्ति है, जिसका हिस्सा देना हरएक का कर्तव्य है। केवल भूमि और सम्पत्ति का ही हिस्सा नहीं, बल्कि अपनी बुद्धि, शक्ति, समय का भी हिस्सा दान में देना चाहिए। यह दान-धर्म 'नित्यधर्म' के तौर पर हमें अपने शास्त्रकारों ने सिखाया है। जैसे हम रोज खाते हैं, वैसे ही रोज दान भी देना चाहिए।

१२-५-'५१

: ८ :

चोर का बाप कंजूस

यहाँ कम्युनिस्टों का उपद्रव है, तो उसके बन्दोबस्त के लिए सरकार की मिलिटरी आयी। लेकिन पेट के रोग के कारण सिर दर्द करता हो, तो सिर पर सोंठ लगाने से काम नहीं चलेगा। उसके लिए तो पेट के रोग को दुरुस्त करनेवाली दवा चाहिए। उपनिषदों में राजा कहता है कि न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यः—मेरे राज्य में कोई चोर नहीं है और कोई कंजूस नहीं है। कंजूस चोरों के बाप होते हैं। वे चोरों को, डाकुओं को पैदा करते हैं। इसी तरह आज जो अपने पास हजारों एकड़ जमीन रखते हैं, वे कम्युनिस्टों को पैदा करते हैं। समझने की बात है कि संग्रह करने की वृत्ति पाप है। कत्ल से मसला हल नहीं हो सकता। कानून से भी बहुत थोड़ा काम हो सकता है। कानून मेरे समान गरीबों से जमीन नहीं ले सकता। उसकी एक मर्यादा होती है। लेकिन जहाँ हृदय-परिवर्तन होता है, वहाँ सर्वस्व त्याग करनेवाले फकीर निकलते हैं।

सूर्यापेट
१२-५-'५१

दानं संविभागः

: ९ :

यह जो दान दिया जा रहा है, वह किसी पर कुछ उपकार नहीं किया जा रहा है। हमारे शास्त्रकारों ने 'दान' की व्याख्या करते हुए कहा है कि दानं संविभागः—दान में, समाज में समान विभाजन करने की बात है। समझने की बात है कि बच्चों पर माता-पिता का कोई हक नहीं होता, परमेश्वर का हक होता है। आपके घर में परमेश्वर आता है, उसे आप अपना लड़का समझकर भूमि देते हैं। गरीब के घर में भी वही परमेश्वर आता है। इसलिए होना यह चाहिए कि जितने लड़के-बच्चे हैं, वे सारे परमेश्वर के हैं और उनकी चिन्ता सारा गाँव करता है। अतः जिस तरह आप अपनी भूमि का हिस्सा अपने लड़के को देते हैं, उसी तरह कुछ हिस्सा गरीबों को भी देना चाहिए। जैसे हम घर के बच्चों का जमीन पर हक मानते हैं, वैसे ही गरीबों का भी उस जमीन पर हक है।

१९-५-'५१

अहिंसा से दुर्बल भी सबल

: १० :

अक्सर हमने माना है कि दुर्जनों के हमले का प्रतिकार शस्त्र से करें और शस्त्र न हो तो भाग जायँ। लेकिन सज्जनों ने हमें सिखाया है कि ये दोनों तरीके गलत हैं। हमला करनेवाले के सामने शांति से छाती खोल खड़े होने से हम विजय हासिल कर सकते हैं। गांधीजी ने हमें बताया कि यह मार्ग केवल कुछ सज्जनों के लिए नहीं, बल्कि सारे समाज के लिए कारगर है। अहिंसा के मार्ग में एक छोटा बच्चा या स्त्री भी दुनिया के विरोध में खड़ी हो सकती है और दुनिया को जीत सकती है। शस्त्रों के मार्ग में बच्चे, बूढ़े, स्त्रियों आदि का रक्षण करना पड़ता है, पर अहिंसा में उनकी शक्ति प्रकट होने का मौका मिलता है।

अहिंसा का मार्ग ऐसा मार्ग है, जिसमें दुर्बल, अशक्त भी सबल, शक्तिवान् बन जाता है। यह अत्यन्त सरल मार्ग है। फिर भी हम भ्रम में पड़कर शस्त्रों के पीछे जाते हैं।

व्यारा (वरंगल)

२०-५-'५१

पहले जब-जब देश में अशांति पैदा होती थी, तब-तब हमारे यहाँ के बुद्धिमान् लोग यज्ञ शुरू कर देते थे। मैंने इस मुल्क में प्रवेश किया, तो सूझा कि मुझे भी यज्ञ शुरू करना चाहिए। यहाँ झगड़े हुए, मारपीट हुई, खून हुए, उसकी शांति यज्ञ के सिवा कैसे हो सकती है? आपके इस गाँव में भी मारकाट हुई, हत्या हुई, जिसकी निशानियाँ मैं देखकर आया हूँ। इस तरह कई गाँवों में हुआ। तो, इन सबकी शांति के लिए यज्ञ होना चाहिए। कौन-सा यज्ञ करें, यही मैं सोचता था। मुझे एकदम सूझता न था। क्या पशु-बलि-यज्ञ शुरू करूँ? पर पशु-बलि से मनुष्य को क्या लाभ हो सकता है? यदि लाभ हो सकता है, तो काम, क्रोध, लोभ, मोहरूप पशुओं के नाश से। ये ही पशु हैं, जिनका राज्य हमारे मन पर चलता है। तो, इनका बलिदान करें, ऐसा यज्ञ हो सकता है। मैंने सोचा, इस जमाने में हमारे दिल में कौन-सा पशु ज्यादा काम कर रहा है? मेरे ध्यान में आया, सबसे बढ़कर पशु—जो हमें तकलीफ देता है—वह है, द्रव्यलोभ। आजकल जंगलों में बहुत शेर नहीं रहते, इसलिए उनकी हमें बहुत तकलीफ नहीं होती। लेकिन यह लोभरूपी पशु बहुत तकलीफ दे रहा है, हर जगह तकलीफ दे रहा है। इसका बलिदान करने से शांति हो सकती है। फिर मैंने आपके पास भूमिदान माँगना शुरू कर दिया। जहाँ गया, वहाँ लोगों को यही समझाया कि इस लोभरूपी पशु का बलिदान होना चाहिए। लोगों ने लोभ तो पूरा छोड़ा नहीं, फिर भी थोड़ा-थोड़ा भूमिदान दे दिया।

यज्ञ का उद्देश्य : अन्तःशुद्धि

इस भूमिदान-यज्ञ में हरएक को थोड़ा-थोड़ा हिस्सा लेना चाहिए। जब कभी कोई सार्वजनिक यज्ञ शुरू किया जाता है, तो उसमें हरएक को भाग लेना पड़ता है। किसीने कोई सार्वजनिक महायज्ञ शुरू किया, तो हरएक घर से २-२ छटाक दूध मिलना चाहिए। कोई राजा या धनिक ज्यादा दूध दे दे, ऐसा नहीं चलता। इस भूमि-दान-यज्ञ में भी हरएक का हिस्सा होना चाहिए। कारण

इसका उद्देश्य यह है कि सबकी अन्तःशुद्धि हो जाय। इसलिए जिनके पास थोड़ी भी जमीन हो, वे थोड़ी ही दें। लेकिन जिनके पास जमीन नहीं है, वे इस यज्ञ में कैसे हिस्सा ले सकते हैं? यह सही है कि वे भूमिदान दे नहीं सकते। वे तो भूमि लेनेवाले होंगे, पर उन्हें जब भूमि दी जायगी और उस पर वे अच्छी तरह मेहनत करें, तो उनका वही यज्ञ कहा जायगा। बाकी के जितने लोग हैं, वे सब इस यज्ञ में हिस्सा लें, ऐसा मैं चाहता हूँ। जिसके पास ज्यादा जमीन है, वह ज्यादा दे और जिसके पास कम है, वह कम दे। लेकिन देना सबको चाहिए। जिसके पास कम है, वह अगर कम देगा, तो उसके दान की योग्यता कम नहीं होगी। अपनी शक्ति के मुताबिक जो भी दिया जाय, उसकी योग्यता समान रहेगी।

युग हमारे हाथ में

लोगों को लगता था कि इस कलियुग में भूदान कौन देगा? लोग अपनी एक इञ्च भी जमीन छोड़ना नहीं चाहते। उतने के लिए भी कोर्ट में झगड़ते और सैकड़ों रुपये खर्च करते हैं। अपने खेत में से पड़ोसी किसान ने थोड़ा-सा हिस्सा ले लिया, इधर की बाड़ जरा उधर रचा ली, तो झगड़े होते हैं। एक-एक हाथ जमीन के लिए झगड़े होते हैं, खून होते हैं। तो ऐसी हालत में कौन भूमिदान देगा? अगर कानून से जमीन छीन लो, तो हो सकता है। प्रेम से कौन देगा? लेकिन लोगों ने देखा, एक माँगनेवाला मिल गया, तो लोग उसे देने लगे और आज तक तीन हजार एकड़ भूदान हो गया। इसमें एक एकड़-वाले ने भी एक गुंठा दिया और ज्यादा जमीनवालों ने भी दिया। कुल मिलाकर ३०० लोगों ने दान दिया है। यह साढ़े तीन हजार एकड़ कोई ज्यादा संख्या नहीं है और न ३०० ही ज्यादा संख्या है। लेकिन इतने लोगों ने इतनी जमीन दे दी, यह इस कलियुग में आश्चर्य की बात हो गयी, ऐसा लोगों को लगता है।

लेकिन कलियुग या कृतयुग, यह मन की कल्पना की बात है। अगर हम परमेश्वर का नाम लेते हैं, तो यह कृतयुग हो जाता है। और अगर परमेश्वर

का नाम नहीं लेते, उसे नहीं मानते, तो वह कलियुग हो जाता है। आप देखते हैं कि इस युग में भी महात्मा गांधी, रामकृष्ण परमहंस, रमण महर्षि आदि लोग हो गये। मतलब यही है कि जिसका मन परमेश्वर-स्मरण करता रहेगा, वह कलियुग में नहीं रहेगा, कृतयुग में ही रहेगा। परमेश्वर का स्मरण करने से हमें यह युग रोक नहीं सकता।

भगवान् की इच्छा से सब कुछ संभव

इसलिए लोगों ने अगर अब कुछ दान देना शुरू किया है, तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं है। अगर आप सब इस चीज को समझ लें कि इस शांतियज्ञ में हिस्सा लेना ही है, तो लोग उठ-उठकर देने लग जायँगे। मैं जानता हूँ कि हरएक मनुष्य यह बात झट-से नहीं समझ सकता। मेरे जैसे के कहने से झट-से नहीं समझ सकता। लेकिन भगवान् अगर चाहेगा, तो यह जरूर होनेवाला है। वह मुझ-जैसे तुच्छ मनुष्य की वाणी में भी ताकत भरेगा। वह चाहेगा, तो कलियुग के मनुष्य को भी अच्छी बुद्धि देगा। अगर भगवान् चाहते हैं, तो कोई भी चीज उसके विरुद्ध नहीं जा सकती। मेरा विश्वास हो गया है कि भगवान् भारत की उन्नति चाहता है। हमें कई वर्षों के बाद आजादी मिल गयी, यह परमेश्वर की कृपा है। इतनी कृपा हमारे देश पर है, तो आपको सद्बुद्धि कैसे नहीं होगी? मैं मानता हूँ कि भगवान् इस देश में शांति फैले, यह चाहता है। वह क्या चाहता है, यह बोलकर नहीं बतलाता; लेकिन वैसी प्रेरणा मनुष्य को दे देता है।

एक जगह हरिजनों ने मुझसे भूमि माँगी। मैंने कहा : मैं कहाँ से दूँगा, लेकिन आपकी माँग सरकार के सामने रखूँगा। उन्होंने कुल ८० एकड़ जमीन माँगी थी। मेरा खयाल नहीं था कि इतनी जमीन लोग दे सकेंगे, इसलिए मैंने सरकार का नाम बताया। लेकिन मुझे बुद्धि सूझी। फिर मैंने डरते-डरते पूछा कि भाइयो, इतनी जमीन आप दे सकते हो? परमेश्वर ने एक भाई को प्रेरणा दी। उसने कहा कि मैं दे सकता हूँ। मैं समझ गया कि भगवान् की इच्छा क्या है। इस तरह दूसरे दिन से वामनावतार का उदाहरण लेकर मैंने माँगना

शुरू कर दिया। मेरा विश्वास हो गया कि इस भूदान-यज्ञ से आपके नलगुंडा और वरंगल, दोनों जिलों में शान्ति स्थापित हो सकती है। केवल पुलिस की ताकत से शान्ति नहीं रह सकती। पुलिस के बल से अशान्ति दब सकती है, लेकिन दबी अशान्ति मौका मिलने पर उठ भी सकती है। हम देखते हैं कि गरमी के दिनों में घास नहीं दीखती। लगता है, दुनिया से घास खतम ही हो गयी। लेकिन जरा बारिश होने दीजिये, दुनियाभर घास-ही-घास दिखाई देती है। क्योंकि वह नष्ट नहीं हुई थी, उसके बीज जमीन में मौजूद थे। तो, जहाँ अशान्ति के बीज मौजूद हैं, वहाँ शान्ति नहीं हो सकती। बीज जमीन में हों, तो कभी-न-कभी उग ही जाते हैं। अशान्ति के उस बीज को निर्मूल करना है, इसीलिए भगवान् ने यह भूदान-यज्ञ मुझे सुझाया है।

तनिकल्ला (वरंगल)
२१-५-'५१

भारतीय संस्कृति और भूदान : १२ :

मानव-समाज हजारों वर्षों से इस पृथ्वी पर रह रहा है। पृथ्वी इतनी विशाल है कि पुराने जमाने में इधर का मानव उधर के मानव को कुछ भी नहीं पहचान पाता था। हरएक को शायद इतना ही लगता था कि अपनी जितनी जमात है, उतनी ही मानव जाति है। पृथ्वी के उधर क्या होता होगा, इसका भान भी शायद उन्हें नहीं था। लेकिन जैसे-जैसे विज्ञान का प्रकाश फैलता गया, वैसे-वैसे सृष्टि के साथ मनुष्य का संपर्क बढ़ता गया। मानसिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, सभी दृष्टियों से मानवों का आपसी संपर्क बढ़ता गया। जब कभी दो राष्ट्रों का या दो जातियों का संपर्क हुआ, हर बार वह मीठा ही साबित हुआ, ऐसी बात नहीं। कभी वह मीठा होता था, तो कभी कड़ुआ; लेकिन कुल मिलाकर उसका फल मीठा ही रहा। इसकी मिसाल दुनियाभर में मिल सकती है। लेकिन सारी दुनिया की मिसाल हम छोड़ भी दें और केवल भारत की तरफ खयाल करें, तो मालूम होगा कि बहुत प्राचीन काल में यहाँ

आर्य लोग रहते थे। उनकी संस्कृति हिन्दुस्तान की 'पहाड़ी संस्कृति' थी और दक्षिण में जो द्रविड़ लोग रहते थे, उनकी संस्कृति 'समुद्री संस्कृति' थी। इस तरह द्रविड़ों और आर्यों की संस्कृति के मिश्रण से एक नयी संस्कृति बनी।

पहले उत्तर और दक्षिण की ये दोनों संस्कृतियाँ अलग-अलग रहीं। हजारों वर्षों तक इनमें आपस में कोई सम्बन्ध नहीं था, क्योंकि बीच में एक बड़ा भारी दंडकारण्य था। लेकिन फिर दो जमातों का सम्बन्ध हुआ। उनमें से कुछ मीठे और कुछ कड़ुए अनुभव आये और उसका नतीजा आज का भारतवर्ष है। द्रविड़ लोग यहाँ के बहुत प्राचीन लोग थे। द्रविड़ों और आर्यों, दोनों की संस्कृतियों के संगम का लाभ हिन्दुस्तान को मिला और उससे एक ऐसा मिश्र राष्ट्र बना, जिसमें उत्तर और दक्षिण के अच्छे अंश एक साथ बेमालूम मिल गये। उत्तर और दक्षिण एक हो गया। उत्तर के लोग ज्ञान-प्रधान थे, तो दक्षिण के भक्ति-प्रधान। इस तरह ज्ञान और भक्ति का संगम हो गया। लेकिन इसके बाद यहाँ जो मिश्र समाज बना, उसकी व्यापकता भी एकांगी साबित हुई।

इसलाम की देन

फिर बाहर से मुसलमान यहाँ आये और अपने साथ नयी संस्कृति ले आये। उनकी नयी संस्कृति के साथ यहाँ की संस्कृति की टक्कर हुई। मुसलमानों ने अपनी संस्कृति के विकास के लिए दो मार्ग अपनाये, ऐसा दीखता है: एक हिंसा का और दूसरा प्रेम का। ये दो मार्ग दो धाराओं की तरह एक साथ चले। हिंसा के साथ हम गजनी, औरंगजेब आदि का नाम ले सकते हैं, तो दूसरी तरफ प्रेममार्ग के लिए अकबर और कबीर का नाम। हमारे यहाँ जो कमी थी, वह इसलाम ने पूरी कर दी। इसलाम सबको समान मानता था। यद्यपि उपनिषद् आदि में यह विचार मिलता है, लेकिन हमारी सामाजिक व्यवस्था में इस समानता की अनुभूति नहीं मिलती थी। हमने उस पर अमल नहीं किया था। व्यावहारिक समानता का विचार इसलाम के साथ आया। इसलाम के आगमन के समय यहाँ अनेक जातियाँ थीं, एक जाति दूसरी जाति के साथ न शादी-ब्याह करती थी और न रोटी-पानी। इस तरह जहाँ देखो,

वहाँ चौखटें बनी थीं। लेकिन धीरे-धीरे दो संस्कृतियाँ नजदीक आयीं। देश को दोनों के गुणों का लाभ मिला। इस सिलसिले में जो लड़ाई-झगड़े और संघर्ष हुए, उनका इतिहास हम जानते ही हैं।

जो लोग यहाँ आये, उन्होंने तलवार से हिन्दुस्तान जीता या हिन्दुस्तान के लोग लड़ाई में हार गये, यह कोई नहीं कह सकता। बल्कि लड़ाइयाँ हुईं, उससे पहले ही फकीर लोग यहाँ आये। वे गाँव-गाँव घूमे और उन्होंने इसलाम का संदेश पहुँचाया। यहाँ के लिए वह चीज एकदम आकर्षक थी। बीच के जमाने में हिन्दुस्तान में बहुत-से भक्त हुए, जिन्होंने जातिभेद के खिलाफ प्रचार किया और एक ही परमेश्वर की उपासना पर जोर दिया। इसमें इसलाम का बहुत बड़ा हिस्सा था। हिंदुस्तान को इसलाम की यह बड़ी देन है। इस तरह पहले ही जो संस्कृति द्रविड़ और आर्यों की अच्छाइयों के मिश्रण से बनी थी, उसमें यह नया रसायन दाखिल हुआ।

पश्चिम का हविर्भाग

इसके बाद कुछ तीन सौ साल पहले की बात आती है। यूरोप के लोगों को मालूम हुआ कि हिन्दुस्तान बड़ा संपन्न देश है और वहाँ पहुँचने से लाभ हो सकता है। इसी समय यूरोप में विज्ञान की प्रगति भी हुई। वे लोग हिन्दुस्तान आ पहुँचे। हिन्दुस्तान में अभी तक जो प्रगति हुई थी, उसमें विज्ञान की कमी थी। यह नहीं कि विज्ञान यहाँ था ही नहीं। यहाँ वैद्यक-शास्त्र मौजूद था, पदार्थ-विज्ञान-शास्त्र मौजूद था, लोगों को रसायन-शास्त्र की जानकारी थी। अच्छे मकान, अच्छे रास्ते, अच्छे मदरसे यहाँ बनते थे। यानी शिल्प-विज्ञान भी था। अर्थात् हिन्दुस्तान एक ऐसा प्रगतिशील देश था, जहाँ उस जमाने में अधिक-से-अधिक विज्ञान मौजूद था। लेकिन बीच के जमाने में यहाँ विज्ञान की प्रगति कम हुई। उसी जमाने में यूरोप में विज्ञान का आविष्कार हुआ और पाश्चात्य लोग यहाँ आ पहुँचे।

अब उनके और हमारे बीच संघर्ष शुरू हुआ। उनके साथ का हमारा सम्बन्ध कड़ुआ और मीठा, दोनों प्रकार का रहा तथा इस मिश्रण से एक और

नयी संस्कृति बनी। कुछ मिश्रण तो पहले हो ही चुका था, फिर जो-जो प्रयोग यूरोपवालों ने अपने देश में किये, उनके फलस्वरूप न सिर्फ भौतिक जीवन में, बल्कि समाजशास्त्र आदि में भी परिवर्तन हुए। जैसे-जैसे अंग्रेज, फ्रेंच, जर्मन, रशियन आदि के विचारों से परिचय होने लगा, वैसे-वैसे वहाँ के नव-विचारों का सम्बन्ध भी बढ़ने लगा। आज हम जहाँ जाते हैं, वहाँ सोशलिज्म, कम्युनिज्म आदि पर विचार सुनते हैं। ये सारे विचार पश्चिम से आये हैं।

अब इन सब विचारों में झगड़ा शुरू हुआ है। उसमें से कचरा-कचरा निकल जायगा। हमारी संस्कृति कुछ खोयेगी नहीं, बल्कि कुछ पायेगी ही। हिंदुस्तान में—बावजूद इसके कि पश्चिम के विचारों का प्रवाह निरंतर यहाँ आता रहा—पहले के जमाने में जितने महापुरुष आध्यात्मिक विचारवाले पैदा हुए, उनसे कम इस जमाने में नहीं हुए। इस समय भी संघर्ष हो रहा है, टक्कर हो रही है, मिश्रण हो रहा है। यह जो बीच की अवस्था है, उसमें कई प्रकार के परिणाम होते हैं।

कम्युनिस्टों में विचार

गांधीजी के जाने के बाद मैं सोचने लगा कि अब मुझे क्या करना चाहिए। तो निर्वासितों का काम देख उसमें लग गया। परन्तु यहाँ के कम्युनिस्टों के प्रश्न के बारे में बराबर सोचता रहा। यहाँ की खून आदि की घटनाओं के बारे में मुझे जानकारी मिलती रही, फिर भी मेरे मन में कभी घबराहट नहीं हुई; क्योंकि मानव-जीवन के विकास का कुछ दर्शन मुझे हुआ है। इसलिए मैं कह सकता हूँ कि जब-जब मानव-जीवन में नयी संस्कृति निर्माण हुई, तो वहाँ कुछ संघर्ष भी हुआ है, रक्त की धारा भी बही है। इसलिए हमें बिना घबराये शांति से सोचना चाहिए और शान्तिमय उपाय ढूँढ़ना चाहिए।

यहाँ शान्ति के लिए सरकार ने पुलिस भेज दी है, लेकिन पुलिस कोई विचारक होती है, ऐसी बात नहीं। वह तो शस्त्र-संपन्न होती है और शस्त्रों के जोर पर ही मुकाबला करती है। इसलिए जंगल में शेरों के बन्दोबस्त के लिए पुलिस भेजना बिलकुल कारगर हो सकता है और वह शेरों का शिकार कर हमें

उनसे बचा सकती है। लेकिन यह कम्युनिस्टों की तकलीफ शेरों की नहीं, मानवों की है। उनका तरीका चाहे गलत क्यों न हो, उनके जीवन में कुछ विचार का उदय हुआ है। जहाँ विचार का उदय होता है, वहाँ सिर्फ पुलिस से प्रतिकार नहीं हो सकता, सरकार यह बात जानती है। बावजूद इसके, अपना कर्तव्य समझकर सरकार ने पुलिस की योजना की है, इसलिए मैं उसे दोष नहीं देता।

विचार-शोधन का प्रमुख साधन : 'चरैवेति'

इस तरह प्रस्तुत समस्या के बारे में सोचते हुए मुझे सूझा कि इस मुल्क में घूमना चाहिए। लेकिन कैसे घूमा जाय? मोटर आदि साधन तो विचार-शोधक हैं नहीं, वे समय-साधक हैं, फासला काट सकते हैं। जहाँ विचार ढूँढ़ना है, वहाँ शान्ति का साधन चाहिए। पुराने जमाने में तो ऊँट, घोड़े आदि थे। लोग उनका उपयोग भी करते थे और रातभर में दो सौ मील तक निकल जाते थे। परन्तु शंकराचार्य, महावीर, बुद्ध, चैतन्य, नामदेव जैसे लोग हिन्दुस्तान में घूमे और पैदल ही घूमे। वे चाहते, तो घोड़े या ऊँट पर भी घूम सकते थे, पर उन्होंने इन त्वरित-साधनों का सहारा नहीं लिया; क्योंकि वे विचार का शोधन करना चाहते थे। विचार-शोधन के लिए सबसे उत्तम साधन पैदल घूमना ही है। इस जमाने में वह साधन एकदम सूझता नहीं, पर शांतिपूर्वक विचार करें, तो सूझेगा कि पैदल चले बिना चारा नहीं है।

वामनावतार का जन्म

मैं वर्धा से चलकर शिवरामपल्ली आया और वहाँ से यहाँ। कम्युनिस्टों के काम के पीछे जो विचार है, उसका सारभूत अंश हमें ग्रहण करना होगा, उस पर अमल करना होगा। यह अमल कैसे किया जाय? इस बारे में मैं सोचता था, तो मुझे कुछ सूझ गया। ब्राह्मण तो था ही, झट वामनावतार ले लिया और भूमिदान माँगना शुरू कर दिया।

पहले-पहले लगता था कि वातावरण पर इसका परिणाम क्या होगा? थोड़े-से अमृत-बिन्दुओं से सारा समुद्र मीठा कैसे होगा? पर धीरे-धीरे विचार बढ़ता

गया। परमेश्वर ने मेरे शब्दों में कुछ शक्ति भर दी। लोग समझ गये कि यह जो काम चल रहा है, क्रान्ति का है और सरकार की शक्ति के परे है; क्योंकि यह जीवन बदलने का काम है।

यद्यपि लोगों ने मुझे काफी दिया, तो भी मेरा काम इतने से पूरा नहीं होता। आज नलगुंडा के एक भाई आये। उन्होंने पहले पचास एकड़ दिये थे। उनकी जमीन का कुछ झगड़ा था। वह निपट गया और आज उन्होंने पाँच सौ एकड़ जमीन दे दी। उनके हिस्से की जमीन का यह चौथाई भाग होता है।

यह समस्या जागतिक है

इस तरह जब विचार फैलेगा, तब काम होगा। मैं चाहता हूँ कि दरिद्र-नारायण को, जो भूखा है और अब जाग गया है, आप अपने कुटुम्ब का एक सदस्य समझ लें। आपके परिवार में चार लड़के हैं, तो इसे पाँचवाँ मान लें। एक भाई के पास पाँच एकड़ जमीन थी। उससे मैंने जमीन माँगी, तो उसने कहा : 'मेरे घर में आठ लड़के हैं।' मेरे यह पूछने पर कि 'अगर नवाँ आया, तो उसे भी सह लोगे या नहीं?' उसने 'हाँ' कहा। मैंने कहा : 'यही समझो कि मैं नवाँ हूँ और मुझे भी कुछ दे दो।' समझ लीजिये कि दस हजार एकड़-वाला सौ एकड़ देता है। आँकड़ा दीखने को बहुत बड़ा दीखता है, पर दाता और दरिद्रनारायण, दोनों के हिसाब से वह कम है। इस आँकड़े से मैं तो संतुष्ट हो जाऊँगा, पर देनेवालों को न होना चाहिए। अगर यहाँ चंद लोगों के संकट-निवारण की समस्या होती और मैं दान माँगता, तो थोड़ा-थोड़ा देने से भी काम चल जाता। लेकिन यहाँ तो एक राजनैतिक समस्या हल करनी है, एक सामाजिक समस्या सुलझानी है, जो न सिर्फ इन दो जिलों की है और न सिर्फ हिन्दुस्तान की, बल्कि पूरी दुनिया की है। जहाँ ऐसी राजनैतिक और सामाजिक क्रांति करनी होती है, वहाँ तो मनोवृत्ति ही बदल देने की जरूरत होती है।

प्रेम और विचार की शक्तियों का आवाहन

मैं गरीब और श्रीमान्, सबका मित्र हूँ। मुझे मैत्री में ही आनंद आता है। जो शक्ति मैत्री में है, वह द्वेष में नहीं। अनेक राजाओं ने लड़ाइयाँ लड़कर जो

क्रांति नहीं की, वही बुद्ध, ईसा, रामानुज आदि ने भी की। इनमें से एक-एक आदमी ने जो काम किया, वह अनेक राजाओं ने मिलकर नहीं किया। अर्थात् प्रेम और विचार की तुलना में दूसरी कोई शक्ति नहीं है। इसलिए बार-बार समझाने का काम पड़े, तो भी मैं तैयार हूँ। दो दफा समझाने से कोई समझ न सका, तो तीन दफा समझाऊँगा। तीन दफा समझाने से यदि कोई नहीं समझ सका, तो चार दफा समझाऊँगा और चार दफा समझाने पर भी न समझे, तो पाँचवीं दफा समझाऊँगा। समझाना ही मेरा काम है। जब तक मैं कामयाब नहीं होता, तब तक हारूँगा नहीं; निरंतर समझाता ही रहूँगा।

जो मैं चाहता हूँ, वह तो सर्वस्व-दान की बात है। जैसा कि 'पोतना' कवि ने '(तेलुगु) भागवत' में बताया है : **तल्लिदंड्रुल भंगि धर्मवत्सलतनु दीनुल गाव चिंतिंचुवाड्रु धर्मवत्सलतनु।** मैं माता-पिता के समान चिन्ता करने की यह उपमा आप पर लागू करना चाहता हूँ। जिस प्रेम से माता-पिता बच्चों के लिए काम करते हैं, स्वयं भूखे रहकर उन्हें खिलाते हैं, उनके लिए सर्वस्व का त्याग करते हैं, वह शक्ति और वह प्रेम मैं आप लोगों से प्रकट कराना चाहता हूँ।

विचार-क्रांति के लिए भूमि तैयार

आज मैं जेल में कम्युनिस्ट भाइयों से मिलने गया था, यह जानने के लिए कि उनके क्या विचार चल रहे हैं। उन्होंने मुझसे यह सवाल किया कि 'क्या आप इन श्रीमानों को वापस अपने घरों में ले जाकर बसाना चाहते हैं? क्या इनका हृदय-परिवर्तन हो सकेगा? आपको ये लोग ठग रहे हैं।' कुछ इसी तरह का उनका भाव था। मुझे वहाँ उनसे बहस नहीं करनी थी और न उनके हर प्रश्न का जवाब ही देना था। लेकिन अगर यह बात सही है कि हरएक के हृदय में परमेश्वर विराजमान है और वही हमारे श्वासोच्छ्वास का नियमन करता और सारी प्रेरणा देता है, तो मेरा विश्वास है कि परिवर्तन जरूर हो सकता है। अगर कालात्मा खड़ा है और वह परिवर्तन करना चाहता है, तो वह होने ही वाला है। मनुष्य चाहे या न चाहे, जब वह प्रवाह में पड़ता

है, तब उसकी तैरने की शक्ति ही उसके काम नहीं आती, प्रवाह की शक्ति भी काम आती है। इसी तरह मनुष्य के हृदय में परिवर्तन के लिए काल-प्रवाह सहायक होता है। आज तो सबकी भूमि तपी है। ऐसी तपी भूमि पर अगर भगवान् मुझसे प्रेम की दो बूँदें छिड़कने का काम करवाना चाहता है, तो मैं खुशी से कर रहा हूँ। मैं तो गरीबों से भी जमीनें ले रहा हूँ। एक एकड़वाले से भी एक गुंठा ले आया हूँ। अगर वह आधा गुंठा देता, तो भी मैं ले लेता। लोग पूछते हैं कि एक गुंठा जमीन का क्या करोगे? मैं कहता हूँ, कोई हर्ज नहीं, जिसने मुझे वह एक गुंठा दिया है, उसीको ट्रस्टी बनाकर वह जमीन सौंप दूँगा और कहूँगा कि इसमें जो पैदावार हो, वह गरीबों को दे देना। एक एकड़वाले में एक गुंठा देने की वृत्ति होना, इसे ही मैं विचार-क्रान्ति कहता हूँ। जहाँ विचार-क्रान्ति होती है, वहीं जीवन प्रगति की ओर बढ़ता है। अपि प्राज्यम् राज्यम् तृणमिव परित्यज्य सहसा—घास के तिनके की तरह राज्य का परित्याग करनेवाले त्यागी इस भूमि में हो गये हैं।

जीवन-परिवर्तन की प्रेरक प्रक्रिया

विचार-शक्ति की कोई हद नहीं होती। किसी एक मनुष्य को एक ऐसा विचार सूझता है कि उससे मनुष्य-जीवन में क्रान्ति हो जाती है। आपने देखा होगा कि कुछ महापुरुषों के विचार में ऐसी शक्ति होती है कि वे दूसरे के जीवन पलट देते हैं। विचार जगाने के लिए ही मैंने उस गरीब से भी एक गुंठा जमीन ले ली। और जहाँ मैं श्रीमानों से जमीन ले रहा हूँ, वहाँ उनके सिर पर मेरा वरदहस्त है कि "भाइयो, अब तुम्हें शहर में भाग जाने की आवश्यकता नहीं। कब तक भागते रहोगे?" याने जहाँ मैंने श्रीमानों से सौ एकड़ दान लिया, वहाँ उनके मन में एक अच्छा विचार भी जगा दिया। हरएक मनुष्य के दिल में अच्छे-बुरे विचार होते हैं। अब उसके हृदय में एक लड़ाई शुरू होती है, एक महाभारत-युद्ध शुरू होता है।

जाननेवाले जानते हैं कि हर मनुष्य के हृदय में सत् और असत् की लड़ाई नित्य चलती रहती है। जो सत् होता है, उसकी रक्षा होती है और जो असत् होता है, उसका खात्मा होता है :

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।
तयोर्यत् सत्यं यतरत् ऋजीयः तदित् सोमो वति हंति आ असत् ॥

इसीलिए दाता को ढोंगी मानने का कोई कारण नहीं। अवश्य ही उसके द्वारा अन्याय के भी कई काम हुए हैं। क्या कभी बिना अन्याय के हजारों एकड़ जमीन जमा हो सकती है ? अर्थात् जिन्होंने दान दिया है, उन श्रीमानों के जीवन में कई तरह के अन्याय और अनीतियों का होना सम्भव है, पर उनके हृदय में भी एक झगडा शुरू होगा कि हमने जो अन्याय किया क्या वह ठीक है ? फिर परमेश्वर उन्हें बुद्धि देगा और वे अन्याय छोड़ देंगे। परिवर्तन इसी तरह हुआ करते हैं।

काल-पुरुष की प्रेरणा का साथ दें

मेरी प्रार्थना है कि अब देने का जमाना आया है, इसलिए आप सब लोग दिल खोलकर दीजिये। देने से एक दैवी सम्पत्ति निर्माण होती है। उसके सामने आसुरी सम्पत्ति टिक नहीं सकती, वह लुट जाना चाहती है। आसुरी सम्पत्ति ममत्वभाव का आधार रखती है, वह समत्व नहीं जानती। लेकिन दैवी सम्पत्ति समत्व पर आधृत है। दैवी और आसुरी सम्पत्तियों की यही पहचान है।

जहाँ मैं दान लेता हूँ, वहाँ हृदय-मंथन की, हृदय-परिवर्तन की, चित्त-शुद्धि की, मातृ-वात्सल्य की, भ्रातृ-भावना की, मैत्री की और गरीबों के लिए प्रेम की आशा करता हूँ। जहाँ दूसरों की चिन्ता की भावना जागती रहती है, वहाँ समत्वबुद्धि प्रकट होती है। वहाँ वैरभाव टिक नहीं सकता। पुण्य में ताकत होती है, पर पाप में कोई ताकत नहीं होती। प्रकाश में शक्ति होती है, पर अन्धकार में कोई शक्ति नहीं होती। आप प्रकाश को अन्धकार का अभाव नहीं कह सकते, क्योंकि प्रकाश वस्तु है और अन्धकार अवस्तु। लाखों वर्षों के अन्धकार में प्रकाश ले जाइये, एक क्षण में उसका निवारण हो जायगा। वैसे ही आज पुण्योदय हुआ है। इसके सामने वैरभाव टिक नहीं सकता। भूदान-यज्ञ अहिंसा का एक प्रयोग है, जीवन-परिवर्तन का प्रयोग है। मैं तो निमित्तमात्र हूँ और आप भी निमित्तमात्र हैं। परमेश्वर आप लोगों से और

मुझसे काम कराना चाहता है। वह काल-पुरुष की, परमेश्वर की प्रेरणा है। इसीलिए मैं माँग रहा हूँ। अतः आप लोग दीजिये और दिल खोलकर दीजिये। जहाँ लोग एक फुट जमीन के लिए झगड़ते हैं, वहाँ मेरे कहनेभर से सैकड़ों-हजारों एकड़ जमीन देने के लिए तैयार हो जाते हैं, तो आप इसे निश्चय ही परमेश्वर की प्रेरणा समझिये और इसके साथ हो जाइये। इसके विरोध में मत खड़े रहिये। इसमें से भला-ही-भला होगा।

जागतिक युद्ध या परिशुद्ध प्रेम !

हम विज्ञान से पूरा लाभ उठाना चाहते हैं। अगर ऐसा कर सके, तो इस भूमि को स्वर्ग बना सकते हैं। लेकिन हमें इस विज्ञान के साथ हिंसा नहीं, अहिंसा को जोड़ना होगा। अहिंसा और विज्ञान के मेल से ही यह भूमि स्वर्ग बन सकती है। हिंसा और विज्ञान के मेल से तो वह खतम हो सकती है।

पहले की लड़ाइयाँ छोटी-छोटी होती थीं। जरासंध और भीम लड़े। कुश्ती हुई, पांडवों को राज्य मिल गया और सारी प्रजा खून-खराबी से बच गयी। अगर इस जमाने में ऐसी लड़ाइयाँ लड़ी जायँ, तो उनमें हिंसा होने पर भी नुकसान कम है। इसलिए वह द्वंद्व मैं कबूल कर लूँगा। अगर हिटलर और स्टालिन कुश्ती के लिए खड़े हो जाते और तय करते कि जो हारेगा वह हारेगा और जो जीतेगा वह जीतेगा, तो मैं उसे कबूल कर लेता। अगर दुनिया वह द्वंद्व-युद्ध देखने आती, तो मैं उसका निषेध नहीं करता, क्योंकि दुनिया का उसमें विशेष नुकसान न होता। किन्तु अब द्वंद्व-युद्ध का जमाना बीत गया। पहले द्वंद्व-युद्ध होते थे। फिर हजारों लोग आपस में लड़ने लगे। उससे भी नतीजा नहीं निकला। फिर इधर बीस लाख, तो उधर पचास लाख—इस तरह यह जमाना आया कि हजारों-लाखों नहीं, करोड़ों लोग आपस में लड़ने लगे। आज मनुष्य के सामने यही सवाल है कि या तो 'टोटल वार' की तैयारी करो या हिंसा छोड़ अहिंसा को अपनाओ।

मैं कम्युनिस्टों को यही समझाता हूँ कि भाइयो, तुम लोग कहीं दो-चार खून करते हो, कहीं दो-चार मकान जलाते हो, कहीं कुछ लूट-खसोट कर लेते हो, रात में आते हो, दिन में पहाड़ी में छिपते हो! लेकिन अब ऐसे छिपने

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।
तयोर्यत् सत्यं यतरत् ऋजीयः तदित् सोमो वति हंति आ असत् ॥

इसीलिए दाता को ढोंगी मानने का कोई कारण नहीं। अवश्य ही उसके द्वारा अन्याय के भी कई काम हुए हैं। क्या कभी बिना अन्याय के हजारों एकड़ जमीन जमा हो सकती है? अर्थात् जिन्होंने दान दिया है, उन श्रीमानों के जीवन में कई तरह के अन्याय और अनीतियों का होना सम्भव है, पर उनके हृदय में भी एक झगडा शुरू होगा कि हमने जो अन्याय किया क्या वह ठीक है? फिर परमेश्वर उन्हें बुद्धि देगा और वे अन्याय छोड़ देंगे। परिवर्तन इसी तरह हुआ करते हैं।

काल-पुरुष की प्रेरणा का साथ दें

मेरी प्रार्थना है कि अब देने का जमाना आया है, इसलिए आप सब लोग दिल खोलकर दीजिये। देने से एक दैवी सम्पत्ति निर्माण होती है। उसके सामने आसुरी सम्पत्ति टिक नहीं सकती, वह लुट जाना चाहती है। आसुरी सम्पत्ति ममत्वभाव का आधार रखती है, वह समत्व नहीं जानती। लेकिन दैवी सम्पत्ति समत्व पर आधृत है। दैवी और आसुरी सम्पत्तियों की यही पहचान है।

जहाँ मैं दान लेता हूँ, वहाँ हृदय-मंथन की, हृदय-परिवर्तन की, चित्त-शुद्धि की, मातृ-वात्सल्य की, भ्रातृ-भावना की, मैत्री की और गरीबों के लिए प्रेम की आशा करता हूँ। जहाँ दूसरों की चिन्ता की भावना जागती रहती है, वहाँ समत्वबुद्धि प्रकट होती है। वहाँ वैरभाव टिक नहीं सकता। पुण्य में ताकत होती है, पर पाप में कोई ताकत नहीं होती। प्रकाश में शक्ति होती है, पर अन्धकार में कोई शक्ति नहीं होती। आप प्रकाश को अन्धकार का अभाव नहीं कह सकते, क्योंकि प्रकाश वस्तु है और अन्धकार अवस्तु। लाखों वर्षों के अन्धकार में प्रकाश ले जाइये, एक क्षण में उसका निवारण हो जायगा। वैसे ही आज पुण्योदय हुआ है। इसके सामने वैरभाव टिक नहीं सकता। भूदान-यज्ञ अहिंसा का एक प्रयोग है, जीवन-परिवर्तन का प्रयोग है। मैं तो निमित्तमात्र हूँ और आप भी निमित्तमात्र हैं। परमेश्वर आप लोगों से और

मुझसे काम कराना चाहता है। यह काल-पुरुष की, परमेश्वर की प्रेरणा है। इसीलिए मैं माँग रहा हूँ। अतः आप लोग दीजिये और दिल खोलकर दीजिये। जहाँ लोग एक फुट जमीन के लिए झगड़ते हैं, वहाँ मेरे कहनेभर से सैकड़ों-हजारों एकड़ जमीन देने के लिए तैयार हो जाते हैं, तो आप इसे निश्चय ही परमेश्वर की प्रेरणा समझिये और इसके साथ हो जाइये। इसके विरोध में मत खड़े रहिये। इसमें से भला-ही-भला होगा।

जागतिक युद्ध या परिशुद्ध प्रेम!

हम विज्ञान से पूरा लाभ उठाना चाहते हैं। अगर ऐसा कर सके, तो इस भूमि को स्वर्ग बना सकते हैं। लेकिन हमें इस विज्ञान के साथ हिंसा नहीं, अहिंसा को जोड़ना होगा। अहिंसा और विज्ञान के मेल से ही यह भूमि स्वर्ग बन सकती है। हिंसा और विज्ञान के मेल से तो वह खतम हो सकती है।

पहले की लड़ाइयाँ छोटी-छोटी होती थीं। जरासंध और भीम लड़े। कुश्ती हुई, पांडवों को राज्य मिल गया और सारी प्रजा खून-खराबी से बच गयी। अगर इस जमाने में ऐसी लड़ाइयाँ लड़ी जायँ, तो उनमें हिंसा होने पर भी नुकसान कम है। इसलिए वह द्वंद्व मैं कबूल कर लूँगा। अगर हिटलर और स्टालिन कुश्ती के लिए खड़े हो जाते और तय करते कि जो हारेगा वह हारेगा और जो जीतेगा वह जीतेगा, तो मैं उसे कबूल कर लेता। अगर दुनिया वह द्वंद्व-युद्ध देखने आती, तो मैं उसका निषेध नहीं करता, क्योंकि दुनिया का उसमें विशेष नुकसान न होता। किन्तु अब द्वंद्व-युद्ध का जमाना बीत गया। पहले द्वंद्व-युद्ध होते थे। फिर हजारों लोग आपस में लड़ने लगे। उससे भी नतीजा नहीं निकला। फिर इधर बीस लाख, तो उधर पचास लाख—इस तरह यह जमाना आया कि हजारों-लाखों नहीं, करोड़ों लोग आपस में लड़ने लगे। आज मनुष्य के सामने यही सवाल है कि या तो 'टोटल वार' की तैयारी करो या हिंसा छोड़ अहिंसा को अपनाओ।

मैं कम्युनिस्टों को यही समझाता हूँ कि भाइयो, तुम लोग कहीं दो-चार खून करते हो, कहीं दो-चार मकान जलाते हो, कहीं कुछ लूट-खसोट कर लेते हो, रात में आते हो, दिन में पहाड़ी में छिपते हो! लेकिन अब ऐसे छिपने

का जमाना खतम हो चुका, अब ऐसी हरकतों से कोई लाभ नहीं। अगर लड़ाई लड़नी ही है, तो विश्वयुद्ध की तैयारी करो और उसीकी राह देखो। लेकिन जब तक करोड़ों के पैमाने पर हिंसा करने की तैयारी नहीं करते, तब तक छोटी-छोटी लड़ाइयों का यह तरीका छोड़ दो। तुम्हें वोट देने का यह जो अधिकार मिला है, उससे लाभ उठाओ। प्रजा को अपने विचार के लिए तैयार करो।

'जागतिक युद्ध या परिशुद्ध प्रेम !' यही समस्या आज विज्ञान ने हमारे सामने खड़ी कर दी है। इसलिए अगर प्रेम और अहिंसा का तरीका आजमाना चाहते हो, तो इन जमीनों का ममत्व छोड़ दो, नहीं तो हिंसा का ऐसा जमाना आनेवाला है कि उसमें सारी जमीनें और उस जमीन पर रहनेवाले प्राणी खतम हो जायँगे। अतः यह समझकर कि भगवान् ने यह समस्या हमारे सामने खड़ी कर दी है, निरन्तर दान दिया करो।

वरंगल
२९-५-'५१

⊙

सेवाग्राम से दिल्ली

[जून १९५१ से नवम्बर १९५१]

अंतिम मुकाबला साम्यवाद और सर्वोदय में

: १३ :

[तेलंगाना-यात्रा से लौट आने पर]

इस मुसाफिरी में मुझे जो अनुभव आये, उनसे मेरा विश्वास और भी बढ़ गया कि दुनिया में अगर किन्हीं दो शक्तियों का मुकाबला होनेवाला है, तो वह होगा कम्युनिज्म–जिसे साम्यवाद कहते हैं—और सर्वोदय-विचार में। बाकी की जितनी शक्तियाँ दुनिया में काम कर रही हैं, वे सारी ज्यादा दिन नहीं टिकेंगी। मुख्यतः ये ही दो विचार हैं, जिनके बीच मुकाबला होगा; क्योंकि इनमें साम्य भी बहुत है और विरोध भी उतना ही है। जमाने की माँग भी यही है। इसलिए हम सिर्फ सर्वोदय का विचार करते रहें, उस पर कुछ लिखते रहें या उसका चिंतन भी करते रहें, तो उतनेभर से हमारा काम नहीं चलेगा। हमें उस विचार को सफल बनाने का भी प्रयत्न करना चाहिए। जब हम यह बता सकेंगे कि 'कांचनमुक्त समाज-रचना हो सकती है, स्पर्धारहित समाज-रचना हो सकती है'—भले ही वह छोटे पैमाने पर क्यों न हो—तभी हम उस मुकाबले में टिक सकते हैं, नहीं तो संभव है कि साम्यवाद ही आ जाय। इसलिए तेलंगाना में जो काम हुआ, उसकी बुनियाद, पवनार में शुरू किया हुआ हमारा प्रयोग है, यह एक बात मेरे मन में विशेष दृढ़ हो गयी।

साक्षात्कार

यात्रा में अनुभव तो बहुत-से आये। उन सबका सार दो शब्दों में कह दूँगा। अपना अनुभव किस शब्द में रखूँ? यह जब विचार आया, तो मुझे 'साक्षात्कार' शब्द ही सूझा। मुझे ईश्वर का एक प्रकार का साक्षात्कार ही हुआ। मानव के हृदय में भलाई है और उसका आवाहन किया जा सकता है, यह विश्वास रखकर मैंने काम किया, तो भगवान ने वैसा ही दर्शन दिया।

मैं यह भी मानता हूँ कि अगर 'मानव का चित्त असूया, मत्सर, लोभ आदि प्रवृत्तियों से भरा है' यह मानकर मैं गया होता, तो मुझे वैसा ही दर्शन भगवान् ने दिया होता। इस तरह मैंने इसमें देख लिया कि भगवान् कल्पतरु हैं। जैसी हम कल्पना करते हैं, वैसा रूप वह प्रकट करता है। अगर हम विश्वास रखें कि भलाई मौजूद है, बुराई नाचीज है, तो वैसा ही अनुभव आ सकता है।

सेवाग्राम, वर्धा
२६-६-'५१

अहिंसा की खोज : मेरा जीवन-कार्य : १४ :

लोग ऐसी अपेक्षा रखते हैं कि यहाँ आने पर मैं जमीन माँगता फिरूँगा। लेकिन इस तरह की कोई सत्त्व-परीक्षा करने का मेरा विचार नहीं है। जो मैं पहले का था, वही यहाँ वापस आया हूँ। यद्यपि बीच में मेरा वामनावतार का रूप प्रकट हुआ और वह अभी लुप्त नहीं हुआ है, तथापि उसका कार्य यहाँ अभी मुझे शुरू नहीं करना है। लोग जानते हैं कि यदि कोई अनायास आकर मुझे दरिद्रनारायण की सेवा के लिए जमीन दे जाय, तो वह मैं दोनों हाथों लूँगा और दोनों हाथों बाँट दूँगा। किन्तु अब जो मेरा कार्यक्रम है, वह उससे भी कठिन और महत्त्व का है। भूमि के बँटवारे की समस्या मुझे कभी मुश्किल नहीं मालूम हुई। यदि सरकार, जनता तथा सेवक-वर्ग विचार करें, तो वह सहज में हल होने लायक है। उसके लिए मुझे अधिक विचार करने की जरूरत नहीं।

अहिंसा का प्रयोग ही एकमात्र लक्ष्य

मैं एक मार्ग का प्रयोगी हूँ। अहिंसा की खोज करना मेरा बहुत वर्षों से जीवन-कार्य रहा है और मेरी शुरू की हुई प्रत्येक कृति, हाथ में लिया और छोड़ा हुआ प्रत्येक काम, सब उसी एक प्रयोग के लिए हुए और हो रहे हैं। विभिन्न संस्थाओं की सदस्यता त्याग देने में भी मेरी दृष्टि अहिंसा की खोज

करने की ही रही। अहिंसा का विकास करने के लिए मुझे 'मुक्त' ही रहना चाहिए। 'मुक्त' का मतलब 'कर्ममुक्त' या 'कार्यमुक्त' से नहीं, किन्तु विभिन्न संस्थाओं के कामकाज से मुक्त रहना है। अहिंसा के लिए 'संस्था' बाधक है, अभी इस निर्णय पर मैं नहीं पहुँचा; पर जिस दिन पहुँचूँगा, उस दिन दूसरों से भी संस्था छोड़ने के लिए कहूँगा।

मैं शान्ति-सैनिक के नाते गया !

अहिंसा के पूर्ण प्रयोग के लिए तो वास्तव में देह-मुक्त ही होना चाहिए। जब तक वह स्थिति नहीं आती, तब तक जितना सम्भव हो देह से, संस्थाओं से और पैसे से अलग रहकर काम करने की मेरी योजना है। बीच में यह जो प्रयोग किया, वह केवल भूमिदान प्राप्त करने का प्रयोग नहीं रहा। निःसन्देह भूमिदान बहुत बड़ी वस्तु है, पर मेरे सामने मुख्य कल्पना यही है कि हमारी सामाजिक और व्यक्तिगत, सब प्रकार की कठिनाइयों का परिहार अहिंसा से कैसे होगा, इसकी खोज करूँ। यह मेरा मुख्य कार्य है और इसीके लिए मैं तेलंगाना गया था। इसीलिए मैंने इस प्रवास का यही वर्णन किया कि शान्ति-सेना खड़ी करने की जो टेर मेरे चित्त ने लगायी थी, वहाँ उसके अमल का एक अवसर मिला। वहाँ मैं एक शान्ति-सैनिक के नाते गया था। यदि मैं यह काम टालता, तो उसका यही अर्थ होता कि मैंने अहिंसा और शान्ति-सेना का काम करने की अपनी प्रतिज्ञा ही तोड़ दी।'

आश्रम में दही बना रहा हूँ

मेरा यह काम आश्रम तक ही सीमित नहीं। आश्रम में तो मैं दही बना रहा हूँ। तैयार होने पर उसे बहुत-से दूध में मिलाकर उसका भी दही बनाने की मेरी कल्पना है। पहले यह प्रयोग देहातों में बाँटना है। देहातों में उसकी सिद्धि किस मात्रा में होती है, इसका अनुभव प्राप्त कर उसे सारे देश के सामने रखना है। इस तरह राम-राज्य स्थापित करने की बहुत बड़ी प्रतिज्ञा मेरे मन में है।

दिव्य-आयुधों से सज्ज होइये !

हम प्रतिज्ञा करें कि हम हाथ में कुदाली लेंगे, झाड़ू-खपरा और फावड़ा लेंगे। हम इन दिव्य-आयुधों से सजेंगे, भूषित होंगे, क्योंकि हमें सुर-कार्य करना है। सुर-कार्य करने के लिए भगवान् अनेक आयुधों से विभूषित होकर ही अवतरित होते हैं। जब हम ये सब औजार लेकर काम करेंगे, तो भगवान् अवश्य सफलता देंगे; क्योंकि इस काम में असफलता ईश्वर को अपेक्षित ही नहीं है। ईश्वर ही यह सब कहलवाता है और वही पूरा करानेवाला है। आइये, ऐसा ही विश्वास रखकर हम काम करें।

'ऐसे भीतर पैठिये !'

अब एक आखिरी बात। वह यह कि हम एक-दूसरे से प्रेम करें। हममें एक-दूसरे के प्रति अपार प्रेम होना चाहिए। 'दूजापन' हरगिज बाकी न रहे। मनुष्य को अपने निज से जो प्रेम होता है, वह निरुपचार होता है। याने उस प्रेम में कहीं उपचार नहीं होता, दिखावटीपन नहीं होता। वह बिलकुल भीतर पैठा हुआ प्रेम होता है। आइये, हम दूसरों से वैसा ही प्रेम करें। यह एक बात हम सँभाल लें, तो बाकी सब ईश्वर सँभाल लेगा।

परंधाम-आश्रम, पवनार

२७-६-'५१

कल सवेरे यहाँ से दिल्ली के लिए रवाना होना है। रास्ते में, एक काम प्रमुख रूप से मेरी नजर के सामने रहेगा। मुझे गरीबों को जमीनें दिलवानी हैं। माता और पुत्रों का जो बिछोह हुआ है, उसे दूर कर मुझे उनका संबंध जोड़ना है। जो लोग जमीन पर मेहनत कर सकते हैं, उनके पास आज जमीनें नहीं हैं, यह अच्छी बात नहीं। इससे हिंदुस्तान का उत्पादन कम हो रहा है, भेदभाव और असंतोष बढ़ रहा है। इसलिए खेत पर मेहनत करनेवाले हरएक आदमी को जमीन मिलनी ही चाहिए। अब यह जमीन कैसे मिले? इतिहास में एक पद्धति यह दीख पड़ती है कि धनिकों की जमीनें उनसे छीन ली जायँ। लेकिन यह ढंग मानवता के विरुद्ध है और उसमें श्रेय भी नहीं। उससे समाज में वैर और द्वेष बढ़ेंगे, सुख-शांति नहीं मिलेगी। इसलिए लोग जमीनें सहकार से, प्रेम, खुशी और आत्मीयतापूर्वक दें, ऐसे प्रयत्न होने चाहिए।

यदि आपको यह कार्यक्रम जँचता हो, तो आप भी जमीन देने के लिए झट-पट आगे आयें। प्रत्येक व्यक्ति कुछ-न-कुछ जमीन दे। खरीदकर दे, तो भी चलेगा। मैं पैसा नहीं लेता। तेलंगाना में मैंने एक जगह जमीनें माँगीं, तो एक ने जेब में हाथ डाल मुट्ठीभर रुपया बिना गिने मेरे सामने रख दिया और कहा कि 'गरीबों को बाँट दो।' मैंने कहा, 'मुझे गरीबों को शरमिंदा नहीं करना है। इन्हीं रुपयों ने तो दुनियाभर में माया निर्माण की है। आपके पास रुपये हैं, तो जमीनें खरीदकर दीजिये।' मैंने जो काम शुरू किया है, उसका नाम 'भू-दान-यज्ञ' है, केवल 'भू-दान' नहीं। दान कौन करेगा? जो धनिक है, वह। लेकिन 'यज्ञ' में तो छोटा-बड़ा, हरएक भाग ले सकता है। हमें मुल्कभर देने की वृत्ति बढ़ानी है, एक हवा ही निर्माण करनी है। हमें लेना तो मालूम है, लेकिन देना मालूम नहीं। इसलिए देने की हवा निर्माण करनी चाहिए। अतः वर्धा की ओर से आप लोग मुझे मेरे हाथ भर-भरकर भेजें। यद्यपि जाते हुए मैं खाली हाथ ही जानेवाला हूँ और जमीनें अपनी जगह पर ही रहेंगी, फिर भी उन्हें गरीबों तक पहुँचाना है। तेलंगाना में कम्युनिस्टों के उपद्रव के कारण ही जमीनें मिली हों, तो हिंदुस्तान में अहिंसक क्रांति की आशा ही छोड़

देनी होगी। लेकिन मुझे आशा है कि यदि लोग भू-दान-यज्ञ का मूल विचार भलीभाँति समझ लें, तो गरीबों की कद्र कर प्रेमपूर्वक मुझे जमीनें देंगे। यदि यह आशा सफल हुई, तो 'अहिंसक-क्रांति' को बहुत बल मिलेगा। गरीबों को सुख देने का दूसरा साधन आज तो भी उपलब्ध नहीं है।

परंधाम, पवनार
११-९-'५१

'सर्वोदय के पहले सर्वनाश जरूरी नहीं!' : १६ :

क्या लोग पागल हुए हैं, जो मुझ फकीर को जमीन देते जा रहे हैं? उन्होंने समझ लिया है कि क्रान्ति टल नहीं सकती। साथ ही चीन और रूस में जैसी क्रान्तियाँ हुईं, वैसी वे नहीं चाहते। उन्हें विश्वास हो गया है कि अहिंसक क्रान्ति मेरे तरीके से ही आ सकती है, इसीलिए वे जमीन दे रहे हैं। जो यह समझते हों कि तेलङ्गाना में जमींदारों से जो जमीनें मिलीं, वे कम्युनिस्टों के अत्याचारों से भयभीत होकर ही मिलीं, वे अपनी राय को दुरुस्त करें। अगर यह सही माना जाय, तो यह भी मानना होगा कि 'सर्वोदय के पहले सर्वनाश जरूरी है।' लेकिन ऐसा नहीं है। आज भी हिन्दुस्तान में सद्भावना काफी है, उसे जगानेवाला योग्य आदमी चाहिए। भूदान-यज्ञ को आप जमीनें दिलाने का काम न समझें। यह एक अहिंसक क्रान्ति का काम है और उसके लिए हिन्दुस्तान की भूमि तैयार है।

भीख नहीं, गरीबों का हक

मैं जो जमीन माँग रहा हूँ, वह गरीबों के हक की माँग कर रहा हूँ। मैं गरीबों को दीन नहीं बनाना चाहता। जब उन्हें जमीन तकसीम की जायगी, तो मैं उनसे कहूँगा कि तुम्हारी ही जमीन तुम्हें वापस मिल रही है। मैं चाहता हूँ कि हर कोई मुझे अपना लड़का या भाई समझकर मेरा हिस्सा मुझे दे दे। जो आज नहीं देते, वे कल देंगे; दिये बिना उन्हें चारा नहीं। हिन्दुस्तान में ऐसा कोई नहीं, जो हमें जमीन देने से इनकार कर सके।

परंधाम, पवनार
१२-९-'५१

मालकियत छोड़ो ! : १७ :

'सारी भूमि गोपाल की है, दरिद्रनारायण की है और वह उसे मिलकर रहेगी ।' आज का क्षण यही तकाजा लेकर आया है ! ये शब्द मेरे नहीं, यह तो भगवान् की इच्छा है, जो मेरे द्वारा प्रकट हो रही है ।

सूर्य घर-घर पहुँचता है । उसकी रोशनी जितनी राजा को मिलती है, उतनी ही भंगी को । भगवान् कभी अपनी चीजों का विषम बँटवारा नहीं कर सकता । अगर उसने हवा, पानी, प्रकाश और आसमान के वितरण में कोई भेदभाव नहीं किया, तो यह कैसे हो सकता है कि वह जमीन ही सिर्फ मुट्ठीभर लोगों के हाथ में रहने दे ? इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप अपनी जमीन पर से अपना स्वामित्व छोड़ दें । जमीन पर मालकियत रखना न तो उचित है और न न्याय्य ही ।

सितम्बर, '५१

पाँच करोड़ एकड़ जमीन चाहिए : १८ :

मधु वाता ऋतायते, मधु क्षरन्ति सिन्धवः ।
माध्वीर् नः सन्तु ओषधीः ॥
मधु नक्तम्, उत उषसः, मधुमत् पार्थिवं रजः ।
मधु द्यौर् अस्तु नः पिता ॥
मधुमान् नो वनस्पतिः, मधुमान् अस्तु सूर्यः ।
माध्वीर् गावो भवन्तु नः ॥

आज का यह गांधी-जयन्ती का दिन एक पवित्र दिन है । वैसे तो भगवान् के दिये सारे दिन पवित्र ही होते हैं । खासकर वे दिन अत्यन्त पवित्र होते हैं, जब मनुष्य को कोई अच्छा संकल्प और अच्छा विचार सूझता है, अच्छा काम उससे होता है । लेकिन अलावा इसके, समाज-जीवन में और भी कुछ ऐसे दिन होते हैं, जब मनुष्य की सद्भावना जाग्रत हो उठती है । ऐसे ही दिनों में से एक आज का दिन है ।

परमेश्वर की योजना

मेरी यह यात्रा परमेश्वर ने मुझे सुझायी, ऐसा ही मुझे मानना पड़ता है। छह माह पहले मुझे खुद को ऐसा कोई खयाल नहीं था कि जिस काम के लिए आज मैं गाँव-गाँव, द्वार-द्वार घूम रहा हूँ, वह मुझे करना होगा—उसमें मुझे परमेश्वर निमित्त बनायेगा। लेकिन परमेश्वर की कुछ ऐसी योजना थी, जिससे यह काम मुझे सहज ही स्फुरित हुआ और उसके अनुसार कार्य भी होने लगा। होते-होते उसे ऐसा रूप मिल गया; जिससे लोगों की नजरों में भी यह बात आ गयी कि यह एक शक्तिशाली कार्यक्रम है, जो हमारे देश के लिए ही नहीं, बल्कि आज के काल के लिए भी अत्यन्त उपयोगी है। यह एक युगपुरुष की माँग है, इस तरह की भावना लोगों के दिल में आ गयी। उसका प्रतिबिम्ब मेरे हृदय में भी उठा। नतीजा यह हुआ कि तेलंगाना की यात्रा समाप्त करने के बाद बारिश के दिन वर्धा में बिताने के लिए मैं परंधाम जा बैठा। दो-ढाई महीने वहाँ रहकर आज फिर वहाँ से निकल पड़ा और घूमते-घूमते आपके इस गाँव में आ पहुँचा हूँ।

विशेष हस्ती की मौजूदगी में

आज महात्मा गांधी का जन्म-दिवस है। हम रोज सूत कातते हैं। आज भी यहाँ समुदाय के साथ सूत-कताई हुई। इसमें चन्द लोग सम्मिलित थे, उनकी तादाद बहुत कम थी, फिर भी आज की सूत-कताई में मुझे एक विशेष हस्ती की अनुभूति हुई। अभी जो मैं बोल रहा हूँ, वह भी उसकी हाजिरी में ही बोल रहा हूँ।

भगवन्, मेरी हस्ती भी मिटा !

मैंने यह जो काम उठाया है, वह गरीबों की भक्ति का काम है, श्रीमानों की भक्ति का काम है। उसमें सब लोगों की भक्ति हो जाती है। मेरा अपना विश्वास है कि यह कार्य सब लोगों के दिलों को जँचनेवाला है। मैं जमीन माँगता फिरता हूँ। किसी रोज कम मिलती है, तो मुझे यह नहीं लगता कि आज जमीन कम मिली। यही लगता है कि जो भी मुझे मिलता है, केवल

प्रसाद-रूप है। आगे तो भगवान् खुद अपने अनन्त हाथों से भर-भरकर देगा। जब वह अनन्त हाथों से देने लगेगा, तब मेरे ये दो हाथ निकम्मे और अपूर्ण साबित होंगे। आज तो केवल एक हवा तैयार करने का काम हो रहा है। परमेश्वर का बल इस काम के पीछे है, ऐसा प्रतिक्षण महसूस कर रहा हूँ। आज के पवित्र दिन पहले उससे यही प्रार्थना करता हूँ कि 'भगवन्, जमीन तो मुझे लोग दें या न दें, जैसी तेरी इच्छा हो वैसा होने दे; लेकिन मेरी तुझसे इतनी ही माँग है कि मैं तेरा दास हूँ, मेरी हस्ती मिटा, मेरा नाम मिटा। तेरा ही नाम दुनिया में चले, तेरा ही नाम रहे। मेरे मन में राग-द्वेष आदि जो भी विकार रहे हों, सबमें से इस बालक को मुक्त कर। इसके सिवा अगर मैं और कोई भी चाह अपने मन में रखूँ, तो तेरी कसम! यह मैं बोल तो रहा हूँ तुलसीदास की भाषा में, लेकिन वह मेरी आत्मा बोल रही है :

चहौं न सुगति सुमति संपति कछु,
रिधि सिधि विपुल बड़ाई।

मुझे और किसी चीज की जरूरत नहीं। तेरे चरणों में स्नेह बढ़े, प्रेम बढ़े।'

'संत सदा सीस ऊपर, राम-हृदय होई!'

लोग मुझे पूछते हैं, आप दिल्ली कब पहुँचेंगे? मैं कहता हूँ, मुझे मालूम नहीं, सब कुछ उसीकी मर्जी पर निर्भर है। मेरी कुछ उम्र भी हो चुकी है। शरीर भी कुछ थक गया है। लेकिन अन्तर में यही वृत्ति रहती है और नित्य उसीका अनुभव करता हूँ। जरा पाँच मिनट भी विश्राम मिलता है, थोड़ा एकान्त मिलता है, तो मन में यही वासना उठती है कि मेरा सारा अहंकार खतम हो जाय। इसके सिवा कुछ भी विचार मन में नहीं आता। आज परमेश्वर के साथ कैसी भाषा बोल रहा हूँ? मनुष्य की वाणी से क्या बयान कर रहा हूँ? मैं बोल रहा हूँ कि आज ईश्वर के साथ बापू की हस्ती का अनुभव हो रहा है। मुझ पर उनके निरन्तर आशीर्वाद रहे हैं। मैं तो स्वभावतः एक जंगली जानवर रहा हूँ। मुझे सभ्यता मालूम नहीं है। मैं तो बड़े-बड़े लोगों के संपर्क से भी डरता हूँ। लेकिन आजकल निःशंक होकर हर किसीके घर में चला जाता हूँ। जैसे नारद मुनि देवों, राक्षसों और मानवों में, सबमें चले जाते थे,

उनके लिए कहीं भी अप्रवेश नहीं था। वही हालत मेरी है। यह सब बापू के आशीर्वाद का चमत्कार है। मेरा विश्वास है कि मेरे इस काम से दुनिया के जिस किसी कोने में वे बैठे होंगे, वहाँ उनके हृदय को समाधान होता होगा।

मारग में तारण मिले, सन्त राम दोई।
सन्त सदा सीस ऊपर, राम-हृदय होई॥

मीराबाई का यह वचन मुझ पर भी ठीक-ठीक लागू होता है। मुझे भी मार्ग में दो ही तारण मिले। भगवान् की कृपा से एक का आशीर्वाद मेरे सिर पर और दूसरे का स्थान मेरे हृदय में रहा है।

यह सब उसीकी प्रेरणा

आज मैं कुछ बोल तो रहा हूँ, लेकिन मुश्किल से बोल सकूँगा। कोशिश तो करूँगा कि जो कहूँ, अच्छी तरह कह सकूँ। मुझे बहुत दफा लगता है कि मैं घूमने के साथ-साथ कुछ बोल भी लेता हूँ, लेकिन इससे क्या परिणाम निकलता होगा? कल की ही बात है। एक गाँव में हम ठहरे थे। वहाँ सारा दिन बिताया और मेरा एक व्याख्यान भी हुआ। उस व्याख्यान के परिणाम-स्वरूप या कैसे भी कहिये, चार एकड़ जमीन मुझे मिली। व्याख्यान समाप्त कर मैं अपने डेरे पर आया और उपनिषद् का चिन्तन शुरू कर दिया (आजकल मैंने अपने पास उपनिषद् रखे हैं)। दस मिनट हुए होंगे कि एक भाई आये, जो न मेरी प्रार्थना में शामिल थे और न व्याख्यान ही सुन पाये थे। कहने लगे, जमीन देने आया हूँ। ये भाई ६ मील दूर से आये थे। अपनी ६ एकड़ जमीन में से १ एकड़ मुझे दे गये। मैंने सोचा, यह किसकी प्रेरणा से हो रहा है? जहाँ मैं दिन भर रहा और व्याख्यान सुनाया, वहाँ से ४ एकड़ मिला और जहाँ मेरा व्याख्यान नहीं हुआ, वहाँ से एक गरीब आकर ६ में से १ एकड़ दे जाता है। यह घटना हुई-न-हुई कि एक दूसरे भाई काफी दूर से आये और ५२ एकड़ देकर चले गये। मैं सोचने लगा कि लोगों के दिलों पर किस चीज का असर होता है। आदमी को शब्दों की जरूरत क्यों पड़नी चाहिए? अगर केवल जीवन शुद्ध हो जाय, तो एक शब्द

भी बोलना न पड़े और संकल्प-मात्र से केवल घरबैठे काम हो जाय। लेकिन वैसा शुद्ध जीवन परमेश्वर जब देगा, तब होगा। आज तो वह मुझे घुमा रहा है, माँगने की प्रेरणा दे रहा है। इसलिए मुझे संदेह नहीं कि मेरे माँगने से कुछ नहीं होगा। जो होनेवाला है या हो रहा है, सब उसीकी प्रेरणा से हो रहा है।

यद्यपि मेरी भूख बहुत कम है, फिर भी दरिद्रनारायण की भूख बहुत ज्यादा है। इसलिए जब मुझसे लोग पूछते हैं कि आपका अंक क्या है, कितनी जमीन आपको चाहिए, तो मैं जवाब देता हूँ : 'पाँच करोड़ एकड़ !' जो जमीन जेर-काश्त है, उसीकी मैं बात कर रहा हूँ। अगर परिवार में पाँच भाई हैं, तो छठा मुझे मान लीजिये और चार हों तो पाँचवाँ। इस तरह यह कुल जेरकाश्त जमीन का पाँचवाँ या छठा हिस्सा होता है।

हिंदुस्तान की प्रकृति के अनुकूल !

यह काम साधारण दान का काम नहीं, 'भू-दान' का है। अगर हम किसीको एक रोज भी खाना खिलाते हैं, तो बहुत पुण्य मिलता है। अगर एक रोज के अन्नदान का इतना मूल्य है, तो एक एकड़ जमीन का, जिससे कि एक आदमी की सारी जिंदगी बसर हो सकती है, कितना मूल्य होगा ? इसलिए दरिद्रनारायण के वास्ते सभीसे कुछ-न-कुछ मिलना ही चाहिए। इसीका नाम 'यज्ञ' है। इसलिए हर शख्स से कहता हूँ कि भाई, मुझे कुछ-न-कुछ दे दो। हिन्दुस्तान में यह एक बड़ी भारी क्रान्ति होने जा रही है। अपनी आँखों के सामने मैं वह दृश्य देख रहा हूँ। एक तो क्रांति वह, जो रशिया में हो चुकी है। दूसरी वह, जो अमेरिका में हो रही है। मैं दोनों क्रांतियाँ देख रहा हूँ। लेकिन दोनों में से एक भी हिन्दुस्तान की प्रकृति के अनुकूल नहीं और न यहाँ की सभ्यता के ही अनुकूल है। मैं मानता हूँ कि हिन्दुस्तान की प्रकृति में से एक ऐसा क्रांतिकारी तरीका प्रकट होना चाहिए, जिसका आधार केवल प्रेम-भाव ही हो। अगर लोग अपनी इच्छा से जमीनें देने लग जाते हैं, तो देखते-देखते हिन्दुस्तान की हवा बदल सकती है और हिन्दुस्तान के हाथों

सारी दुनिया के लिए मुक्ति का प्रवेश-द्वार खुल सकता है। इतनी महान् आकांक्षा इस यज्ञ में भरी है और मैं देखता हूँ कि वह सफल होनेवाली है। इसलिए सभीसे मेरी प्रार्थना है कि भूदान के इस प्रश्न को समझिये और इस पर गौर कीजिये। हमारे मामूली काम तो रोज-ब-रोज चलते ही रहेंगे, पर यह काम आवश्यक कर्तव्य है, जिससे हिंदुस्तान तो बच ही जायगा, और देशों को भी बचने का रास्ता मिल जायगा।

रोगों की जड़ मौजूदा अर्थ-व्यवस्था में

जहाँ जाता हूँ, वहाँ लोग मुझे सुनाते हैं कि काला-बाजार जोरों से चल रहा है, रिश्वतखोरी बढ़ रही है। लेकिन इसका मेरे दिल पर कुछ भी असर नहीं होता। मैं यह मानने को तैयार नहीं कि हिन्दुस्तान का हृदय बिगड़ गया है। मैं यह भी नहीं मान सकता कि श्रीमानों के दिल बिगड़ गये हैं। हिन्दुस्तान की भूमि अत्यन्त सुजल, सुफल और मलयज-शीतल है। रोज हम उसका गुणगान करते हैं। लेकिन यह कोई बड़ी सम्पत्ति नहीं। हिन्दुस्तान में जो पारमार्थिक सम्पत्ति है, उसीकी कीमत सबसे ज्यादा है। बुजुर्गों ने बहुत-सी पारमार्थिक सम्पत्ति हमें विरासत में दी है। सारांश, देश में काला-बाजार और रिश्वत चलने के बावजूद हिन्दुस्तान के सारे लोग बिगड़ नहीं गये हैं। इसलिए हमें इस बुराई का कारण ढूँढ़ना चाहिए। 'लीन यु तांग' ने लिखा है कि हिन्दुस्तान 'गाड-इण्टाक्सिटेड' मुल्क है। उनका यह वर्णन हिन्दुस्तान की आज की जनता का यथार्थ चित्रण है। आज भी हमारी जनता ईश्वर-परायण ही है। लेकिन जो इतनी सारी अनीति फैली दीखती है, उसका मतलब यही है कि हिन्दुस्तान की अर्थ-व्यवस्था बिगड़ गयी है, इन्तजाम बिगड़ा है। इसीलिए लोग प्रवाह में पड़कर गलतियाँ कर जाते हैं। अगर हम आर्थिक व्यवस्था बदल सकें, तो आप देखेंगे कि हिन्दुस्तान के लोग सारी दुनिया में एक मिसाल पेश कर सकते हैं।

शोषण-रहित समाज

इसलिए गांधीजी के बाद सर्वोदय-सिद्धान्त माननेवाले हम कुछ लोगों ने एक समाज बनाया है, जिसमें कोई किसीका द्वेष नहीं करता। सब सबसे

प्रेमभाव रखते हैं। कोई किसीका शोषण नहीं करता। मेरा विश्वास है कि जैसे ही हम शोषणरहित समाज-निर्माण कर सकेंगे, हिन्दुस्तान के लोगों की प्रतिभा प्रगट हुए बिना नहीं रहेगी। इसलिए हम सर्वोदयवालों ने निश्चय किया है कि हम समाज-रचना बदल देंगे। मेरा इसमें विश्वास है, नहीं तो मुझे इस तरह खुले दिल से जमीनें माँगने की हिम्मत न होती। मैं जानता हूँ कि जितनी मेरी योग्यता है, उससे ज्यादा फल ईश्वर ने मुझे दिया है। मुझे जरा भी शिकायत नहीं कि मुझे फल कम मिला। मेरा काम इतना ही है कि मैं लोगों को अपना विचार समझाऊँ।

सागर

२-१०-'५१

कत्ल, कानून और करुणा : १९ :

लोग मुझसे पूछते हैं कि 'आप कैसे बे-मौके आये? यह तो इलेक्शन (चुनाव) का मौका है। यदि आप वोट देने को कहते, तो ठीक भी था।' मैंने उनसे कहा : 'हम अच्छे मौके पर आये हैं। हम वोट के लिए नहीं कहते, केवल जमीन के लिए कहते हैं। आप अपनी जमीन इस वक्त हमें दे दें, तो इससे अच्छा और कौन-सा मौका आपके लिए हो सकता है? अब रही बे-मौके की बात! सो मैं बे-मौके नहीं आया हूँ। यदि मैं अपना काम अभी न करूँ, उसे कल के लिए छोड़ दूँ, तो किस भरोसे पर करूँगा? यह शरीर अब थक गया है। न जाने कब निमंत्रण आ जाय। इसलिए अपना काम कल के लिए छोड़ रखना बुद्धिमत्ता नहीं। अच्छे काम का मौका वही है, जिस क्षण वह हो जाय। फिर मैं आपके यहाँ उस मौके पर आया हूँ, जब कि किसीके यहाँ शादी हो सकती है और इलेक्शन का समय भी हो सकता है। 'टॉल्स्टॉय' ने ठीक ही कहा है कि 'जिस क्षण जो कार्य होता है, उसके लिए सबसे उत्तम मौका वही है।' किसी कवि ने भी कहा है :

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में परलय होत है, बहुरि करेगो कब ?

मेरी सत्ता न तो भूतकाल पर है और न भविष्यकाल पर। जिस वर्तमान क्षण में मैं हूँ, उसी पर मेरी सत्ता है। इसलिए मैं तो ठीक ही मौके पर आया हूँ। मैं आप लोगों को जगाने आया हूँ कि हिन्दुस्तान में अगर आप शांतिमय क्रांति चाहते हैं, रक्तमय क्रांति टालना चाहते हैं, तो जिनके पास जमीन नहीं है, उन्हें वे लोग जमीन दें, जिनके पास वह है।

काम के तीन ही रास्ते

दुनिया में काम करने के तीन ही रास्ते हैं: १. कत्ल, २. कानून और ३. करुणा। पहला तरीका कत्ल का होता है। क्या कत्ल के जरिये कोई काम करने से किसीका कल्याण हो सकता है? किसीका कल्याण नहीं होता। दूसरा तरीका कानून का होता है। मैं कानून ऐसा चाहता हूँ कि जिसे सर्व-साधारण माने। कोई काम कानून बनाकर जबरदस्ती से नहीं कराया जा सकता। जो विचार जनता को मान्य नहीं, वह कानून से अमल में नहीं आ सकता। कानून बनाने का अर्थ तो यह होता है कि लोग उसे खुशी से मानें और उससे अमन-चैन कायम हो।

आखिर कानून का बनाना या बिगाड़ना आपके ही हाथ में होता है। मान लीजिये कि सरकार एक कानून बनाती है और आप उसे नहीं मानते, तो उस कानून का मतलब ही क्या रहा? सरकार ने एक कानून बनाया कि चौदह साल से कम उम्रवाले बाल-बच्चों की शादी नहीं होनी चाहिए। लेकिन हम तो बीस-बीस बरस की उम्र में बच्चों की शादियाँ चाहते हैं। याने कानून अधिक नहीं, बल्कि कम-से-कम बनता है। सरकार को कानून के जरिये लोगों की सेवा करनी है। सरकार जब कानून बनायेगी, तो वह उसे अपने देश के हर हिस्से में लागू करेगी। यही तो कानून की खूबी है। लेकिन कोई कानून के जरिये क्रांति नहीं कर सकता। आप देखते हैं कि बुद्ध के जमाने में क्या हुआ? अगर वह राज्य में रहकर क्रांति कर सकता, तो राज्य क्यों छोड़ता? क्रांतिकारी काम कानून से नहीं बनता।

अब आपके सामने केवल तीसरा रास्ता रह जाता है, और वह है, करुणा का रास्ता। फिर आप करुणा से ही यह काम क्यों नहीं कर डालते? अगर आप जमीन का मसला हल नहीं करते, तो जो भी सरकार आयेगी, वह कामयाब नहीं हो सकती। यह बात दूसरी है कि वह आपसे पाँच साल माँगे। यह मसला हल न हुआ, तो जो भी सरकार यहाँ आयेगी, वह सिर्फ बदनाम होने आयेगी और पाँच साल का समय पूरा करके खतम हो जायगी।

जमींदार 'स्वामित्व-दान' दें

इसलिए मैं आपसे बार-बार कहता हूँ कि आप मुझे अपनी हैसियत के मुताबिक अपनी-अपनी जमीन दान में दे दें। मैं हरएक आदमी से दान माँगता हूँ, बड़े-बड़े जमींदारों से भी दान माँगता हूँ और छोटे-छोटे जमींदारों से भी। आप यह कहेंगे कि अब तो हमारी जमीन सरकार ने ले ली है, अब हम आपको क्या दे सकते हैं? जो जमीन सरकार आपसे लेगी, उसका 'काम्पेन्सेशन' (मुआवजा) आपको मिलनेवाला है। यदि आप चाहें, तो वह जमीन आप हमें दान में दे सकते हैं और अपने 'काम्पेन्सेशन' का भी हक छोड़ सकते हैं। ऐसे दान में बड़े-बड़े जमींदार और छोटे-छोटे जमींदार जो चाहें, सब कोई दे सकते हैं।

चिरगाँव
१६-१०-'५१

भगवान् श्रीकृष्ण के कारण भारतीय समाज को एक रूप मिला है, जिसका दर्शन हमें गीता में मिलता है। लेकिन दुःख की बात है कि गीता ने जो आदर्श हमारे सामने रखा और जिसका दर्शन हमें श्रीकृष्ण के जीवन में मिला, उसका प्रत्यक्ष स्वरूप भारतीय समाज में देखने को नहीं मिलता। इतना ही नहीं, हमारा यह देश विदेशी आक्रमण का शिकार होकर दो-ढाई सौ साल गुलाम भी रहा। इस बीच तो हमारी दुर्दशा चरम सीमा को पहुँच गयी। सौभाग्य से जागतिक स्थिति और अपने सत्याग्रह-आन्दोलन के कारण आज हम स्वतन्त्र हो गये हैं; किन्तु स्वतन्त्रता के बावजूद जो दुर्गुण हमारे समाज में घुस गये थे, वे कम नहीं हो पाये, बल्कि तीव्र हो गये। अगर हम उधर ध्यान नहीं देंगे और उनके निवारण की कोशिश भी न करेंगे, तो हमारा स्वराज्य आनन्दप्रद न होगा; बल्कि दुःखप्रद ही होने की सम्भावना है।

सबको मोक्ष का अधिकार

भारतवर्ष का सारा इतिहास देखिये। गीता ने तो यहीं से आरम्भ किया है कि मनुष्य किसी भी समाज में क्यों न जन्म ले, अगर वह अपना-अपना काम प्रेम, भक्ति और निष्ठापूर्वक करता है, तो मोक्ष का अधिकारी बन जाता है। यह सारा उपदेश हमें गीता से सीखना है।

हम गुलाम क्यों बने ?

लेकिन हम देखते हैं कि हमारे समाज में दर्जे पड़ते गये हैं। कुछ लोग अपने को ऊँचे कहलाने लगे और उन्होंने शरीर-परिश्रम से खुद को मुक्त कर दिया। जिन्हें शरीर-परिश्रम करना पड़ा, वे सारे नीच माने गये। अगर देश के लिए परिश्रम करनेवाले नीच माने जायँ, तो वह देश पतन की ओर जाता है। रोमन-इतिहास में ऐसा ही हुआ और हिन्दुस्तान में भी यही हुआ। बाहर के व्यापारी यहाँ आये। यहाँ का व्यापारी गिरने लगा। यहाँ के व्यापारियों के लिए यहाँ के लोगों के दिल में कोई विशेष प्रेम नहीं हो सकता था, क्योंकि उन्होंने आम जनता के जीवन से एकरूप होने की कभी कोशिश

नहीं की। नतीजा यह हुआ कि विदेशी व्यापारियों के मुकाबले में यहाँ के व्यापारी हार गये और देश गुलाम बन गया।

सेवाओं का आर्थिक मूल्यांकन असंभव

अगर आम लोगों में ऊपर के लोगों के लिए सद्‌भावना रहती, तो राष्ट्र के रक्षार्थ बलिदान करने के लिए वे आगे आते। परन्तु यहाँ तो चमड़े का काम करनेवाले हरिजनों से ऊँचे किसान, जो खेती का काम करते थे, माने गये और उनसे और नीचे मेहतर माने गये, जो सफाई का काम करते थे। इस तरह एक-से-एक ऊँचे-नीचे दर्जे माने गये। श्रम की प्रतिष्ठा नहीं रही। फलतः समाज का पतन हो गया। आज भी वही परिस्थिति बनी है। यद्यपि गांधीजी के आने के बाद कुछ लोग परिश्रम करने में हीनता नहीं मानते और कुछ परिश्रम कर भी लेते हैं, पर आम लोगों में तो यही मान्यता है कि परिश्रम करनेवाले योग्यता में नीच हैं। इतना ही नहीं, उनके काम का आर्थिक मूल्य भी कम माना गया। हिंदुस्तान में पहले कभी यह नहीं था कि कोई ब्राह्मण या धर्म-शिक्षक किसान से अपने को ऊँचा मानता हो। उसे तो अपरिग्रही बनकर रहना था। लेकिन आज तो जो शिक्षा पाते हैं, वे भी अपने शिक्षण की बहुत अधिक कीमत आँकते हैं। यह भावना बहुत घातक है। जब तक आर्थिक और सामाजिक जीवन एकरस नहीं हो जाता, समाज शक्तिशाली नहीं बन सकता।

आज समाज में जो यह खयाल है कि ऊँचे वर्गवालों के जीवन के लिए अधिक-से-अधिक वेतन और श्रमनिष्ठों के लिए कम-से-कम वेतन चाहिए, वह हमें हटाना होगा और साम्ययोग स्थापित करना होगा। होना तो यही चाहिए कि अगर मनुष्य कोई बौद्धिक या नैतिक परिश्रम करता है, तो उसका कोई मूल्य ही न आँका जाना चाहिए। डूबते को बचानेवाले के दस मिनट की सेवा का मूल्य कौन, कैसे नाप सकता है? ऐसी सेवा का मूल्य आर्थिक परिभाषा में निकालना ही गलत है। इसी तरह बच्चे का पालन करनेवाली माता के परिश्रम की कीमत नहीं हो सकती और न हमारे राष्ट्रपति की ही, जिनका चिंतन राष्ट्र-विकास के लिए होता रहता है। इन तीनों सेवा-कार्यों में कुछ

प्रकार-भेद हो सकते हैं, परंतु उनकी कीमत पैसे में न आँकी जा सकने में किसी प्रकार का मतभेद नहीं हो सकता।

किसान, मेहतर और राष्ट्रपति को एक ही न्याय

जिस प्रकार केले और पत्थर की बराबरी नहीं हो सकती—पत्थर चाहे सोने का हो या चाँदी का, दोनों वस्तुओं की श्रेणियाँ ही भिन्न हैं—उसी प्रकार मेहतर, माता, तीमारदार, प्रोफेसर आदि के ऐसे असंख्य सेवाकार्य हैं, जिनका मूल्य पैसे में हो ही नहीं सकता। इसलिए होना यह चाहिए कि जो भी शख्स निष्ठापूर्वक समाज-सेवा करे, वह अपनी रोजी का हकदार हो जाय। इसी प्रकार अगर राष्ट्रपति अपने राष्ट्र की सेवा पूरी ताकत के साथ करते हैं—भले ही वह सेवा मानसिक क्यों न हो—तो उन्हें उतनी रोजी मिलनी ही चाहिए, जितनी उनके जीवन-निर्वाह के लिए जरूरी है। जो न्याय किसान-मेहतर के लिए हो, वही राष्ट्रपति के लिए भी होना चाहिए। मैंने प्रोफेसर, न्यायाधीश, किसान, लेखक और सम्पादक आदि के रूप में सभी काम किये हैं, किन्तु उनमें से कोई भी एक काम दूसरे काम की अपेक्षा अधिक योग्यता का था, ऐसा अनुभव मुझे कभी नहीं हुआ। सबमें समान मानसिक आनन्द का अनुभव हुआ।

यह सही है कि काम के प्रकार के अनुसार शारीरिक श्रम की अनुभूति में भिन्नता हो सकती है, परन्तु उसके कारण मानसिक आनन्द कम नहीं हो सकता। जब मुझे कोई जरूरत से ज्यादा चीजें देना चाहता है, तो मुझे सूझता नहीं कि क्या किया जाय? मैं उन्हें ग्रहण नहीं कर सकता। जितने दही की आवश्यकता है, उससे ज्यादा मुझे क्यों मिलना चाहिए और कोई दे, तो भी मुझे उसे स्वीकार क्यों करना चाहिए, यही मेरी समझ में नहीं आता। होना यह चाहिए कि आज का आज, कल का कल। और हर काम का आर्थिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक मूल्य समान हो। गीता ने स्पष्ट रूप से समझाया है कि जो न्याय अपने लिए, वही दूसरे के लिए लागू करना चाहिए।

स्वराज्य के बाद साम्ययोग

अब स्वराज्य के बाद हमें 'साम्ययोग' की स्थापना का आदर्श सामने रखना होगा। इसीको हमने 'सर्वोदय' कहा है। आप चाहे साम्ययोग शब्द का

प्रयोग कीजिये या सर्वोदय का। इसीकी स्थापना करने के लिए मैं गाँव-गाँव घूम रहा हूँ।

भूदान से भूमिवानों पर उपकार

आजकल मैं भू-दान माँगता हूँ। जिनके पास जमीनें नहीं हैं, उन्हें भूमि देना चाहता हूँ। आखिर यह सारा गोरखधंधा क्यों कर रहा हूँ? इसीलिए कि आज समाज में ऊँचे-नीचे माने जानेवाले सभी दर्जे मिटने चाहिए। यह कैसे हो सकता है कि जो खुद खेती नहीं कर सकते, उनके हाथ में खेती हो? और जो खुद खेती नहीं जानते, वे उसे दूसरों के हाथ से काम करवाते हैं और जो जानते हैं, वे मजदूर के तौर पर काम करते हैं। इसीलिए वे पूरी लगन से काम नहीं कर पाते, क्योंकि पैदावार पर उनका हक नहीं रहता। फिर उन्हें मजदूरी भी पैसे में दी जाती है। आखिर यह सब क्यों सहा जाय? क्या इस अवस्था को हम बन्द कर दें, तो कोई अन्याय होगा? जिसके पास जमीन है, उसे अगर मैं समझाऊँ कि भाई, तुम अपनी सौ एकड़ में से पचास एकड़ रखो और पचास एकड़ दे दो, तो क्या इसमें मैं उस पर मित्र के नाते अपना प्रेम प्रकट नहीं कर रहा हूँ? अगर वह कहे कि 'आज तक मेरा जीवन जैसे बना है, उसे मैं निभाना चाहता हूँ', तो मैं समझाऊँगा कि 'भाई, जिसके शरीर का वजन जरूरत से ज्यादा बढ़ गया हो, उसका वजन कम करना, उस पर दया करना, प्रेम करना ही है। इसी तरह जिसका वजन घट गया हो, उसकी हड्डियों पर कुछ मांस चढ़ा देना भी हमारा कर्तव्य हो जाता है। फिर फाजिल वजनवाले को अपना वजन कम करने के लिए अपनी जीवन-पद्धति में कुछ तो फर्क करना ही पड़ेगा। हाथी की तरह चलनेवाला अगर घोड़े की तरह दौड़ने लग जाय, तो यह परिवर्तन उसे सहर्ष स्वीकार करना चाहिए।

उँगलियों की समानता

आप लोग सोचिये कि क्या ईश्वर की योजना ऐसी हो सकती है कि कुछ लोगों के पास जमीन हो और कुछ के पास न हो? मैं यह नहीं कहता कि जिनके पास अधिक जमीन है, वह उन्होंने सबकी सब अन्यायपूर्वक ही

प्राप्त की है। उन्होंने वह उद्योगपूर्वक भी हासिल की होगी, परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि उसे रखने का हक उन्हें प्राप्त हो गया। जो जमीनें आपके पास आ पहुँची हैं, वे दूसरों की हैं और आपको वे प्रेमपूर्वक उन्हें दे देनी चाहिए, भले ही आप आज उनके स्वामी हों। मैं यह भी नहीं कहता कि सबको समान भूमि मिलनी चाहिए। गणित की समानता मैं नहीं चाहता, लेकिन उँगलियों की समानता जरूर चाहता हूँ। ये पाँचों उँगलियाँ बिलकुल समान न होते हुए भी एक-दूसरे के सहकार से रहती हैं और लाखों काम कर देती हैं। पाँचों समान नहीं, इसलिए ऐसा भी नहीं कि एक तो एक इंच लम्बी है और दूसरी एक फुट। याने अगर समानता नहीं है, तो अत्यधिक विषमता भी नहीं चाहिए, तुल्यता होनी चाहिए। इन पाँचों में अलग-अलग शक्तियाँ हैं। उन सारी शक्तियों का विकास होना जरूरी है। इसीको 'पंचायत-धर्म' कहते हैं।

भगवान् की योजना में ही विकेन्द्रीकरण

अगर हम समझ लें कि हरएक की सामाजिक और आर्थिक योग्यता समान है, तो ये भेद मिट सकते हैं। इस भूमि-दान में ही अगर आप सभी लोग मेरे साथ हो जायँ, तो एक महान् आन्दोलन खड़ा हो जायगा, जिससे हिन्दुस्तान की सारी समस्या हल हो जायगी। आपने अहिंसा की शक्ति से ही स्वातन्त्र्य प्राप्त किया है, जब कि उसके लिए दुनिया के दूसरे मुल्कों को हिंसा के तरीके अख्तियार करने पड़े। किन्तु यह निश्चित समझिये कि उसके लिए अनेक खतरों का सामना करने के बाद अब आप अगर दूसरा कदम आर्थिक और सामाजिक समानता कायम करने का नहीं उठाते, तो आपका स्वातन्त्र्य खतरे में है। इसके लिए परमेश्वर की विकेन्द्रित योजना की तरह हमें भी विकेन्द्रित योजनाओं पर अमल करना होगा, सहकारी संस्थाओं द्वारा आर्थिक नियन्त्रण स्थापित करना होगा।

अगर परमेश्वर की योजना में विकेन्द्रीकरण न होता, तो उसे भी बम्बई से दिल्ली और दिल्ली से कलकत्ता घूमना पड़ता। किन्तु उसने हरएक को दो

कान, दो हाथ, दो आँखें देकर आपस में सहकार करने के लिए कह दिया। अगर वह कहीं एक को चार कान और दूसरे को चार आँखें दे देता और देखना हो तो आँखवालों की मदद से देखने और सुनना हो तो कानवालों की मदद से सुनने को कहता, तो आज जिस तरह वह क्षीरसागर में बेफिक्र सो पाता है, नहीं सो सकता था। हमें सहकार की इस खूबी को समझना चाहिए। आज के राजनीतिज्ञ 'वन वर्ल्ड' (एक विश्व) की बात करते हैं। किन्तु परमेश्वर के लिए 'वन वर्ल्ड' तो नक्षत्र सहित सारा त्रिभुवन ही हो सकता है। आप कल्पना ही कर लें कि अगर परमेश्वर ने किसी एक को ही अक्ल तकसीम करने (बाँटने) की मोनोपली (एकाधिकार) दे दी होती, तो उसके 'सप्लाई-विभाग' में कितना काला-बाजार चलता और तकसीम में कितनी गड़बड़ियाँ हुई होतीं। सारांश, इन सबका इलाज ग्राम उद्योगों के पनपने में है और उसका पहला कदम है, भूमि-हीनों को भूमि मिलना और दूसरा कदम है, ग्रामों में संपूर्ण ग्रामोद्योग जारी करना।

भूमि-पुत्र का अधिकार

मैं आपसे यह जो कह रहा हूँ कि भूमि-माता के हर पुत्र का उस पर हक है, वह मेरा अपना, निज का विचार नहीं है। यह तो एक वैदिक कथन है। कोई भी लड़का माता की सेवा से अपने किसी दूसरे भाई को रोक नहीं सकता। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि कोई भी शख्स किसीकी भी जमीन माँगे, तो उसे मिलनी चाहिए और जमीनवालों का कर्तव्य है कि वे उसे दें। क्या पानी माँगने पर किसी को 'ना' कहा जाता है? 'ना' कहनेवाला कितना शर्मिंदा हो जाता है, यह आप जानते ही हैं। इसी तरह जमीन माँगने पर भी 'ना' कहने में शर्म लगनी चाहिए। मैं यह समझ सकता हूँ कि हम किसीको बिना परिश्रम के भोजन न दें, लेकिन अगर कोई परिश्रम का साधन माँगे, तो उसे वह मुहैया कर देना हमारा धर्म है। सरकार का भी धर्म है कि कोई भी मनुष्य उससे जमीन माँगे, तो वह उसे उसके परिवार के लिए पाँच एकड़ जमीन दे दे। सरकार की यह जिम्मेदारी होनी चाहिए।

साम्ययोग से भारत जगद्गुरु

किन्तु आज सरकार ऐसा नहीं कर पा रही है। आखिर सरकार कौन है? यहाँ की सरकार यहाँ की जनता की भावना पर ही टिकी रह सकती है। एक बार जनता यह मान ले कि जमीन पर सबका अधिकार है और वह थोड़े-से लोगों के कब्जे में नहीं रह सकती, तो फिर सरकाररूपी ताला खोलने की कुंजी तो समाज के ही हाथ में है। मैं यह ताला कुंजी से खोलना चाहता हूँ, हथौड़े से तोड़ना नहीं चाहता। इसलिए अगर आप सब मदद दें, तो हम लोग कामयाब हो सकते हैं। यहाँ साम्ययोग सिद्ध हो सकता है और दुनिया में हिन्दुस्तान गुरु का स्थान प्राप्त कर सकता है। दुनिया को इस समय अपेक्षा है कि हिन्दुस्तान से मार्गदर्शन मिले। इसलिए आप सब सारे कार्यक्रम छोड़ इस कार्यक्रम को अपनायें, तो गांधीजी का अभीष्ट चित्र प्रत्यक्ष प्रकट कर सकेंगे। गांधीजी के विचारों को माननेवालों को चाहिए कि वे पूरी शक्ति से इस काम में जुट जायँ।

मथुरा
१-११-'५१

शिक्षा नहीं, दीक्षा : २१ :

आज कार्तिक-पूर्णिमा का दिन है और महात्मा नानक का भी जन्म-दिन है। मेरा निश्चित मत है कि जिस काम को मैंने परमेश्वर के भरोसे उठा लिया है, उसके लिए दुनिया के सब सत्पुरुषों का आशीर्वाद है। फिर आज जब कि नानक के जन्म-दिन पर मैं यहाँ आ पहुँचा—वैसी कोई योजना तो पहले से थी नहीं—तो नानक का भी आशीर्वाद विशेष रूप से मैंने पा लिया।

नानक का पुण्य स्मरण

व्यक्तिगत सत्याग्रह के सिलसिले में जब मैं पहली बार जेल पहुँचा, तो अनेक भाषाओं और धर्मग्रन्थों का अध्ययन करने का मौका मिला। उसके

बाद बाहर भी मेरा वह अध्ययन जारी रहा। तीव्र अध्ययन के लिए जितना समय मिलना चाहिए, मुझे मिला। मुझे पहली बार शिरोमणि गुरुद्वारा सभा की कृपा से नागरी लिपि में मुद्रित 'ग्रन्थसाहब' की प्रतिलिपि मिली। शुरू से आखिर तक मैं उस ग्रंथ को देख गया। उसके बाद महीनों सिक्खों की उपासना का अध्ययन और अनुभव प्राप्त करने के लिए रोज सुबह की प्रार्थना में 'जपुजी' का पाठ करता रहा। मुझे नामदेव के भजनों का संग्रह करना था। नामदेव के प्रायः सभी भजन मराठी में हैं, पर कुछ भजन हिन्दुस्तानी में भी हैं। उन्हें देखने और उनमें से चुनाव करने की दृष्टि से मैं पुनः एक बार ग्रन्थसाहब को देख गया। इस तरह नानक के साथ मेरा हृदय का परिचय हो गया और आज उनके जन्म-दिवस पर यहाँ आ पहुँचा, तो मैं यह बहुत शुभ शकुन मानता हूँ।

मैं यहाँ किस काम के लिए आया हूँ, यह आप जानते हैं। जब दिल्लीवालों की ओर से संदेश की माँग की गयी, तो मैंने उन्हें एक छोटा-सा संदेश लिख दिया। उसमें मैंने कहा है कि "मैं भिक्षा नहीं, हक माँगने आ रहा हूँ, दीक्षा देने आ रहा हूँ।"

यह जो मैंने 'भिक्षा' और 'हक' का फर्क बताया, वह बड़े महत्त्व का है। अगर मैं किसी आश्रम या मठ-मन्दिर के लिए जमीन इकट्ठा करने आया होता, जैसा कि पहले कई लोगों ने किया है, तो दूसरी बात होती। लेकिन यह तो हमारा 'यज्ञ' हो रहा है, कोई छोटा-मोटा काम नहीं। मैं हिन्दुस्तान के दरिद्र-नारायण की ओर से उनका हक माँग रहा हूँ। इसमें भिक्षा का कोई सवाल ही नहीं है। यह काम सिर्फ जमीन इकट्ठा करने का नहीं, बल्कि एक विचार फैलाने का है। इसका उद्देश्य एक नये तरीके को आजमाना है। मैं इस बात की तलाश में हूँ कि जो बड़े भारी मसले हमारे सामने हैं, उनमें से किसी एक का भी हल हम उस अहिंसक तरीके से निकाल सकें, जो हमें गांधीजी ने सिखाया है और हिन्दुस्तान की सभ्यता के अनुकूल है।

शरणार्थियों और मेवातों के बीच

गांधीजी के जाने के बाद मैं यहाँ आ पहुँचा और शरणार्थियों के बीच कुछ

काम करने का भी सोचा था। काम कुछ हुआ भी, लेकिन मुझे वह चीज नहीं मिली, जिसकी तलाश में मैं था। वह सारा काम सरकारी अधिकारियों से संबंध रखकर करना था, इसलिए उसकी अपनी मर्यादाएँ थीं। थोड़े ही दिनों में मैंने देख लिया कि मुझे और ही कोई रास्ता ढूँढना चाहिए।

इसी बीच मेव लोगों में काम करने का मौका मिला। उसमें भी अधिकारियों के साथ सम्बन्ध रखने का सवाल था, किन्तु काम मर्यादित था और उस समय उसकी ओर किसीका भी ध्यान नहीं था, बल्कि एक नफरत-सी ही थी। परमेश्वर की कृपा से आज वह नफरत नहीं है। मुझे लगा कि उस काम से अहिंसा की शक्ति कुछ प्रकट हो सकती है। आज भी मेवों में काम हो रहा है। हमारे लोग वहाँ काम में लगे हैं। मैंने जो सुझाव दिये, सरकार की ओर से उन पर पूरी तरह अमल नहीं हुआ। उन्होंने उसमें से कुछ हिस्सा माना, कुछ हिस्से पर अमल किया। फिर भी वहाँ काफी काम हुआ, यही कहना चाहिए। नतीजा यह हुआ कि जब मैं मुसलमानों में पहुँचता हूँ, तो वे मानते हैं कि यह शख्स किसी तरह का भेदभाव नहीं रखता। इस बात का अनुभव मुझे अजमेर की दरगाहशरीफ में हुआ। वहाँ हर मुसलमान ने मेरा सत्कार किया और—जैसा कि उनके यहाँ रिवाज है—हरएक ने मेरा हाथ चूमकर अपना प्रेम प्रकट किया। फिर उसका परिणाम मैंने हैदराबाद में देखा। मैं वहाँ हिन्दुओं का विश्वास-पात्र तो था ही—क्योंकि मैं तो उन्हींके धर्म में पला हूँ—मुसलमान भाइयों ने भी मुझमें पूरा विश्वास व्यक्त किया।

तेलंगाना में चिन्तामणि की प्राप्ति

फिर भी मैं ढूँढ़ने लगा कि कोई ऐसा तरीका हाथ आना चाहिए, जिसे अहिंसात्मक क्रान्ति का, सर्वोदय का क्रियात्मक आरम्भ कहा जा सके। मैंने समझ लिया था कि अगर यह होता है, तो खादी, ग्रामोद्योग आदि का भी काम आगे बढ़ता है, नहीं तो न कोई खादी को पूछेगा और न ग्रामोद्योगों को ही। किंतु जब तेलंगाना की यात्रा का मौका आया, तो उसमें कुछ शोधन हुआ और एक चीज हाथ में आ गयी। तब से मैं उसीके पीछे लगा हूँ। मुझे एक जीवन-कार्य-

सा मिल गया है। मैंने समझ लिया है कि इतना काम करते-करते अगर मैं खतम हो जाऊँ, तो भी मेरी जिन्दगी का साफल्य है। मानो मेरे हाथ में एक रत्न-चिंतामणि ही आ गया, जिसकी मैं तलाश में था।

वामन के तीन कदम

जमीन का मसला सारी दुनिया का मसला है, जिसे हल करने में और मुल्कों ने दूसरे तरीके अख्तियार किये हैं। लेकिन हम उसे अहिंसक तरीके से हल करना चाहते हैं। इसलिए अगर आप थोड़ी-थोड़ी जमीन देंगे, तो उससे गरीबों को थोड़ी जमीन तो मिल जायगी, पर क्रांति का मेरा यह काम लज्जित हो जायगा। समाज-परिवर्तन की और समाज का आर्थिक ढाँचा बदलने की आकांक्षा उससे तृप्त नहीं होगी। इसलिए जहाँ भी मैं गया, मैंने यही समझाया कि मुझे दान नहीं चाहिए, एक कुटुम्बीजन समझकर मुझे अपना हक दीजिये और दरिद्रनारायण की सेवा में लग जाइये। मैंने लोगों को समझाया कि देखिये, यह तो वामनावतार प्रकट हुआ है और वह तीन कदम भूमि माँगता है। पहला कदम यह कि भूमिहीन गरीबों के लिए जैसे अपने लड़कों को देते हो, वैसे दो। दूसरा यह कि आपको गरीबों की सेवा की दीक्षा लेनी है, और तीसरा कदम यह कि गरीबों की सेवा करते-करते स्वयं गरीब बन जाना है। इस तरह एक के बाद एक तीन कदम जमीन दे सको, तो बलि राजा के समान वह पूर्ण बलिदान होगा। उससे हिंदुस्तान का नकशा ही बदल जायगा।

जब मैं यह कहता हूँ कि 'जो जमीन देनी है, वह पूरे उत्साह से देनी है और जिन्हें देनी है, उनके जैसा जीवन बिताने की तैयारी रखनी है', तो मेरा मतलब यह नहीं कि उन बेजमीनों की तरह हमें भी दीन-हीन अवस्था बनाकर रहना है, बल्कि यह कि वे और हम दोनों समान हकदार हैं, इस भावना से सम्मिलित भोग भोगना है और इस तरह साम्ययोग सिद्ध करना है।

राजघाट, दिल्ली
१२-११-'५१

आज कई महीनों के बाद अपने प्रिय नेता पंडित जवाहरलाल नेहरू से मिलने का और उनके दर्शन का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। आज ही उनका जन्म-दिन भी था। इस अवसर पर मैं उनकी दीर्घायु और आरोग्य चाहता हूँ।

पंडितजी का दुःख

पंडितजी से जो कुछ थोड़ी प्रारम्भिक बातचीत हुई, उसमें उनके दिल का एक दुःख प्रकट हुआ। वे कहते थे : "हर कोई अपनी स्तुति करता है, यह अच्छी बात तो नहीं, फिर भी कुछ समझ में आ सकती है। लेकिन मुझे गहरा दुःख तो इसलिए है कि उम्मीदवार लोग अपनी प्रशंसा काफी नहीं समझते, बल्कि दूसरों की निन्दा भी करते हैं। मुझे यह सारा सहन करना पड़ता है। ऐसे झमेले को जो बर्दाश्त नहीं करता, इच्छा होती है उससे भागने की; लेकिन छोड़ा भी नहीं जा सकता, क्योंकि जिम्मेदारी है।"

यह मैं अपने और उनके बीच हुई बातचीत का सार अपने शब्दों में कह रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि वे तो जी-जान से लगे हैं कि कांग्रेस की शुद्धि हो। निस्सदेह आज कांग्रेस सबसे बड़ी जमात है। सिर्फ संख्या में ही नहीं, बल्कि आज भी उसमें कई अच्छे लोग हैं। उस संस्था के पीछे एक महान् इतिहास है, जिसका गौरव भविष्य-काल में गाया जायगा। इसलिए अगर उस संस्था की शुद्धि होती है, तो हमारा बहुत कुछ काम बन सकता है।

स्वराज्य से पूर्व राजनीति में शक्ति

लेकिन इसमें हमें इतनी मुश्किल क्यों मालूम हो रही है? इसका एक कारण तो यह है कि हम लोगों की कुछ दिशा-भूल हो रही है। हम लोगों के ध्यान में एक बात नहीं आती कि जब देश विदेशियों के हाथ में रहता है और आजादी हासिल करने का सवाल आता है, तब शक्ति का अधिष्ठान राजनीति में रहता है। इसलिए महात्मा लोग भी राजनीति में हिस्सा लेना अपना कर्तव्य समझते हैं। तिलक महाराज से पूछा गया कि स्वराज्य प्राप्त करने के पश्चात्

आप क्या करेंगे ? तो उन्होंने कहा था कि 'मैं तो ज्ञान की उपासना करूँगा, विद्यार्थियों को पढ़ाऊँगा।' उन्होंने ऐसा इसलिए कहा था कि अध्यापन-अध्ययन उनके जीवन की तृप्ति का आन्तरिक विषय था। दिनभर राजनैतिक काम करने के बाद रात को जब वे सोने जाते, तो वेदाभ्यास कर लेते, ऐसी उनकी ज्ञान-पिपासा थी। फिर भी वे राजनीति में पड़े। वे जानते थे कि यदि इस वक्त राजनीति में नहीं पड़ते, तो किसी भी तरह की सेवा करना मुश्किल है। इसलिए उस समय उन्होंने राजनीति को परम धर्म माना। तात्पर्य यह है कि जिस पुरुष का प्रेम राजनीति में न हो, उसे भी देश की परतंत्रता की स्थिति में राजनीति में उतरना पड़ता है, क्योंकि वहाँ त्याग का अवसर होता है और त्याग में ही शक्ति का अधिष्ठान होता है।

स्वराज्य के बाद सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र में

लेकिन जब देश स्वतन्त्र हो जाता है, तब शक्ति का अधिष्ठान बदल जाता है। तब शक्ति राजनीति में नहीं, सामाजिक सेवा में रहती है, क्योंकि फिर समाज का ढाँचा बदलना होता है, आर्थिक विषमता मिटानी होती है। ये सारे काम सामाजिक क्षेत्र में करने पड़ते हैं। उसमें त्याग के प्रसंग आते हैं, कष्ट सहन करने पड़ते हैं, भोग-लालसा को संयम में रखना पड़ता है, वैराग्य की जरूरत पड़ती है। इसलिए शक्ति इसी क्षेत्र में रहती है। लेकिन जिन्हें इसका भान नहीं होता, वे गलतफहमी में रहते हैं कि शायद शक्ति का अधिष्ठान अब भी राजनीति में ही है और वे उसी क्षेत्र की ओर दौड़ जाते हैं। वहाँ सत्ता तो रहती है, लेकिन शक्ति नहीं।

सत्ता और शक्ति में बहुत अन्तर है। थोड़ा विचार करने से ही इन दोनों का फर्क मालूम हो जाता है। सत्ता में एक पद तो प्राप्त होता है। और, जब देश स्वतन्त्र हो गया और सत्ता हाथ में ले ली, तो वहाँ जाना जरूरी हो जाता है। लेकिन वहाँ इने-गिने लोग ही जा सकते हैं। वहाँ एक सीमित क्षेत्र होता है, उसमें संविधान और कानून की सीमा होती है, उसके भीतर रहकर मालिक जिस तरह की सेवा चाहता है, उस तरह की सेवा उसे करनी

पड़ती है। लेकिन वहाँ भी मनुष्य को जाना पड़ता है और वहाँ मोह भी काफी है। कदम-कदम पर मोह, लोभ और लालच के अवसर आते रहते हैं, गिरने की संभावना रहती है। इसलिए वहाँ जनक महाराज जैसे निर्लिप्त वृत्तिवाले लोगों की आवश्यकता होती है। चन्द लोग ही वहाँ जा सकते हैं। उनकी तादाद बहुत कम होगी। बाकी अधिक लोग जो रह जाते हैं, उन्हें सामाजिक क्षेत्र में काम करना चाहिए और देश को आगे ले जाने की शक्ति निर्माण करनी चाहिए।

आज समाज की जो स्थिति है, उसे स्वीकार कर उसकी सेवा करना सत्ता-वालों के लिए भी सरल नहीं। मिसाल के तौर पर कोई भी सत्ताधारी सत्ता के आधार पर हिन्दुस्तान में बीड़ी बन्द नहीं कर सकता, क्योंकि आज का समाज उस बुरी आदत को नहीं छोड़ सकता। इस बुरी आदत से छुड़ाना उन लोगों का काम है, जो सामाजिक क्षेत्र में सेवा करते हैं। समाज-सेवक इसके खिलाफ समाज को आगे ले जाने का काम कर सकता है और अनुकूल वातावरण बन जाने पर सत्ताधारी बीड़ी को बन्द करने का कानून बना सकते हैं। अमेरिका में आज शराबबन्दी नहीं हो सकती; क्योंकि वहाँ का समाज शराबबन्दी के लिए अनुकूल नहीं है। किन्तु हिन्दुस्तान में शराबबन्दी हो सकती है, क्योंकि यहाँ की भूमि में उसके अनुकूल वातावरण मौजूद है।

राजनैतिक सत्ता में समाज को आगे ले जाने की अधिक शक्ति नहीं। वह शक्ति और वृत्ति सर्वबन्धनों से निर्लिप्त, सर्व स्थानों से अलिप्त, सेवापरायण वृत्ति से समाज की सेवा करनेवालों में ही हो सकती है। क्योंकि इस वस्तु का भान राजनैतिक कार्यकर्ताओं को नहीं है, वे उसी क्षेत्र में जाने का प्रयत्न करते हैं। अगर यह भान हो, तो बहुत सारे लोग सामाजिक क्षेत्र में आने की कोशिश करेंगे।

गांधीजी ने इसीलिए दूर दृष्टि से 'लोक-सेवक-संघ' बनाने की सलाह दी थी, जिसे हमने नहीं माना। उसके लिए मैं किसीको दोषी नहीं ठहरा सकता। जिन्होंने इस कांग्रेस को कायम रखा, उनके पीछे भी एक विचार था। चाहे उस विचार में गलती हो, पर मैं उसे मोह नहीं कहूँगा। लेकिन

अब कांग्रेस के सामने ऐसा कोई कार्यक्रम चाहिए, जिससे रोजमर्रा कुछ त्याग के प्रसंग आयें। जब तक कांग्रेस के सभासदों की कसौटी उस कार्यक्रम पर नहीं होती, तब तक कांग्रेस की शुद्धि मृगजलवत् होगी, ऐसी मेरी नम्र राय है।

मित्रों से सेवा की सलाह

इसलिए मेरे जो मित्र आज कांग्रेस में हैं और जो किसान-मजदूर प्रजा-पार्टी में या समाजवादी-पार्टी में हैं, उन सबसे मेरा कहना है कि जो लोग राजनीति में जाना चाहते हैं, उन्हें मैं ना नहीं कहता, परन्तु बाकी सबको सामाजिक सेवा में लग जाना चाहिए। वरना समाज की प्रगति कुंठित हो जायगी। इतना ही नहीं, समाज नीचे भी गिर सकता है। इसलिए एक बड़ी जमात समाज में ऐसी होनी चाहिए, जो निरन्तर सेवा में लगी रहे, जागरूकता के साथ सेवा करती रहे। उसे राजकाज का अनुभव भी रहे, लेकिन सत्ता से अलग रहकर निर्भयता के साथ तटस्थ-बुद्धि से अपने विचार जाहिर कर सके, जिसका नैतिक असर सरकार पर और लोगों पर भी पड़ सके। वही ऐसी जमात हो सकती है, जो सत्ता में न पड़े—सत्ता की मर्यादा समझकर—घृणा से नहीं, बल्कि यह समझकर कि शक्ति का अधिष्ठान सत्ता में नहीं, समाज-सेवा में है।

सर्वोदय-समाज की जरूरत

आजकल यह खयाल हो रहा है कि बहुमत के खिलाफ एक विरोधी दल होना चाहिए, नहीं तो लोकतन्त्र का रूपान्तर फासिज्म (एकतन्त्र) में हो सकता है। यह सारी पश्चिम की परिभाषा है, और चूँकि हमने लोकतन्त्र का विचार पश्चिम से ही ग्रहण किया है, वह परिभाषा भी रहेगी और वह विचार भी रहेगा। यह खयाल गलत नहीं है। इसलिए बहुमत के अलावा अल्पमतवालों का भी आदर कर दोनों—चाहे राजनीति में विरोधी हों—मिलकर रहें और परस्पर प्रेम से काम करें; प्रेम में कोई फर्क न आने दें। इससे कुछ नियन्त्रण रहेगा और सत्ताधारियों की शुद्धि होगी। वे गलतियाँ करने से बचेंगे।

लेकिन इतने से काम पूरा नहीं होता। देश की शुद्धि का और देश की उन्नति का काम तभी होगा, जब सत्ता के दायरे से अलग रहकर सब तरह से

विवेकशील, अध्ययनशील, त्यागशील सेवकों की एक जमात कायम होगी। हमने ऐसे समाज को 'सर्वोदय-समाज' का नाम दिया है। अगर इस विचार से लोग सहमत हों, तो वे सर्वोदय के सेवक बन जायँ। सर्वोदय कोई पंथ नहीं, उसमें कोई काम अनिवार्य नहीं, उसमें कोई कड़ा अनुशासन नहीं। प्रेम से विचार समझकर सर्वोदय की सेवा करनी चाहिए। इसके पीछे जो दृष्टि है, उसे समझकर सब लोग सर्वोदय-वृत्ति को स्वीकार करें।

राजघाट, दिल्ली
१४-११-'५१

लोकयान्त्रिक सरकार : २३ :

हमारी इस पैदल यात्रा में कई तरह के अनुभव आते हैं और अनन्त प्रश्न पूछे जाते हैं। कुछ प्रश्न तो समान होते हैं और हर जगह वे ही पूछे जाते हैं। उनमें एक प्रश्न अक्सर होता है, 'सेक्युलर स्टेट' के बारे में।

सेक्युलर स्टेट और दशविध धर्म

एक जगह तो एक भाई ने कहा : "मनु महाराज ने धर्म के दशविध लक्षण बताये हैं, लेकिन हमारी सरकार कहती है कि हम तो धर्म को नहीं मानते। तब हमारा क्या कर्तव्य होता है ? क्या हम मनु महाराज की आज्ञा का अनुसरण करें या इस धर्म-विहीन सरकार की कल्पना का ?"

मुझे इस शख्स को विस्तार से समझाना पड़ा। अगर कोई विचार का प्रश्न पूछा जाता है, तो चाहे वह बार-बार क्यों न पूछा जाय, मैं विस्तार से उत्तर देने की कोशिश करता हूँ, क्योंकि चित्त के सन्देह और संशय हमेशा सारे जीवन को कलुषित करते हैं। अक्सर यह देखा जाता है कि बहुत-से सन्देह शब्द-मूलक होते हैं। शब्दों का ठीक प्रयोग नहीं किया जाता, इसलिए बहुत-सी गलतफहमियाँ हुआ करती हैं। मनु महाराज ने दशविध धर्म बताया है। ईसा की दशविध आज्ञा क्रिस्ती और यहूदी-धर्म में मशहूर हैं। वे दस आज्ञाएँ और मनु महाराज के दशविध धर्म एक ही हैं। बल्कि यदि ऐतिहासिक दृष्टि से

देखें, तो शायद ऐसा ही निष्कर्ष निकलेगा कि मनु महाराज की दशविध आज्ञाएँ रूपान्तरित होकर यहूदी और क्रिस्ती धर्म में पहुँच गयी हैं। मनु एक अत्यन्त प्राचीन ऋषि हो गये हैं। 'मनुस्मृति' तो उस हिसाब से बहुत अर्वाचीन ग्रंथ है, लेकिन मनु स्वयं बहुत प्राचीन हैं। उनके वचनों का हमारे समाज में इतना असर था कि वैदिक-धर्म में एक स्थान पर कहा है : "यत् किंच मनु अवदत् तद् भेषजम्।" मनु ने जो भी कहा है, भेषज है, हितकारी पथ्य है, औषधि है। चाहे औषधि कड़वी मालूम पड़े, तो भी परिणाम गुणकारी होता है। इसलिए उसे जरूर सेवन करना चाहिए। ऐसा वाक्य मनुस्मृति में भी है। लेकिन वह आधुनिक मनुस्मृति को ध्यान में रखकर नहीं, बल्कि प्राचीन मनु-वचन को, जो श्रद्धा से परम्परागत समाज में पहुँच गया है, ध्यान में रखकर कहा गया है। मैंने यह सब उस भाई को समझाया। समझाया क्या, मानो उसका एक क्लास ही लिया।

उसका एक-एक लक्षण ऐसा है, जिसके बगैर न तो समाज का धारण हो सकता है और न व्यक्ति का जीवन ही उन्नत हो सकता है। उस आज्ञा में एक 'अस्तेय-व्रत' है, यानी चोरी न करना। अस्तेय तो धर्मसंगत है। क्या हमारी धर्मातीत सरकार चोरी चाहेगी? उसमें 'शौच' भी धर्म बताया है, तो क्या हमारी सरकार सफाई और आरोग्य नहीं चाहेगी? उसमें 'विद्या' का उल्लेख है, तो क्या सेक्युलर स्टेट में विद्या न रहेगी, अविद्या रहेगी? और वहाँ धर्म को सत्य बताया है, तो हमारी सरकार ने भी 'सत्यमेव जयते' यह बिरुद बनाया है। यह बिरुद-वाक्य उपनिषदों में से लिया है, जो इस भारत-भूमि के मूल ग्रंथों में से है।

सारांश, 'धर्म' शब्द इतना विशाल और व्यापक है कि उसके सारे अर्थ बतानेवाला शब्द मैंने अब तक किसी भाषा में नहीं देखा। सारे अर्थ तो जाने दीजिये, उसके बहुत-से अर्थवाला भी कोई शब्द मैंने नहीं पाया। इसलिए जो लोग सरकार को धर्म विहीन कहते हैं, वे तो मानो गाली देते हैं। और जो धर्मातीत या धर्म के बाहर है, वह सिवा अधर्म के और क्या हो सकता है? बल्कि अगर हम इतना भी कहें कि सरकार 'सेक्युलर' यानी 'धर्म से

असम्बद्ध' है, तो भी अर्थ ठीक नहीं हो पाता। अतः धर्म से असंबद्ध, उससे विहीन अपनी सरकार को बताना एक निरा भ्रम-प्रचार ही होगा। ऐसा भ्रान्त प्रचार काफी हुआ है और कुछ जाननेवाले अच्छे लोगों ने भी इस तरह की टीका की है।

वेदांती सरकार, लोकयान्त्रिक सरकार

यह सारा क्या हो रहा है? 'सेक्युलर' शब्द का तर्जुमा हमारी भाषा में हम किस तरह करें, यह एक नाहक का सवाल हमारे सामने पेश हुआ है। 'सेक्युलर' का अर्थ अगर हम पंथातीत या अपांथिक करें, तो भी ठीक अर्थ प्रकट नहीं होता। 'पंथ' याने मार्ग, जिसे अंग्रेजी में 'पाथ' कहते हैं। तो 'पंथातीत' याने 'मार्ग-विहीन' सरकार हुई। किन्तु वह शब्द तो 'गुमराह' का पर्याय है। इसके लिए 'अपांथिक' शब्द भी नहीं चल सकता।

इसलिए सेक्युलर शब्द का अर्थ बताने के लिए मैंने 'वेदान्ती' शब्द चुन लिया और उस भाई को समझाया कि हमारी सरकार 'वैदिक' नहीं होगी, बल्कि 'वेदान्ती' होगी। वेदान्त में किसी उपासना का निषेध नहीं है। जितनी उपासनाएँ हैं, सबको वेद समान भाव से देखते हैं। फिर भी वेदान्त की अपनी निज की कोई उपासना नहीं रखी, इसलिए अगर हम वेदान्ती सरकार कहें, तो कुछ अच्छा अर्थ प्रकट होता है।

एक दफा ऐसा अनुभव हुआ कि रामकृष्ण-आश्रम के एक संन्यासी कहने लगे: "हमारा देश किधर जा रहा है?" अक्सर देखा गया है कि रामकृष्ण मिशन के लोगों में किसी प्रकार की साम्प्रदायिक भावना नहीं होती। फिर भी उस संन्यासी भाई ने वैसा सवाल किया। मैंने पूछा : "किधर जा रहा है?" वे बोले: "सेक्युलर स्टेटवाले तो आध्यात्मिक मूल्यों से इनकार करते हैं!" मैंने कहा: "अगर ऐसी बात होती, तो सत्य को बिरुद न बनाया जाता।" इसलिए मेरा तो कहना है कि अंग्रेजी शब्द के कारण ही सारी गड़बड़ी हुई है। मैंने सेक्युलर के लिए वेदान्ती शब्द का प्रयोग किया है। हमारी सरकार मेरी दृष्टि से 'वेदान्ती सरकार' है। जिस वेदान्त को आप मानते हैं, उसे वे भी मानते हैं।

मैंने उनसे कहा कि हमारे यहाँ २१ वर्ष के बाद हरएक को वोट का अधि-

कार है। आप २१ साल की आयुवाली बात भूल जाइये। परन्तु हरएक को हमारे विधान में जो एक वोट का अधिकार दिया गया है, वह किस बुनियाद पर दिया गया है? अगर शरीर की बुनियाद पर दिया गया होता, तो हरएक के शरीर में भेद है, एक का शरीर दूसरे के शरीर से भिन्न होता है, किसीका शरीर दूसरे के शरीर से तिगुना भी बलवान् हो सकता है। अगर शरीर की बुनियाद हो, तो एक को एक वोट दिया जाय, तो दूसरे को दो, तीन या चार भी देने होंगे। किन्तु अगर बुद्धि की बुनियाद पर अर्थ लगाते हैं, तो एक की बुद्धि दूसरे की बुद्धि से हजारगुना कम-वेश हो सकती है, क्योंकि बुद्धि में तो हजारगुना फर्क हो सकता है। फिर एक वोट का आधार इसके सिवा क्या हो सकता है कि हरएक में एक आत्मा विराजमान है। सिवा आत्म-ज्ञान की बुनियाद के इसका और कोई आधार हो नहीं सकता। हाँ, २१ वर्ष उम्र की कैद है। मनुष्य को वोट है, पशु को नहीं। फिर किस बुनियाद पर उसे 'सेक्युलर' कहा? एक तो यह कि हमारा बिरुद 'सत्यमेव जयते' है और दूसरा यह कि सबको ही समान माना गया है। दोनों को मिलाकर स्टेट सेक्युलर बन सकता है। याने सेक्युलर स्टेट का आधार आत्मज्ञान ही है। यह जब मैंने कहा, तब उनका समाधान हुआ।

उन्होंने पूछा कि क्या आप जाहिरा तौर पर कह सकते हैं कि सरकार वेदान्ती है। मैंने कहा कि मैं जाहिरा तौर पर नहीं कहूँगा। आपको समझाने के लिए मैंने इस शब्द का प्रयोग किया है। हमारी सरकार नास्तिक नहीं है। वह आध्यात्मिक मूल्यों को मानती है, आत्मा को मानती है, उसकी समानता को मानती है। फिर भी वेदान्त जितनी गहराई में जा सकता है, उतनी गहराई में वह नहीं जा सकती। अब अगर हम एक शब्द सेक्युलर का तर्जुमा नहीं कर सकते और भाव तो प्रकट करना ही है, तो 'निष्पक्ष न्यायनिष्ठ व्यावहारिक' सरकार कह सकते हैं। एक ही किंतु कठिन संस्कृत शब्द में कहना हो, तो 'लोक-यात्रिक' सरकार कह सकते हैं। याने वह सरकार, जो लोकयात्रा के बल पर जनता को चलाना चाहती है। शब्द कठिन अवश्य है, लेकिन उससे कठिनाई कुछ दूर हो सकती है।

अंग्रेजी ही गलतफहमी की जड़

पर यह सारी आफत क्यों? इसलिए कि हमारी सरकार का सारा चिन्तन अंग्रेजी में होता है, फिर उसका तर्जुमा करना पड़ता है। किसी भाषा का अनुवाद दूसरी भाषा में एकदक ठीक नहीं होता। अगर हम अपनी जबान में सोचते होते, तो वे सारी गलतफहमियाँ टल जातीं, जो आज हो रही हैं और जिसके कारण यह सब क़ठिनाई पेश आ रही है।

अंग्रेजी भाषा को पंद्रह साल का जीवन दे दिया गया है। इसका नतीजा यह हो रहा है कि हमारी सरकार का कारोबार किस तरह चलता है, उसका ज्ञान हमारे यहाँ के एक पढ़े-लिखे किसान को भी उतना हो सकता है, जितना कि इंग्लैंड और अमरीका के लोगों को होता है। हमारी जनता को अँधेरे में रखना ठीक नहीं। ऐसी हालत में अंग्रेजी भाषा से जितने शीघ्र मुक्त हो सकते हैं, होने की आवश्यकता है और इस आवश्यकता को मैं कदम-कदम पर देख रहा हूँ। वेदान्ती शब्द इतना महान् है कि वह भारतीय जनता को प्राण के समान है, लेकिन अब उसे टालने की वृत्ति हो रही है।

सेक्युलर शब्द के कारण बड़े-से-बड़े लोगों में गलतफहमी होती है। अगर किसी स्कूल में वेद की प्रार्थना होती है, तो पूछते हैं कि सेक्युलर स्टेट की सरकार में वैदिक मंत्र कैसे पढ़ा जा सकता है? गत सप्ताह मैं अलीगढ़ विश्वविद्यालय में गया था। वहाँ के विद्यार्थियों और प्रोफेसरों ने बहुत ही प्रेम से मेरा स्वागत किया। मैंने उन्हें जो बातें बतायीं वे साधारण नहीं थीं, गम्भीर थीं। मैंने सब धर्मों की शुद्धि की बात कही थी और इसलाम की शुद्धि की व्याख्या भी की थी। उन लोगों का रिवाज है कि आरम्भ में खड़े होकर 'कुरान' की आयत पढ़ें। जाकिर हुसेन साहब ने मुझसे पूछा, तो मैं बहुत खुशी से खड़ा हो गया। सारा कार्यक्रम बड़े प्रेम से हुआ। मुझे भी कुरान का कुछ अभ्यास है। इसलिए आयतें सुनकर खुशी हुई। लेकिन अगर इस पर कोई कहे कि सेक्युलर स्टेट की यूनिवर्सिटी में कुरान की आयतें क्यों पढ़ी जाती हैं, तो यह गलत है। एक विदेशी शब्द के कारण ऐसी गलतफहमी हो रही है।

राजघाट, दिल्ली
१५-११-'५१

देश की वर्तमान हालत की मीमांसा करते हुए मैंने बताया था कि एक तो अधिकारी पक्ष रहेगा, जो लोगों की ओर से बहुसंख्या के आधार पर राजकाज की जिम्मेदारी उठायेगा और दूसरा एक विरोधी पक्ष होगा, जो उनके कार्यों में प्रति-सहकार करेगा। यानी जहाँ सरकार की आवश्यकता मालूम हो, वहाँ सहकार करेगा और जहाँ विरोध की आवश्यकता हो, वहाँ विरोध करेगा। ये दोनों राजनैतिक क्षेत्र में काम करेंगे। इनके अलावा तीसरा एक निष्पक्ष समाज होना चाहिए, जिसकी गिनती न अधिकारी पक्ष में होगी, न विरोधी पक्ष में, बल्कि यह एक अलग जमात होगी। उसकी अपनी एक खासियत होगी और वह जमात सेवा के काम में लगी हुई होगी। इस तरह की जमात जितनी विशाल और शक्तिशाली होगी, राज्यतंत्र और लोकतन्त्र, दोनों उतने ही शुद्ध और मर्यादा में रहेंगे। उस तीसरे निष्पक्ष समाज का एक बड़ा भारी देशव्यापी कार्यक्रम होगा। कार्यक्रम के कुछ पहलू दिग्दर्शन के तौर पर आप लोगों के सामने आज रखने को सोच रहा हूँ।

जीवन-शोधन

उस जमात के जो काम होंगे, उनमें बुनियादी और प्राथमिक काम यह रहेगा कि वे लोग जीवन-शोधन का काम करेंगे। अपने निजी जीवन की भी शुद्धि और अपने कुटुम्बी जन, मित्र, सहधर्मी, सबकी जीवन-शुद्धि नित्य निरंतर परखते रहेंगे। अगर कहीं असत्य अपने में छिप रहा है, तो बारीकी से उसका शोधन करेंगे। उस असत्य को मिटा देंगे। वे यह भी देखेंगे कि हृदय के किसी कोने में अगर भय के अंश रह गये हैं, तो वे किस प्रकार के हैं। भय अनेक प्रकार के होते हैं। उन भयों में से वे कौनसे प्रकार के हैं, जो हृदय में राज्य कर रहे हैं? उन सब अंशों को देखकर उनसे मुक्ति पाने की कोशिश करेंगे। अर्थात् सदा-सर्वदा निर्भय बनाने का उनका प्रयत्न रहेगा। उनकी हरएक कृति हमेशा संयमयुक्त रहेगी—वाक् संयम, काय-संयम, मन-संयम, उनकी नित्य साधना रहेगी। वे यह भी देखेंगे कि अपनी आजीविका का मुख्य अंश, जहाँ

तक हो सकता है, उत्पादक शरीर-श्रम पर चलायें और निजी पारिवारिक तथा सामाजिक, तीनों दृष्टि से प्रयोग करें। यह सारा जीवन-शोधन का बुनियादी काम उनका प्रथम कार्य होगा।

अध्ययनशीलता

दूसरी बात उन्हें यह करनी होगी कि नित्य निरन्तर अध्ययनशील रहें। लोकजीवन की जितनी शाखाएँ और उपशाखाएँ हैं, उनका वे अध्ययन करेंगे। हर तरह की उपयुक्त जानकारी उनके पास रहेगी। यह नहीं कि वे व्यर्थ की जानकारी का परिग्रह करेंगे। बल्कि जो जानकारी, समाज-जीवन और व्यक्तिगत जीवन, आन्तरिक तथा बाह्य के लिए जरूरी है, उसे वे हासिल करते रहेंगे। इस तरह अध्ययन होता रहता है, तभी स्वराज्य तरक्की करता है। स्वराज्य में ऐसे अध्ययनशील लोगों की बहुत जरूरत रहती है। बिना अध्ययन के कोई भी समाज गहरा काम नहीं कर पाता। मैं देख रहा हूँ कि इस दिशा में बहुत काम नहीं हो रहा है। मैं इसे बुनियादी काम तो नहीं कहूँगा, परन्तु आवश्यक और महत्त्व का कहूँगा।

निष्काम समाज-सेवा

तीसरी बात यह करनी होगी कि समाज-सेवा के जो क्षेत्र हैं, खासकर उपेक्षित क्षेत्र, जिनकी ओर समाज का ध्यान नहीं है, जिन्हें आगे ले जाने में समाज और सरकार, दोनों का खयाल नहीं है, उनकी ओर ध्यान देना। सब तरह की सेवा में रात-दिन निष्काम बुद्धि से लगे रहना, दीर्घ काल में उसका फल मिलेगा, ऐसी निष्ठा रखकर कभी तेज कम न होने देना और चारों ओर अँधेरा फैला हो, तो भी दीपक के समान अँधेरे का भान न रखकर मस्ती से सेवा करते रहना—उनका काम रहेगा।

वाणी से निर्देश, कृति से सत्याग्रह

चौथा काम, समाज-जीवन में या सरकारी कामों में जहाँ कहीं गलती देखें, वहाँ उसका निर्देश करना। यह जरूरी नहीं कि निर्देश जाहिरा तौर पर

ही किया जाय, परन्तु जहाँ जाहिरा तौर पर निर्देश करने का मौका आये, वहाँ रागद्वेष-रहित होकर स्पष्ट शब्दों में उसे जनता के सामने रखना और उसमें अपनी प्रतिभा प्रकट करना उनका काम होगा। इस तरह सामाजिक और सरकारी कामों के बारे में चिन्तन करते हुए उनमें कहीं दोष आ जायँ, तो उन्हें प्रकट करना उनका कर्तव्य होगा।

कभी-कभी उन दोषों के लिए क्रियात्मक प्रतिकार का मौका भी आ सकता है। वह इतना सहज होगा कि जिनके विरोध में वह होगा, उन्हें भी वह प्रिय लगेगा; क्योंकि वह उनकी सेवा के लिए ही होगा। उसे 'प्रतिकार' का नाम देने के बजाय 'शस्त्र-क्रिया' कहना ही ठीक रहेगा; क्योंकि शस्त्र-क्रिया जिस पर होती है, उसे भी वह प्रिय होती है। उसे 'सत्याग्रह' भी कह सकते हैं। परन्तु आज सत्याग्रह का अर्थ गिर गया है। उत्तम-से-उत्तम शब्द भी नालायक हाथों में कैसे बिगड़ सकते हैं और मामूली-से-मामूली शब्द भी अच्छे हाथों में कैसे उठ सकते हैं, उसका यह एक उदाहरण है। इस तरह सत्याग्रह आज धमकी के अर्थ में, शस्त्र के अर्थ में और शस्त्र के अभाव में शस्त्रवत् हिंसा के अर्थ में इस्तेमाल किया जा रहा है। इस तरह यह शब्द बिगड़ गया है। इसमें शब्द का दोष नहीं। शब्द स्वच्छ है, इसलिए उस शब्द का प्रयोग करने में दोष नहीं है और उसका प्रयोग मैं करूँगा। इस तरह वाणी से निर्देश और कृति से सत्याग्रह यह भी उन कार्यकर्ताओं का काम रहेगा।

मसलों का अहिंसक हल ढूँढ़ना

इसके अलावा पाँचवाँ काम उनका यह रहेगा कि समाज-जीवन में जो भारी मसले पैदा होते हैं, उनका अहिंसात्मक हल वे खोज लें। अहिंसात्मक तथा नैतिक तरीके से बड़ी-बड़ी समस्याएँ भी हल हो सकती हैं, यह वे साबित कर देंगे। अगर वे साबित कर सकें, तो नैतिक और अहिंसात्मक तरीकों पर लोगों की श्रद्धा जम सकती है। लोगों को नैतिक तरीके प्रिय तो होते ही हैं, लेकिन प्रत्यक्ष परिणाम देखे बगैर लोगों की निष्ठा स्थिर नहीं हो सकती। प्रत्यक्ष प्रयोग से लोगों की निष्ठा साबित करना, यह इस निष्पक्ष-समाज का पाँचवाँ काम होगा।

के बाद शांतिमय उपायों की सफलता में मेरा विश्वास और भी दृढ़ हो गया है। हवा, प्रकाश और पानी की तरह भूमि भी भगवान् की सहज देन है। भूमिहीनों की ओर से उनके लिए मैं जो उसे माँग रहा हूँ, वह न्याय से अधिक और कुछ नहीं है।

आखिर यह सब मैं क्या कर रहा हूँ? मेरा उद्देश्य क्या है? स्पष्ट है कि मैं परिवर्तन चाहता हूँ। प्रथम हृदय-परिवर्तन, फिर जीवन-परिवर्तन, और बाद में समाज-रचना में परिवर्तन लाना चाहता हूँ। इस तरह त्रिविध परिवर्तन, तिहरा इन्कलाब मेरे मन में है।

जहाँ ऐसी राजनैतिक और सामाजिक क्रांति करने की बात है, वहाँ मनोवृत्ति ही बदल देने की जरूरत होती है। यह काम लड़ाइयों या हिंसक क्रांतियों से हो नहीं सकता। लड़ाइयों और क्रांतियों से जो काम नहीं हुआ, वह बुद्ध, ईसा, रामानुज आदि महापुरुषों ने किया। यह काम भी उन्हींके तरीके से होगा। आखिर तो जो मैं चाहता हूँ, वह सर्वस्वदान की ही बात है, सबके कल्याण के लिए अपना समर्पण कर देना है।

कानून कब?

आप यह समझ लें कि मैं दरिद्रनारायण की ओर से 'दान' नहीं माँगता, अपना हक माँग रहा हूँ। मेरा काम सिर्फ भूमिदान इकट्ठा करना नहीं है। मैं जमीन के मालिकों को यह समझाने की कोशिश कर रहा हूँ कि उन्हें अपनी जमीन का एक हिस्सा छोड़ देना चाहिए। जहाँ एक बार यह बात उनके ध्यान में आ जाय कि भूमिहीनों को भूमि का अधिकार है, तो योग्य कानून बनाने के लिए अनुकूल वातावरण तैयार हो जायगा। और वातावरण तैयार होने पर जो कानून बनेगा, वही सफल होगा, क्योंकि तब लोग उसे मान्य करेंगे, फिर चाहे हमारे पाँच करोड़ एकड़ के लक्ष्य का बीसवाँ हिस्सा ही क्यों न पूरा हो।

अन्त समान, पर आरम्भ भिन्न

सुबह एक भाई आये और बहुत उत्साह के साथ कहने लगे: 'आपका कार्यक्रम अच्छा है, लेकिन कब पूरा होगा?, कह नहीं सकते।' मैंने कहा: मेरी योजना अहिंसा की योजना है। अहिंसा की योजना में कानून नहीं आ

सकता, ऐसी बात नहीं। लेकिन पहले लोकमत का प्रदर्शन होना चाहिए। उसके लिए पहले हवा तैयार करनी पड़ती है। फिर जब बहुतों की हार्दिक सम्मति प्राप्त हो जाती है—चाहे उस अवस्था में कुछ लोग विरोध भी करें—तब कानून मदद के लिए आ सकता है। मेरी योजना में भी यह सब है। कानून तो साम्यवादी (कम्युनिस्ट) भी चाहते हैं। उनकी योजना में भी कानून होता है; लेकिन पहले कत्ल आरम्भ होता है और फिर वे कानून बनाते हैं, तो उस कानून में भी कत्ल का रंग चढ़ आता है। मेरा काम भी कानून से समाप्त होगा, लेकिन उसका आरम्भ करुणा से होता है। लोगों को सारी बातें शांति से समझायी जाती हैं। जब लोगों को यह कबूल हो जाता है कि जो चीज कही जा रही है, उसमें न्याय है और अभी जो हालत है, उसमें अन्याय है, उसमें बचाव नहीं है, तब मेरा काम पूरा हो जाता है। इस तरह यह काम करुणा से प्रारम्भ होता है और अहिंसा के तरीकों से चलता है। जब हवा तैयार हो जाती है, तब कानून मदद के लिए आता है।

दान याने न्याय्य हक

कुछ लोग कहते हैं कि मेरी योजना पहले दान-योजना थी और अब मैं हक माँगता हूँ। किन्तु बात ऐसी नहीं है। मैं पहले से ही न्याय और हक की बुनियाद पर यह बात कह रहा हूँ। न्याय यानी कानूनी न्याय नहीं, बल्कि ईश्वर का न्याय है। मैंने 'स्वराज्य-शास्त्र' पर एक छोटी-सी किताब लिखी है, उसमें यह बात स्पष्ट कर दी है। २० साल पहले भी जेल में मैंने साने गुरुजी को बताया था कि हमें कानून से जमीन तकसीम करनी होगी।

कानून अहिंसा का या मजबूरी का ?

एक कानून वह होता है, जो जबरदस्ती और हिंसा का प्रतिनिधित्व करता है। और दूसरा वह, जो अहिंसा का प्रतिनिधित्व करता है। मैं दूसरी तरह के कानून के लिए भूमिका तैयार कर रहा हूँ। ऐसे काम में, आरम्भ में प्रचार की गति धीमी होती है। अहिंसा के तरीके में ऐसा ही होता है, लेकिन देखते-देखते हवा में बात फैल जाती है। और जब बात फैल जाती है, तो काम होने में देर नहीं लगती। यदि हम सभी इस काम में जुट जायें, तो ४०-५०

साल की जरूरत नहीं, एक साल में भी यह हो सकता है। हमारा पुरुषार्थ, समझाने की शक्ति और त्याग, इन सबका असर पड़ता है। जितनी आसानी से समझाने से काम बनता है, उतना दबाव से नहीं। मैं कई बार कह चुका हूँ कि दबाव से मुझे कोई भी दान नहीं चाहिए। मुझे कलुषित नहीं, शुद्ध दान चाहिए।

मुआवजे के प्रश्न का अहिंसक परिहार

आज का कानून संविधान के अनुसार इतना ही कर सकता है कि मुआवजा देकर जमीन ले ले। लेकिन अहिंसा के तरीके में ऐसा नहीं है कि मुआवजा लेनेवाले को मुआवजा लेना ही होगा और देनेवाले को वह देना ही होगा। इसमें तो यही भाव होता है कि हमारे बड़े जमींदार, मालगुजार और काश्तकार भाइयों का काम चले और गरीबों के साथ भी न्याय हो। अगर किसी दस हजार एकड़वाले भाई को मुआवजा नहीं दिया जाता, तो वह हिंसा नहीं कही जा सकती। मैं बड़े काश्तकारों, जमींदारों और मालगुजारों को यह समझाने का विश्वास रखता हूँ कि ठीक हिसाब से मुआवजा लेना जरूरी नहीं है, जितना जरूरी हो, उतना ही ले लो। इसीलिए मैं मुआवजे का भी दान लेता हूँ, क्योंकि परमेश्वर की सृष्टि में जिस तरह की क्षमता है, उसीका मैं पालन करता हूँ। भूमिहीनों को भूमि दिलाना चाहता हूँ। मेरी आखिरी आकांक्षा यही है कि हर गाँव एक-एक कुटुम्ब बन जाय, सब मिलकर जमीन जोतें, पैदा करें, खायें-पियें और अमन-चैन से रहें। मैं चाहता हूँ कि हर गाँव गोकुल बन जाय।

प्रजासूय-यज्ञ

दो-ढाई हजार वर्षों से प्रसिद्ध इस कालसी स्थान में अश्वमेध-यज्ञ के घोड़े की तरह मैं भी भूमिदान-यज्ञ के अश्व-सा घूम रहा हूँ। महाभारत में राजसूय-यज्ञ का वर्णन है। मेरा यज्ञ प्रजासूय-यज्ञ है। इसमें प्रजा का अभिषेक होगा। ऐसा राज, जहाँ मजदूर, किसान, भंगी आदि सब समझें कि हमारे लिए कुछ हुआ है। ऐसे समाज का नाम सर्वोदय है। वहीं से प्रेरणा लेकर मैं घूम रहा हूँ।

राजघाट, दिल्ली
२२-११-'५१

उत्तर प्रदेश

दिल्ली से सेवापुरी

[नवम्बर १९५१ से अप्रैल १९५२]

समाज को उचित प्रेरणा दी जाय !

इन दिनों विद्यार्थियों के बारे में शिकायत की जाती है कि वे अनुशासन-हीन बनते जा रहे हैं। यद्यपि यह बात कुछ सही है, फिर भी मैं इसके लिए विद्यार्थियों को दोष नहीं दे सकता। कारण आज उन्हें जो तालीम दी जा रही है, वह बिल्कुल निकम्मी है। वही इतिहास, वही साहित्य और वही बिना काम का चेतनहीन शिक्षण ! जिससे नौकरी मिलना भी मुश्किल होता है। मुझे तो आश्चर्य लगता है कि लड़के मदरसों में जाते ही क्यों हैं ! इतनी बेकार तालीम होते हुए भी वे मदरसे में जाते हैं, इसमें तो उनकी अनुशासन-प्रियता ही दीख पड़ती है। किंतु अब उन्हें यह अनुभव हो रहा है कि उनकी पढ़ाई से देश को कोई लाभ नहीं। यह शुभ लक्षण है कि हमारे विद्यार्थी आज बेचैन हैं। अगर विद्यार्थियों के सामने ऐसा कोई कार्यक्रम होता, जिससे उन्हें स्फूर्ति मिलती, नये युग के लिए त्याग करने की प्रेरणा प्राप्त होती, तो उनमें यह अनुशासनहीनता नहीं दिखाई देती।

मैं विद्यार्थियों को भलीभाँति जानता हूँ। विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि अगर उनके सामने श्रमनिष्ठ बनने और धन की प्रतिष्ठा को तोड़ने का कार्यक्रम रखा जाय, तो वे दिलोजान से उस काम में लग जायँगे। यह मैं अपने अनुभव से कह रहा हूँ, क्योंकि मेरे आश्रम में कॉलेज के नौजवान बारह घंटे परिश्रम करते हैं। मैं जहाँ जाता हूँ, वहाँ विद्यार्थी मुझसे पूछते हैं कि 'हम भूदान-यज्ञ में किस तरह हिस्सा ले सकते हैं ?' मैं उनसे कहता हूँ कि आप अपने माता-पिता से कह सकते हैं कि 'आप भूदान में जमीन दान दीजिये, हमारी चिंता मत कीजिये, हम मेहनत करके खायेंगे।' मैं यह भी चाहता हूँ कि जहाँ दान में परती जमीन मिली हो, उसे तोड़ने के लिए विद्यार्थी श्रमदान दें। खुशी की बात है कि जिन विद्यार्थियों को श्रम करने की कोई तालीम नहीं दी जाती, वे श्रमदान के लिए उत्साह के साथ तैयार हो जाते हैं। मैं चाहता हूँ कि समाज में श्रमनिष्ठा का मूल्य स्थापित करने के लिए विद्यार्थी यह व्रत लें कि प्रतिदिन एक-आध घंटा शरीर-परिश्रम किये बगैर नहीं खायेंगे सर्वोदय-

विचार तथा अन्य विचारधाराओं का तटस्थ-बुद्धि से अध्ययन करें और जो विचार उनकी बुद्धि को जँचे, उस पर अमल करें।

'नदी वेगेन शुद्ध्यति'—समाज को भी नदी के समान बहते रहना चाहिए। नदी में वेग न रहा, उसका पानी बहता न रहा, तो कीचड़ हो जाता है। जब समाज में जड़ता आ जाती है, तब बाहर से और भीतर से आक्रमण होते हैं। इसलिए समाज को सदा जाग्रत और गतिशील रहना चाहिए। इस तरह समाज के सामने अगर कोई उचित कार्यक्रम रखा जाय, जिससे लोगों को त्याग की प्रेरणा मिले, तो समाज गलत दिशा की ओर कभी नहीं मुड़ेगा। समाज स्वभावतः गतिमान् होता है। इसलिए अगर उसे सही प्रेरणा नहीं मिलती, उसकी शक्ति का स्रोत सही दिशा में नहीं लगाया जाता, तो किसी-न-किसी तरीके से क्षोभ पैदा होता है और समाज का पतन आरंभ हो जाता है। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि समाज के सामने निरन्तर कुछ-न-कुछ चेतन कार्यक्रम हो।

भूदान-यज्ञ के जरिये आज समाज के सामने एक नया कार्यक्रम उपस्थित है। हम चाहते हैं कि सब लोग गरीबों की सेवा के लिए स्वयं गरीब बनें। वास्तव में मैं सबको गरीब नहीं, बल्कि श्रीमान् बनाना चाहता हूँ। किन्तु जब गरीबी बँटेगी, तभी वह मिटेगी। जब हम सब गरीब बनेंगे, तभी एक साथ ऊपर उठेंगे और सच्चे श्रीमान् बन जायँगे। तभी हमारा देश श्रीमान्, धृतिमान् और विजयी होगा।

देहरादून
१०-१२-'५१

हम न केवल आर्थिक प्रगति और अर्थ-साम्य ही चाहते हैं, वरन् उन्नत धर्म भी चाहते हैं। मैं मानता हूँ कि भूदान-यज्ञ का कार्य धर्मोन्नति का भी साधन है।

मर-मिटना ही सच्चा क्षात्र-धर्म

आज तक हमारे समाज ने शस्त्र क्षत्रियों तक सीमित रखा, यह तो अच्छा किया। फिर भी हम देखते हैं कि क्षात्र-धर्म में जो मर्यादाएँ रखी गयी थीं, वे ठीक तरह से निभ न सकीं। महाभारत में दो बार सायंकाल के बाद लड़ाई हुई। भीम ने कमर के नीचे शस्त्र न चलाने की मर्यादा का उल्लंघन किया। ऐसे कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं। इस द्वितीय महायुद्ध में भी हमने देखा कि रेड-क्रॉसवालों पर भी बम बरसे। इसलिए हमें क्षात्र-धर्म की नयी मर्यादाएँ कायम करनी होंगी। क्षत्रियत्व का अर्थ समझना होगा। यह दिखाना होगा कि क्षत्रियत्व युद्ध करने में नहीं, उसे रोकने और सबको बचाने में है। जो वीरता सबको बचाने में अपने को मिटा दे, वही सच्ची वीरता है। ऐसा क्षात्र-धर्म हम कायम करना चाहते हैं, मारने के बजाय मर मिटने का धर्म स्थापित करना चाहते हैं।

भूदान का अनोखा तरीका

भूदान-यज्ञ के तरीके में यही धर्मनीति छिपी हुई है। इसीलिए दुनिया का ध्यान इधर आकृष्ट हुआ। हमें जो सत्तर हजार एकड़ जमीन मिली है, उसके जरिये हो सकता है कि प्रतिव्यक्ति एक एकड़ के हिसाब से सत्तर हजार लोगों को राहत मिले, जीवन-निर्वाह का साधन मिले। लेकिन इतना ही लाभ उसमें नहीं है। जिस तरीके से वह जमीन मिली है, वही मुख्य वस्तु है। महत्त्व आकार का नहीं, प्रकार का है। इसीलिए दुनिया का ध्यान इधर आकृष्ट है। अगर आप इस काम की तरफ देखने की मेरी दृष्टि को समझेंगे, तो इसके भीतर विश्वरूप-दर्शन कर सकेंगे।

आज हम पहले से अधिक विकसित

जो यह मानते हैं कि प्राचीनकाल में मानव-समाज में जो ज्ञान था, वह आज की अपेक्षा श्रेष्ठ था, वे गलती पर हैं। अवश्य ही उस समाज के महापुरुषों के पास श्रेष्ठ ज्ञान था, किन्तु सामुदायिक दृष्टि से उस समय के समाज से आज के समाज के पास ज्ञान अधिक है। उस समय के ऋषि की अपेक्षा आज का ऋषि भी अधिक ज्ञानी है। इसमें उनके किए कोई मानहानि की बात नहीं है। अगर पुत्र पिता से आगे बढ़ता है, तो पिता को खुशी ही होती है। गुरु चाहता है कि शिष्य आगे बढ़े। इसलिए आज के अधिक उन्नत ऋषियों को देखकर प्राचीन ऋषियों को आनन्द ही होगा। आज के ऋषियों के सामने सारे विश्व की समस्याएँ हैं। पहले भी मानसिक चिंतन के प्रसंग में मानव आज की तरह सारे विश्व का चिंतन करता था। लेकिन प्राचीन ऋषि के सामने जो प्रत्यक्ष समस्याएँ थीं, वे सीमित रहीं और आज के ऋषि के सामने वे व्यापक हैं। इस विकास में विज्ञान और समाजशास्त्र ने भी काफी हिस्सा लिया है। दोनों आज बहुत आगे बढ़ गये हैं। इसीलिए आज हमारे नीतिविषयक विचार आगे बढ़े हैं। जैसे समाज आगे बढ़ेगा, नीतिशास्त्र और भी प्रगति करता रहेगा।

विज्ञान और धर्म में विरोध नहीं

जो लोग यह समझते हैं कि विज्ञान और धर्म में विरोध है, वे गलती करते हैं। वास्तव में विज्ञान से धर्म को कुछ भी हानि नहीं पहुँचती। एक बाजू से आध्यात्मिक विचार और दूसरी बाजू से सृष्टि-विज्ञान, दोनों मानव-जीवन पर प्रकाश डालते हैं। जहाँ आध्यात्मिक विचार से अन्दर का प्रकाश बढ़ता है, वहीं सृष्टि-विज्ञान से बाहर का प्रकाश। दोनों प्रकाश परस्पर विरुद्ध नहीं, बल्कि एक-दूसरे के पूरक हैं। जिस क्षेत्र में विज्ञान प्रवेश नहीं कर पाता, वहाँ आध्यात्मिक ज्ञान प्रवेश करता है। और जहाँ आध्यात्मिक ज्ञान प्रवेश नहीं कर पाता, वहाँ विज्ञान प्रवेश करता है। जैसे पंछी दो पंखों से उड़ता है, वैसे ही मानव का धर्मरूप कर्तव्य भी इन दो पंखों पर निर्भर है। बहुतों का खयाल है कि इन दिनों नास्तिकतावादी बढ़ गये हैं, पर वह गलत है। नास्तिकता, संशय और श्रद्धा, तीनों पहले से चले आ रहे हैं। वेदों में भी

इसका निदर्शन मिलता है। समझने की बात है कि मानव सभी क्षेत्रों में प्रगति करता आ रहा है। जो मसले मानव के सामने पहले थे, उनसे भी कठिन, सूक्ष्म और व्यापक मसले आज उसके सामने उपस्थित हैं। उनके हल के लिए नये उपाय सोचने की आज जरूरत है। अगर हम नये उपाय नहीं सोचते, तो आधुनिक जमाने में काम करने लायक नहीं रहते। इसलिए आज जो विज्ञान और समाजशास्त्र आगे बढ़ा है, उसकी सहायता से हमें नये हल ढूँढ़ने चाहिए।

मानवीय और पाशवीय तरीके

इस दृष्टि से सोचेंगे, तो आपको मालूम होगा कि यह भूदान-यज्ञ की धारा, जो आज छोटी-सी दीखती है, गंगा की धार है। अगर लूट-मार से हम सत्तर हजार एकड़ नहीं, सत्तर लाख एकड़ भी हासिल कर लेते, तो दुनिया को उसका कोई महत्त्व नहीं मालूम पड़ता। अब आज की दुनिया में लूट-मार के इन तरीकों का न तो महत्त्व है और न वे चल ही सकेंगे। अभी तक जो तरीके दुनिया में चले, वे मानवीय नहीं, पाशवीय थे। पाशवीय तरीकों से कोई भी समस्या हल नहीं होती। एक समस्या हल होती दिखाई पड़ती है, तो उसमें से दूसरी अनेक समस्याएँ पैदा हो जाती हैं। एक महायुद्ध खतम हुआ, तो उसने दूसरे महायुद्ध को जन्म दिया। पुराने मसले हल होने के बजाय नये मसले और पैदा हुए। इसलिए जरूरत इस बात की है कि मानव की समस्याएँ हल करने के लिए कोई मानवीय तरीका खोजा जाय। अगर ऐसा कोई तरीका निकलता है, तो सारी दुनिया उसकी ओर देखती है। इसलिए आपको अपने देश के इस अहिंसक तरीके के प्रति प्रतिष्ठा का अनुभव करना चाहिए। अगर भूमिदान-यज्ञ के कार्य में आप यह जागतिक दृष्टि रखेंगे, तो देखेंगे कि आप जमीन तो कुछ एकड़ दें, पर काम करोड़ों एकड़ का करेंगे।

बहराइच
२८-२-'५२

यह सर्वतोभद्र कार्य है   : २८ :

वर्षों से चली आनेवाली हमारी सभ्यता का यह संदेश है कि धर्म और अर्थ साथ-साथ चलते हैं। वह धर्म सच्चा धर्म नहीं हो सकता, जो सारे अर्थ का नियमन न कर सके। इसी तरह वह अर्थ भी सच्चा अर्थ नहीं, जो धर्मबुद्धि को कायम न रख सके या उसे आघात पहुँचाये। इसलिए धर्म और अर्थ में विरोध नहीं हो सकता। मैंने यह जो काम उठाया है, उससे धर्म और अर्थ, दोनों सधेंगे। इससे इस काम के लिए सहयोग देनेवालों की हृदय-शुद्धि में भी मदद मिलेगी।

यह काम सर्वतोभद्र है। किसी भी दृष्टि से देखिये, इससे अच्छाई ही निकलेगी। यह काम भगवान् की भक्ति का है। भगवान् की भक्ति में कोशिश करने पर भी बुराई नहीं आ सकती। वह काम, जिसका स्वरूप केवल शुद्ध भक्ति का ही हो सकता है और वह तरीका भी, जिससे कार्य सफल होगा, सर्वतोभद्र है।

गोंडा
१९५२

समय चूकि पुनि का पछताने ?   : २९ :

जो लोग हिन्दुस्तान की संस्कृति में विश्वास रखते हैं और जिन्हें गांधीजी के तरीके में श्रद्धा है, उन्हें मैं खास तौर से निमंत्रण देता हूँ कि 'आइये, इस भूदान-यज्ञ के काम में हाथ बँटाइये और अपना पूरा सहयोग दीजिये।' अगर आप चाहते हैं कि यहाँ की भूमि-समस्या का हल शांतिमय तरीके से हो और दूसरे कोई तरीके यहाँ न आयें, तो आप इस समय पीछे न रहें। अन्यथा मैं आपको साफ-साफ कह देना चाहता हूँ कि फिर पछतायेंगे। ऐसा काम और ऐसा मौका आपको फिर मिलनेवाला नहीं है। यह नहीं हो सकता कि लोग अनिश्चित काल तक हमारी राह देखते ही रहें। फिर तो वे लोग आयेंगे, जिनका विश्वास दूसरे तरीकों में है और जिनके पास अपनी दूसरी योजनाएँ हैं। तब आप देखेंगे कि लोग उन्हींका स्वागत करेंगे।

अगर हम जमाने की माँग को न पहचानें, अपना फर्ज अदा न करें और यह मौका खो दें, तो उसका अर्थ होगा, हम युग-धर्म नहीं पहचानते। और जो युग-धर्म नहीं पहचानते, वे धर्म को ही नहीं पहचानते। धर्म की यही खूबी है कि जब कोई महत्त्व का नैमित्तिक कर्तव्य उपस्थित होता है, तो वही मुख्य धर्म बन जाता है; अन्य सारे धर्म फीके पड़ जाते हैं। मेरा मानना है कि यदि इस भूमि-समस्या को हम शांतिमय तरीके से हल कर लेते हैं, तो उससे अपने देश में तो हम शांति कायम कर ही देंगे, दुनिया को भी शांतिमय क्रांति का तरीका बता सकेंगे।

गोरखपुर
१७-३-'५२

निमित्तमात्र बनें ! : ३० :

आप लोग जमीन कितनी देते हैं, इसकी मुझे फिक्र नहीं। जमीन तो जहाँ थी, वहीं पड़ी है और वह जिनकी है, उनके पास पहुँच चुकी है। जिस भगवान् ने गीता में कहा था कि 'अर्जुन, ये सब मर चुके हैं। तू सिर्फ निमित्त-मात्र बन।' वही आज कह रहा है कि 'जमीन तो गरीबों को मिल चुकी है, श्रीमान् लोग निमित्त-मात्र बनें।' बे-जमीनों के पास जमीन पहुँचाने में, श्रीमानों और जमीनवालों को प्रेरणा देने के लिए वह मुझे भी निमित्त-मात्र बनाना चाहता है। लोग कहते हैं कि आज दो सौ एकड़ जमीन यहाँ मिली है। लेकिन मैं ऐसा भोला नहीं कि वह सच मान बैठूँ। क्योंकि, जैसा कि मैंने अभी कहा, जमीन तो सबकी सब गरीबों की हो चुकी है। फिर भी मैं यह नहीं चाहता कि गरीबों के पास सिर्फ जमीन पहुँचे, बल्कि यह भी चाहता हूँ कि वह यज्ञरूप में पहुँचे। इसलिए जमीन का हस्तान्तरण मुख्य प्रश्न नहीं है, वह ठीक ढंग से हस्तान्तरित हो, यही मुख्य प्रश्न है। और यही कार्य भगवान् मेरे जरिये कराना चाहते हैं। इसलिए आप लोग मेरा विचार समझ लीजिये, ताकि वह मेरी तरह आपको भी प्रेरणा दे सके।

गोरखपुर
१८-३-'५२

मुझे इस बात की खुशी है कि यहाँ हमारे कम्युनिस्ट भाइयों ने मुझे मानपत्र देकर, भूदान-यज्ञ की सफलता की कामना करते हुए कहा है कि 'इस आन्दोलन से एक महत्त्वपूर्ण सवाल को चालना मिली है और सब लोगों में भूमि का यह संदेश फैल रहा है।' साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि 'अगर यह सवाल शान्ति के तरीके से हल हो सके, तो उन्हें खुशी होगी।'

अच्छा तरीका सफल कर दिखाइये !

मैं भी यही मानता था कि इन कम्युनिस्ट भाइयों को बुरे तरीकों से खुशी नहीं है। देश के गरीब भाइयों के लिए उनका जी छटपटाता है। उस छटपटाहट में अगर वे गलत तरीके पर चले जाते हैं, तो यह नहीं कह सकते कि वे गलत तरीका पसन्द करते हैं। इसलिए जिसे हम सही तरीका समझते हैं, अगर वह कारगर साबित हो, तो उन्हें खुशी ही होगी। यह तो स्पष्ट है कि हमारे अच्छे तरीकों पर कम्युनिस्टों का एकाएक विश्वास बैठ नहीं सकता। मुझे इसमें कोई अचरज नहीं मालूम होता। यह तो हमारा काम है कि अच्छे तरीकों को सफल कर दिखायें। अगर हम अपने अच्छे तरीकों की सिद्धि के लिए अच्छा प्रयत्न न करें और सिर्फ सद्भावना प्रकट करते रहें, तो उससे दुनिया का काम नहीं चल सकता। दुःखी दुनिया बहुत सब्र नहीं कर सकती। वह सब्र तो रखती है, लेकिन आदमी के सब्र की भी एक हद होती है। इसलिए जिनका सही तरीकों पर विश्वास है, उनका धर्म है कि वे उन तरीकों को दुनिया में सफल सिद्ध कर दिखायें।

यही मेरी कोशिश है और मैं चाहता हूँ कि इसमें सभी लोग मदद करें। मैं यह भी चाहता हूँ कि इसमें कम्युनिस्ट भाई भी मदद करें, बावजूद इसके कि वे मानते हैं कि यह मसला इस तरीके से हल नहीं हो सकता। वे कहते हैं कि अगर कुछ जमीन मिल जाती है, तो वह किसी मनुष्य के व्यक्तित्व के कारण मिलती है। फिर भी अगर वे इस काम में सहायता कर सकें, तो उनकी

सहायता मुझे किस दिशा में मिल सकती है, इसका कुछ दिग्दर्शन आज मैं करना चाहूँगा।

सारी जमीनें पाप से हासिल नहीं

उन्होंने अपने मानपत्र में कहा है कि 'जमीन बे-जमीनों को मिलनी चाहिए, तभी यह मसला हल हो सकता है।' मैं भी यही मानता हूँ, लेकिन उन्होंने यह भी कहा है कि 'ये सारी जमीनें इन जमींदारों को सामन्तशाही के जमाने में उनके हस्तक होने के नाते मिली हैं।' मेरे और उनके कहने के तरीके में यही फर्क पड़ता है। यह नहीं कि उनका कहना बिलकुल गलत है, लेकिन यह भी सही नहीं कि सारी-की-सारी जमीनें जमीनवालों ने अन्याय से ही हासिल की हैं। अपने पूर्वजों के बारे में बिना पूरी जानकारी के हम निश्चित रूप से कुछ कह दें, यह ठीक नहीं। गरीबों ने जो जमीनें खोयीं, वे केवल अपनी अच्छाई या भलमनसाहत के कारण ही, ऐसी बात नहीं है। अपने पाप के कारण भी उन्होंने जमीनें खोयी हैं। शराबखोरी, फिजूलखर्ची, कोर्ट-कचहरी आदि उनके ऐसे दोष हैं, जिनके कारण वे बरबाद हो जाते हैं। इसी तरह जिन्होंने जमीनें हासिल की हैं, उन्होंने केवल पाप से ही वे हासिल कीं, ऐसा नहीं कह सकते। अपने पराक्रम और पुण्य के कारण भी उन्हें जमीनें मिली हैं।

हम भूमिपति नहीं, भूमिपुत्र हैं!

मैं तो एक कदम आगे बढ़कर कहता हूँ कि मान लीजिये, सारी-की-सारी जमीनें उन लोगों को उनके पराक्रम से और पुण्य से मिली हैं; फिर भी आज के जमाने में यह हरगिज नहीं हो सकता कि जमीन चन्द लोगों के हाथ में रहे और बाकी के सारे बेजमीन रहें। फिर, जब कि जमीन का परिमाण दिन-ब-दिन कम हो रहा है, उद्योग-धन्धे टूट गये हैं, तब जो लोग जमीन माँगते हैं, उन्हें जमीन मिलनी ही चाहिए। इसलिए जमीनवालों से जमीन माँगते समय मैं उन्हें यह परमेश्वरीय न्याय समझाता हूँ कि जमीन उनकी नहीं है, ईश्वर की देन है। मैं उन्हें समझाता हूँ कि आप लोग कम्युनिस्टों को तो 'नास्तिक'

कहते हैं, लेकिन जो लोग ईश्वर पर श्रद्धा रखने का दावा करते हैं और उसीके द्वारा पैदा की हुई जमीन पर अपना अधिकार जतलाते हैं, वे आस्तिक कैसे हो सकते हैं? ईश्वर ने हवा, पानी और सूरज की रोशनी सबके लिए पैदा की। वह सबको समान जन्म देता है। हर बच्चा चाहे वह राजा का हो या भिखारी का, नंगा ही पैदा होता है। श्रीमान् का लड़का गहने पहनकर नहीं पैदा होता। मरने पर भी सभी की खाक हो जाती है। ब्राह्मण के शरीर का सोना और क्षत्रिय के शरीर की चाँदी नहीं बनती। इस तरह ईश्वर की इच्छा स्पष्ट है कि वह समानता चाहता है। हम समान जन्म लेते हैं, समान मरते हैं, फिर बीच में ही भेद क्यों? इसलिए भूमिवान्-भूमिहीन, मालिक-मजदूर, ऊँच-नीच आदि भेद ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध हैं।

कुछ लोग तो अपने को भूमिपति कहते हैं। पर यह उस शब्द का कितना गलत प्रयोग है? हम रोज प्रार्थना में कहते हैं कि "विष्णुपत्नी नमस्तुभ्यम्"—पृथ्वी के स्वामी तो भगवान् ही हैं। हम तो पृथ्वी-माता के पुत्र हैं—"माता भूमिः पुत्रोऽहम् पृथिव्याः।" मैं उन्हें समझाता हूँ कि यह 'भूमिपति' शब्द गलत रूढ़ हो गया है। होना तो यही चाहिए कि जमीन पर सबका समान अधिकार रहे, क्योंकि सबको जमीन चाहिए। जीवन के लिए, मरण के लिए, हर काम के लिए जमीन की जरूरत है। हर काम के लिए जमीन का अधिष्ठान आवश्यक है, इसलिए जमीन पर सबका अधिकार होना चाहिए। हरएक को यह अपना कर्तव्य समझ लेना चाहिए कि जो भूमि चाहते हैं, उन सबको भूमि प्राप्त करा दें, ताकि सब लोगों की शक्ति उसमें लग सके।

इतिहास के गड़े मुर्दे मत उखाड़िये

इस तरह जमींदारों को समझाने की कोशिश करने के बजाय यह कहना कि 'जमीन हासिल करनेवाले तुम्हारे सारे पूर्वज बेईमान थे', न आवश्यक है और न योग्य ही। जब हम कोई शुभ काम करने जा रहे हैं, तो उसमें अपशकुन नहीं करना चाहिए। लेकिन कम्युनिस्ट लोग यही करते हैं। वे वर्ग-संघर्ष निर्माण करने की कोशिश करते हैं। किसी प्रश्न की पृष्ठभूमि में जितनी द्वेष-भावना

भरी जा सकती है, वे भरने की कोशिश करते हैं। मुझे यह तरीका ठीक नहीं मालूम देता। हम इतिहास की बातों को दफना देना चाहते हैं। जो चीज इतिहास में दफना दी गयी है, उसे उखाड़ निकालने की मुझे आवश्यकता नहीं मालूम देती। लेकिन कम्युनिस्ट और कम्युनलिस्ट (साम्यवादी और सम्प्रदायवादी), दोनों को इतिहास की चीजें ऊपर निकालने का बहुत शौक है। पुरानी चीजों की याद दिलाकर वे लोगों की द्वेष की वृत्तियाँ उभारते हैं। इतिहास का ऐसा उपयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि सही इतिहास तो हमें मालूम भी नहीं होता। आज की लड़ाई का इतिहास भी शायद सही न लिखा जाय। बहुत संभव है कि असली कागजात जला भी दिये गये हों। इसलि इतिहास की बात हम न करें और जो चीज है, वह आज की दृष्टि से न्याय्य है या नहीं, यह देखें।

अगर कम्युनिस्ट भाई मेरी इस बात को मान लेंगे, तो उनके ध्यान में आ जायगा कि पुराना इतिहास निकालने से कोई लाभ नहीं है। वर्तमान काल ही हमारे लिए काफी है। अगर आज कोई न्याय का काम कर रहा है, तो उसके पूर्वज कितने ही अन्यायी क्यों न हों, उसकी इस न्याय्य बात को हम दोप नहीं दे सकते। और अगर आज कोई अन्याय का काम करता है, तो पूर्वज कितने ही न्यायी क्यों न हों, उसका भी कोई उपयोग नहीं। अगर यह बात हम समझ लेते हैं, तो नाहक के झगड़े पैदा नहीं होंगे और अपने काम के लिए सद्भावनावान् लोगों का सहयोग भी हासिल कर सकेंगे। इस तरह कम्युनिस्ट भी मेरे इस काम में मदद कर सकते हैं। अगर वे पुरानी बातों को निकालना छोड़ दें, तो उनके लिए भी लोगों के दिल में सद्भाव पैदा होगा। लोग समझेंगे कि कम्युनिस्ट लोग किसीका बुरा नहीं चाहते।

भूदान से गरीबों का संगठन

दूसरी बात उन्होंने यह कही है कि जमीन का यह मसला तब तक हल नहीं होगा, जब तक गरीब लोग संगठित नहीं होंगे। मैं मानता हूँ कि उनकी इस बात में सचाई है और यह भी कहना चाहता हूँ कि जो कुछ मैं कर रहा हूँ, वह काम गरीबों के संगठन का ही है। मेरे कम्युनिस्ट भाई चाहें, तो

मेरे साथ यात्रा में चलकर यह सब खुद देख सकते हैं। उन्हें सब मालूम हो जायगा।

असल बात यह है कि हमारे गरीब लोग न सिर्फ बे-जमीन हैं, बे-जबान भी हैं। मैं उनकी वकालत अच्छे-से-अच्छे ढंग से कर रहा हूँ। मैं साफ कहता हूँ कि मैं भीख नहीं माँगता, बे-जमीनों का हक माँग रहा हूँ। मैं पाँच बीघेवालों से बतौर एक प्रेम की निशानी के एक या आधा बीघा भी ले लेता हूँ। लेकिन दस हजार एकड़वाले से सौ एकड़ नहीं लेता। ऐसे कितने ही दान-पत्र मैंने लौटा दिये हैं। जो बड़े जमींदार दरिद्रनारायण का हिस्सा समझकर ठीक दान देते हैं, वही मैं लेता हूँ। आगरे के एक परिवार के तीनों भाइयों ने मुझे चौथा भाई मानकर उन्नीस सौ एकड़ में से बड़े भाई का पाँच सौ एकड़ का हिस्सा दे दिया। यह सही है कि मुझे सात्त्विक, राजस और तामस, तीनों प्रकार के दान मिलते हैं। लेकिन जब यह मालूम हो जाता है कि यह दान राजस या तामस है, तो मैं उस आदमी को समझाता हूँ और अगर वे मुझे अपने परिवार का एक सदस्य मानकर दरिद्रनारायण का हक नहीं देते, तो मैं ऐसी जमीन नहीं लेता।

इस तरह आप देखेंगे कि जिस तरीके से मैं काम कर रहा हूँ, वह गरीबों के संगठन का ही काम है। जब गरीबों की आवाज ठीक ढंग से बुलन्द होगी, तभी उसका असर होगा। किसी भी जमींदार ने आज तक मेरे विचार से इनकार नहीं किया। मुझे अगर वह जमीन आज नहीं देता, तो केवल मोह के कारण ही नहीं देता। उस मोह से उसे मुक्ति दिलाने का काम मेरा है। जब हवा और पानी की तरह जमीन भी सबको मिलनी चाहिए, यह बात चल पड़ेगी, तब कानून भी आसानी से बन सकेगा।

कानून क्यों नहीं बनाते ?

हमारे समाजवादी भाई मुझसे यह प्रश्न पूछते हैं कि क्या आपका यह काम कानून के जरिये आसानी से नहीं बन सकता ? मैं कहता हूँ : 'नहीं बन सकता', क्योंकि जो काम लोगों के हृदय में प्रवेश करके होगा, वह ऊपर से उन पर लादने से नहीं हो सकता। बिना उचित वातावरण के कोई कानून बना, तो

समाज में दो पक्ष पड़ जायँगे और देश को दोनों की अक्लों का लाभ मिलने के बजाय वे आपस में टकरायँगे ही। इसलिए अगर लोगों को समझा-बुझाकर काम किया जाय, तो उसमें सरलता है। मैं कानून का विरोधी नहीं हूँ। अगर कानून बनता है, तो जाहिर है कि मेरा यह काम उसके बनने में मददगार ही साबित होगा। याने फिर जो कानून बनेगा, वह सिर्फ लोगों का मत दर्ज करने का तरीका होगा। किसी ग्रंथ को लिखकर अंत में इस पर हम 'समाप्तम्' लिख देते हैं, ऐसे ही यह कानून भी उस लोकमत पर मुहर-सा होगा। बिना किताब लिखे केवल 'समाप्तम्' लिख देने से 'किताब लिखी गयी' नहीं कहलाती। सारांश, मेरे तरीके से अव्वल तो कानून की जरूरत ही नहीं होगी, और अगर जरूरत हुई और कानून बना, तो उसका बनाना भी सुकर हो जायगा, यह बात भलीभाँति समझ लेनी चाहिए।

समाजवादी भाई कानून की बात बहुत करते हैं। अतः मैं उनसे पूछना चाहता हूँ कि कानून बना सकने के लिए आपके हाथ में सत्ता कब आयेगी? कब आपका राज्य होगा? अभी पाँच साल तक तो नहीं होता। और अगर पाँच साल के बाद आप चुनाव में जीतकर अपनी हुकूमत होने पर कानून बनाना चाहते हों, तो मेरे इस काम से आपके उस कानून के बनने में मदद ही मिलेगी। इस बीच अगर कांग्रेसवाले कानून बनाते हैं, तो उन्हें भी मेरे काम से मदद मिलेगी। और अगर वे नहीं बनाते, तो टिक नहीं सकते।

कानून छोटा बनता है

मैंने कई बार समझाया है और आज भी फिर दुहरा देना चाहता हूँ कि कानून से जो चीज बनती है, वह महान् नहीं बन सकती, वह छोटी-सी चीज बनती है। आपने देख ही लिया कि 'जमींदारी-उन्मूलन' कानून से बे-जमीनों को जमीन नहीं मिल सकी। फिर उसमें भी मुआवजे का सवाल आता है। मैं यह नहीं कहता कि मुआवजा बिलकुल नहीं देना चाहिए, क्योंकि आखिर उन लोगों को भी उदर-निर्वाह के लिए कुछ देना जरूरी ही है। लेकिन इसके लिए भी लोकमत तैयार करने की आवश्यकता है। जब हम किसी विचार का पूरा प्रचार करते हैं, तभी अच्छा-से-अच्छा कानून बन सकता है। हम चाहते हैं कि उस

वेंजमीन को, जिसके पास और कोई धंधा नहीं है, जो जमीन जोतना जानता और चाहता है, उसे जमीन मिलनी चाहिए। यह एक नैतिक आन्दोलन है। लोग इस विचार को एक योग्य माँग के तौर पर स्वीकार कर रहे हैं। लेकिन अगर हम ऐसा नैतिक वातावरण नहीं बना पाते, तो कानून बनना भी बेकार है। कारण, जब जो कानून बनता है, तो कठिन परिस्थिति में ही बनता है, और उसका विरोध होता है। और जो कानून बनता है, वह कंजूस और छोटा बनता है।

मैं गरीबों का हिमायती

मैं मानता हूँ कि मैं गरीबों का मामला इज्जत और दावे के साथ रख रहा हूँ, कम्युनिस्ट जिस तरीके से रखते हैं, उससे बहुत अच्छे तरीके से रख रहा हूँ। रोजमर्रा ऐसे किस्से होते हैं, जब कि मैं बड़े जमींदार का छोटा दान लेने से इनकार कर देता हूँ और छोटे आदमी का छोटा दान प्रेमपूर्वक स्वीकार कर लेता हूँ। एक जगह मुझे एक बड़े आदमी ने दो एकड़ जमीन दी। मैंने उसे स्वीकार नहीं किया और आगे बढ़ा। कुछ ही देर बाद एक गरीब किसान दौड़ते आया और उसने अपनी बहुत कम जमीन में से दस बिस्वा जमीन मुझे दी। मैंने उसे स्वीकार कर लिया। पाँच मिनट के भीतर ही दोनों घटनाएँ हुईं। फिर उस बड़े आदमी ने भी अपनी गलती को दुरुस्त किया और दरिद्र-नारायण का वाजिब हक दिया।

मैं मानता हूँ कि मेरा यह ढंग किसानों को संघटित करने का है। आप देखेंगे कि इस काम से गरीब लोग संघटित हो जायँगे। यही वजह है कि कुछ लोग मुझसे नाराज भी हैं। वे कहते हैं कि मेरे इस काम से समाज की रचना टूट जायगी। मैं भी कहना चाहता हूँ कि मैं खुद भी ऐसी समाज-रचना को कायम रखना नहीं चाहता। आज जो यह समाज-रचना है, वह वास्तव में रचना है ही नहीं। वह तो नसीब से बन गयी है और मैं उसे जरूर बदलना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि मेरे कम्युनिस्ट भाई इन दो बातों की ओर, जिनका मैंने अभी जिक्र किया है, ध्यान दें और इस भूदान-यज्ञ में मेरा सहयोग करें।

बेदखलियों का इलाज

कम्युनिस्ट भाइयों ने बेदखली की ओर भी मेरा ध्यान खींचा है। मैं मानता हूँ कि बेदखलियाँ नहीं होनी चाहिए। मुझे बताया गया है कि हिमाचल प्रदेश के जमींदारों पर इस आन्दोलन का नैतिक असर हुआ है। उन्होंने सोचा कि अगर हम जमीन नहीं दे सकते, तो कम-से-कम बेदखलियाँ तो न करें। आखिर हमें एक बुनियादी बात न भूलनी चाहिए। सोचना यह चाहिए कि सब मिलकर हम एक हैं। जैसे घर में दूसरे की कमजोरी हम अपनी कमजोरी मान लेते और उसे दूर करने की कोशिश करते हैं, वैसे ही हमें सामाजिक जीवन में भी समझना चाहिए। जमींदार लोग अगर बेदखलियाँ करते हैं, तो उन्हें भी समझाया जा सकता है और बेदखली रोकी जा सकती है।

संतों का व्यापक कार्य

मेरे समाजवादी भाइयों ने मुझसे पूछा है कि 'प्राचीन काल से हमारी इस भूमि में संत-परम्परा चली आ रही है। सबने समता, प्रेम और न्याय का प्रचार किया है। फिर भी सामाजिक जीवन-रचना में विषमता आदि क्यों रह सकीं ?' सवाल बहुत अच्छा है, इस पर मेरा जवाब यह है कि संतों ने साधारण सद्-भावना निर्माण करने का काम किया है। काम करने का यह भी एक तरीका है, इसके पीछे भी एक विचार है। संतों ने जनता के सांसारिक जीवन के कोई भी खास प्रश्न हाथ में नहीं लिये, लेकिन एक बुनियादी काम कर दिया। उन्होंने हमारे लिए एक वातावरण तैयार कर रखा। आज विनोबाजी को अगर जमीन मिल रही है, तो यह नहीं मानना चाहिए कि यह विनोबाजी की करनी है। संतों ने जो सद्भाव हवा में पैदा कर रखा है, उसीका फल हमें मिल रहा है। मैं तो मानता हूँ कि संत जो वसीयत हमारे लिए छोड़ गये, उससे अधिक कीमती वसीयत और कोई नहीं हो सकती थी।

संतों का काम सूरज जैसा !

यह तो मानना ही होगा कि जैसे आज एक मसला मैंने हाथ में लिया है या जैसे गांधीजी ने अनेक मसले हाथ में लिये थे, हमारे संतों ने अक्सर

ऐसा नहीं किया। इसका एक कारण उस समय की परिस्थिति भी हो सकती है, लेकिन मुख्य कारण उनकी विशिष्ट वृत्ति ही है। जन-सेवक दो प्रकार के होते हैं : एक तो सूरज के जैसे, याने जैसे हमारे संत थे और दूसरे अग्नि के जैसे। जो सूरज के समान होते हैं, वे दूर से ही प्रकाश देते हैं, किसीके घर के चावल वे नहीं पकाते। अगर सूरज हमारी सेवा के लिए जमीन पर उतर आये, तो हम भस्म ही हो जायँगे। लेकिन दूसरे, जो अग्नि के समान होते हैं, वे घर में चावल पका देते हैं। फिर भी समझने की बात है कि अग्नि भी सूरज के बिना नहीं प्रकट होता, सूरज के प्रकाश की महिमा वह भलीभाँति जानता है। मेरे जैसे जन-सेवक, जो प्रत्यक्ष सेवा में लगे हैं, उन संतों का उपकार माने बगैर नहीं रह सकते, जिन्होंने सूरज की तरह तटस्थ रहकर हमें रोशनी दी है। लेकिन मैं अगर सूरज से कहूँ कि मेरे चावल तू क्यों नहीं पका देता ? तो वह यही कहेगा कि तेरे लिए भी कुछ काम छोड़ना चाहिए या नहीं ?

साम्यवाद और साम्ययोग

यहाँ के जिला-बोर्ड ने जो मानपत्र दिया है, उसमें कहा गया है कि 'मैंने साम्यवाद के बदले साम्ययोग की कल्पना समाज के सामने रखी है।' उनका यह कहना ठीक है। मैं भी मानता हूँ कि वैचारिक जगत् को मेरी यह देन है। लेकिन दोनों शब्दों में से एक भी शब्द मेरा नहीं है। 'साम्ययोग' गीता का शब्द है और 'साम्यवाद' है कम्युनिज्म का अनुवाद। मैंने इन दोनों का विरोध दिखाया है। साम्ययोग और साम्यवाद, दोनों में साम्य तो है, लेकिन साम्ययोग में आन्तरिक समानता का अनुभव होता है और साम्यवाद में अक्सर देखा जाता है कि उसका आधार दूसरे के मत्सर पर होता है। साम्यवाद श्रीमानों का मत्सर सिखाता है।

श्रीमानों का मत्सर मत करो

किन्तु श्रीमानों का मत्सर करना गरीबों का धर्म नहीं हो सकता। आखिर हम दूसरे का मत्सर क्यों करें ? और फिर श्रीमानों के पास ऐसी कौन-सी चीज है, जिससे उनसे मत्सर किया जाय ? उनके पास या तो कागज के कुछ टुकड़े होते हैं, जो नासिक में छपते हैं या सफेद-पीले कुछ पत्थर, जो सोने-चांदी के

नाम से पहचाने जाते हैं और जो न खाने के काम आते हैं, न पीने के। ये लोग श्रमिकों के पास पहुँचते हैं और, जैसे कोई रिवाल्वर दिखाकर दूसरों की चीज हासिल कर लेते हैं वैसे ही, इन सफेद-पीले टुकड़ों के बल पर चीजें माँगते हैं। अगर हम जनता को समझा दें कि तुम्हें न तो पिस्तौल से डरना चाहिए और न इन रंगीन टुकड़ों से, तो फिर ये धनवान् लोग क्या पायेंगे ? क्योंकि लक्ष्मी तो श्रम करनेवालों के पास रहती है : "यत्र श्रमः तत्र लक्ष्मीः।" धनवान् होना एक बात है और लक्ष्मीवान् होना दूसरी बात। लोग पैसे की लालच से अपनी चीजें बेच देते हैं, क्योंकि अपने जीवन की आवश्यकताओं को पूरी करने का सामान वे खुद निर्माण नहीं करते। आज वे कपास खुद पैदा करते हैं, पर कपड़ा खरीदते हैं; तिलहन भी पैदा करते हैं, पर तेल खरीदते हैं; गन्ना पैदा करते हैं, पर गुड़ खरीदते हैं; पटसन पैदा करते हैं, पर रस्सी खरीदते हैं। इसीलिए तो उन्हें अपना घी-दूध बच्चों को खिलाने के बजाय बेचना पड़ता है। लेकिन अगर हम स्वावलम्बी बन जायँ, तो सच्चे श्रीमान् बन जायँगे। केवल श्रीमानों के मत्सर से काम नहीं बनेगा।

लेकिन यह तब हो सकता है जब हम रिवाल्वर से नहीं डरेंगे, द्रव्य-लोभ से न पसीजेंगे। जब लोगों के ध्यान में यह आ जायगा कि घी-दूध की तुलना में पैसे की कोई कीमत नहीं, तो वे उसी क्षण श्रीमान् बन जायँगे और श्रीमान् गरीब बन जायँगे। श्रीमान् सोचेंगे कि अब वे दिन आ गये, जब श्रम किये बगैर काम नहीं चलेगा। इसलिए मैं कहता हूँ कि श्रीमानों का मत्सर सिखाने से कोई लाभ नहीं। काम मैं वही करता हूँ कि जो कम्युनिस्ट चाहते हैं। फर्क इतना ही है कि वे द्वेष से करना चाहते हैं और मैं प्रेम से !

श्रमिक सच्चे श्रीमान् हैं

इस भूदान-यज्ञ में मैं जमीन, कुएँ, बैल-जोड़ी आदि सब स्वीकारता हूँ, लेकिन पैसा नहीं स्वीकारता। लोग कहते हैं कि गांधीजी पैसा लेते थे, आप क्यों नहीं लेते ? मैं कहता हूँ कि गांधीजी लेते थे, इसीलिए मैं नहीं लेता। उन्होंने वह प्रयोग कर लिया। नदी शुरू में जिस तरीके से चलती है, उसी तरीके से आगे नहीं चलती। गांधीजी का जमाना दूसरा था और मेरा जमाना

दूसरा है। मैं पैसे की इज्जत जरा भी नहीं कायम रखना चाहता। मैं गरीबों को समझाना चाहता हूँ कि तुम ही सच्चे श्रीमान् हो। मैं श्रीमानों को समझाना चाहता हूँ कि आप दरिद्र हो। मेरे लिए पैसा निकम्मी चीज है। वह गरीबों को तो जलील बनाता ही है, श्रीमानों को भी बनाता है। एक दिन आयेगा, जब सोने का उपयोग खेत से बहनेवाली मिट्टी को रोकने के लिए किया जायगा। यह कल्पना नहीं है, यह बात होकर रहेगी। इसलिए मैं कहता हूँ कि अगर मत्सर करना भी है, तो ऐसों का करना चाहिए, जिनके पास मत्सर करने के लायक कोई चीज हो ?

आत्मा को पहचानो

मुझे जो जमीन मिली है, उसके बारे में भी आक्षेप उठाया गया है। मेरा कहना है कि जब रसोई पूरी नहीं पकी है, अभी पक रही है, तब उसकी आलोचना नहीं करनी चाहिए। मैं कह देना चाहता हूँ कि मुझे अब तक एक भी आदमी ऐसा नहीं मिला है, जिसने जान-बूझकर खराब जमीन दी हो। एक भाई ने हैदराबाद में हजार एकड़ जमीन दी थी। उसके बँटवारे के वक्त हमारे कार्यकर्ता ने जब देखा कि उसमें पाँच सौ एकड़ काबिल काश्त नहीं है, तो दाता ने फौरन उसके बदले में अच्छी जमीन दे दी। मेरा मानना है कि यह सब दैवी सम्पत्ति के प्रचार से हो सकता है। इसके लिए किसीका मत्सर करने की जरूरत नहीं। सब कुछ हो जायगा, आप पहले सत्त्व-गुणों का विकास करो, दैवी संपत्ति का प्रचार करो और आत्मा को जानो : "आत्मानम् विजानीथाः।"

बलिया
२-४-'५२

नेशनल प्लानिंग, यंत्र-बहिष्कार, सत्याग्रह : ३२ :

कोई भी नेशनल प्लानिंग (राष्ट्रीय नियोजन) 'नेशनल' कहलाने के लायक नहीं हो सकता, अगर वह अपने देश के सब लोगों को पूरा काम न दे सके। परिवार में ऐसा नहीं होता कि बारह में से आठ या दस लोगों की फिक्र की जाय। ऐसा कोई घरवाला नहीं, जो अपने घर के सभी लोगों के लिए रोटी और काम का प्रबन्ध न करता हो। नेशनल प्लानिंग का यह बुनियादी उसूल होना चाहिए कि सबको काम देने की जिम्मेवारी हमारी है और अगर हम उसे नहीं उठा सकते, तो केवल सिफारिश करने से यह काम नहीं बनेगा। 'सबको काम, सबको रोटी', हमारा मूलभूत सिद्धान्त होना चाहिए, क्योंकि वह बुनियादी बात है। इसके लिए हमें हरएक को औजार देने होंगे और जो उत्पादन होगा, वह सबमें बाँटना होगा।

लेकिन इसके खिलाफ 'एफिशियन्सी' याने क्षमता की दलील दी जाती है। क्षमता मुझे भी चाहिए। लेकिन इसके पहले कि मैं क्षमता की बात कहूँ, हरएक को काम और खाना देना चाहता हूँ। मैं इसे 'न्यूनतम क्षमता' कहता हूँ। अन्यथा यदि हम कुछ लोगों को काम-खाना दे सके और कुछ लोगों को न दे सके, तो वह नेशनल 'प्लानिंग' नहीं हो सकता। 'योजना-आयोग' के सदस्यों में से एक ने मुझसे कहा कि यह 'नेशनल प्लानिंग' नहीं है, 'पार्शियल प्लानिंग' (आंशिक नियोजन) है। इसमें किसी-न-किसीका बलिदान तो होगा ही। मैंने कहा : 'अगर आपका यह पार्शियल प्लानिंग है, तो वह पार्शियालिटी (पक्षपात) आपको गरीबों के पक्ष में करना चाहिए और कहना होगा कि हम सबके लिए प्लानिंग नहीं कर रहे हैं। अगर बलिदान ही करना है, तो हम खुद का करें, दूसरे का नहीं।'

सारांश, आपको सारे देश की जिम्मेदारी महसूस करनी चाहिए। इसे निबाहने का उत्तम से उत्तम तरीका आज की हालत में यही हो सकता है कि 'गाँव में बननेवाले कच्चे माल से गाँव की आवश्यकता का पक्का माल गाँव में ही बनाया जाय। इसीको 'सेल्फ सफिशियन्सी' (क्षेत्रीय स्वावलंबन) कहते

हैं ।' लेकिन उन्हें 'स्वावलंबन' शब्द स्वीकार नहीं, उसे वे कल्पना की वस्तु समझते हैं । कहते हैं कि हम काल्पनिक वस्तु के पीछे नहीं जाना चाहते । मैं यहाँ किसी शब्द-विशेष के लिए झगडना नहीं चाहता । अगर वे सबको काम देने के लिए ग्रामोद्योगों को मान लेते हैं और उस शब्द को नहीं मानते, तो मुझे उस शब्द का कोई आग्रह नहीं ।

मैंने तो यहाँ तक कह दिया कि अगर आप किसी यांत्रिक साधन से भी सबको काम दे सकें, तो मुझे विरोध नहीं है । लेकिन अगर आप ऐसा नहीं कर सकते, तो आपको चरखे का साधन स्वीकार करना चाहिए । यह बेचारा इतना गरीब है कि आप जब चाहेंगे, तब आपका दूध तपाने के लिए तैयार रहेगा, कभी शिकायत नहीं करेगा । लेकिन जब तक आप और कोई औजार देश के सामने नहीं रखते, तब तक ग्रामोद्योगों को तत्काल मान लेने में क्या हर्ज है ? पर, इसमें दृष्टिकोण का ही फर्क है । वे यह नहीं कहते कि हम पूरे लोगों को काम देंगे । हाँ, काफी लोगों को काम देने की बात कहते हैं । उस कोशिश में अगर ग्रामोद्योगों की जरूरत हुई, तो उन्हें भी स्वीकार कर लेंगे । तो, मुझे भी बहुत सब्र है ।

सूत्रांजलि : सर्वोदय के लिए वोट

गांधीजी के बाद मैं सोच रहा था कि "कोई ऐसा तरीका अख्तियार करें, जिससे हम आम जनता के सम्पर्क में आ सकें और अहिंसा का प्रयोग कर सकें ।" यह सोचते हुए तीन बातें मेरे ध्यान में आयीं, जिन्हें मैं सिलसिलेवार आपके सामने रखता हूँ । पहली बात यह कि गांधीजी की स्मृति में हर साल मेला लगाने का जो आयोजन किया है, उस मौके पर गुंडियाँ काफी आती हैं । इस पर से मुझे यह विचार सूझा कि हर एक आदमी गुंडियाँ तो देता है, पर उनका कोई प्रमाण तय नहीं । कोई कम देता है, तो कोई ज्यादा । लेकिन अगर हम एक ही गुंडी अर्पण करने का नियम रखें, तो जैसे हरएक को एक वोट होता है, वैसे ही हरएक से मिलनेवाली यह एक गुंडी सर्वोदय-विचार के लिए वोट समझी जायगी ।

मुझे इसके भीतर छिपी शक्ति का अंदाजा हुआ। मैंने देखा कि अगर हम लोगों के पास जाकर उन्हें अपना विचार समझाते हैं, तो गांधीजी की स्मृति के निमित्त श्रम-निष्ठा बढ़ाने के लिए हजारों लोग गुंडियाँ देंगे। यह एक व्यापक कार्यक्रम है। हमारे दफ्तर में उन सभी गुंडी-दाताओं के नाम रहेंगे, उनके साथ हमारा नित्य-सम्बन्ध रहेगा। मैंने यहाँ तक सुझाया कि जहाँ एक गुंडी ही मिली हो, वहाँ वह अकेला ही नन्दादीप समझकर हमें उसकी अधिक चिंता करनी चाहिए। इस तरह सारे समाज के साथ हमारा सम्बन्ध आयेगा, जिसका परिणाम बहुत व्यापक हो सकता है।

गांधीजी ने कांग्रेस के लिए सुझाया था कि लोग चार आने के बजाय सूत की एक गुण्डी दें, लेकिन यह चीज नहीं चल पायी। फिर बीच में तो चार आने का एक रुपया हो गया और अब फिर से चार आने हो गये। इस तरह से उद्धार और अवतार चलते रहे। लेकिन पैसे को महत्त्व देने से हम क्या साधनेवाले हैं, मुझे पता नहीं। कहते हैं कि कांग्रेस में हमें शक्ति लानी है, उसमें शुद्धि लानी है। लेकिन सोचते नहीं कि पैसे से न शक्ति आनेवाली है, न शुद्धि ही। अगर सर्व-सेवा-संघवाले गांधीजी की स्मृति में लाखों गुण्डियाँ जमा करते हैं, तो लोगों को शरीर-परिश्रम की दीक्षा तो मिलती ही है, उनकी मनोवृत्ति में क्रान्तिकारी परिवर्तन होगा, इसमें मुझे सन्देह नहीं।

गत वर्ष इस दिशा में कुछ काम हुआ और इस वर्ष भी हुआ। परंतु जैसा होना चाहिए वैसा नहीं हुआ। लोग इसके लिए चुनाव का निमित्त बताते हैं। चुनाव की माया ऐसी है कि हमारे कुछ सर्वोदय-कार्यकर्ता भी उसमें गिरफ्तार हुए। मुझे भी सुझाया गया था कि चुनाव के कारण मैं कहीं रुक जाऊँ। लेकिन मैंने सोचा कि गंगा रुकती नहीं, सूरज डूबता नहीं, तो मैं क्यों रुकूँ? अगर परमेश्वर ही मुझे रोकना चाहें और मेरा पाँव टूटकर मुझे बैठ जाना पड़े, तब तो अलग बात है। परिणाम यह हुआ कि यद्यपि सभी दलवाले चुनाव में लगे रहे, आम जनता ने हमारे इस भूदान-यज्ञ के काम में बहुत दिलचस्पी ली। हमारे विचार एकाग्रता से सुने और काफी सहयोग भी दिया।

हमारी संस्थाएँ कांचनाश्रित न रहें

बापूजी के जाने के बाद यह बात मेरे ध्यान में आयी कि आज तक हमारी संस्थाएँ पैसे के आधार पर चलती रहीं, लेकिन वह जमाना गया कि संस्थाएँ पैसे के आधार पर चलायी जायँ। अब नया जमाना आया है। अब तो जहाँ तक हो, कांचन-मुक्ति से ही संस्थाएँ चलनी चाहिए। मैं 'गांधी-निधि' के बारे में हमेशा खामोश रहा। पर जब एक जगह लोगों ने जाहिरा तौर पर पूछ लिया, तो मुझे कहना पड़ा कि अगर हम गांधीजी की स्मृति आगे चलाना चाहते हैं, तो उसमें पैसा साधक नहीं, बाधक ही होगा। मेरी उस राय में आज भी कुछ परिवर्तन नहीं हुआ है। मैं यह नहीं कहता कि हमारे किसी काम में पैसे का सम्पर्क जरा भी न हो। कुछ काम ऐसे हैं, जो पैसे से किये जा सकते हैं; जैसे कुष्ठसेवा आदि। लेकिन जैसा कि शास्त्रकारों ने कहा है, आमतौर पर होना यही चाहिए कि '**श्राद्धान्नं न भक्षयेत्।**' गांधीजी के श्राद्ध के निमित्त पैसा जमा हो और उससे संस्थाएँ चलायी जायँ, तो हमारी उन संस्थाओं में, जिनके आधार पर हम ग्रामराज्य की कल्पना का निर्देशन करना चाहते हैं, तेज नहीं आ सकता। इसलिए जहाँ तक हो सके, वहाँ तक हमें अपनी इन संस्थाओं को पैसे से मुक्त रखना चाहिए। तभी नया चैतन्य आ सकेगा। तभी सारे गाँव का उद्धार हो सकेगा। इसका परिणाम सरकार पर भी पड़ेगा, क्योंकि सिद्ध प्रमेयों का तिरस्कार सरकार नहीं कर सकती। जो प्रमेय इस तरह सिद्ध होगा, उसकी ओर अगर ध्यान नहीं दिया जायगा, तब आगे का कदम क्या उठाया जाय, यह हम सोच सकते हैं, जानते भी हैं। उसके बारे में आज कुछ कहना मैं उचित नहीं समझता। मैं चाहता हूँ कि हमारी संस्थाएँ इस प्रयोग में लग जायँ और आदर्श ग्राम-निर्माण करने के काम में अपनी सारी शक्ति लगा दें।

यन्त्र-बहिष्कार

दूसरी बात यन्त्र-बहिष्कार की है। इस सम्बन्ध में श्री धीरेन्द्र भाई ने जो प्रस्ताव आप लोगों के सामने रखा है, वह बहुत शक्तिशाली है। जब अपने जीवन में हम उसे अमल में ला सकेंगे, तभी कुछ कर सकेंगे। नहीं तो "परोपदेशे

पांडित्यम्" की तरह हमारे कहने का कुछ भी असर नहीं होगा। हिन्दुस्तान की जनता बहुत अनुभवी है। जो सेवक उनकी कसौटी पर नहीं उतरता, उसके कहने का परिणाम उस पर नहीं होता। उसमें एक तरह की पुराणवादिता है। लेकिन मैं इसीमें उसकी रक्षा देखता हूँ। अगर कोई भी सुधारक आये और लोग उसकी बातें मानते चले जायँ, तो वे डूब ही जायँगे। सुधारक चाहे कितनी भी श्रेष्ठ कोटि का क्यों न हो, जब तक जनता उसे परख नहीं लेगी, उसकी बात नहीं सुनेगी। जनता तो धरती माता की तरह है। उस पर कुदाली से घाव होता है, लेकिन गेंद स्पर्श होते ही ऊपर के ऊपर उड़ जाता है। मुझे इस बात की बहुत खुशी है कि हम लोगों के सामने एक-एक चीज रखते जाते हैं और लोग सहसा एकाएक उसे नहीं अपनाते। हम खादी की बात कहते आ रहे हैं, पर लोग अभी उसे पूरी तरह नहीं मान रहे हैं। हम ग्रामोद्योगों की बात कहते जाते हैं, वे उसे भी नहीं मानते हैं। सारांश, हमारे विचारों को कसौटी पर कसे बगैर हमारे लोग हमारी बात नहीं मानते। इसलिए जरूरत इस बात की है कि हम अपने जीवन में यन्त्रों का उपयोग न करें। मैंने जो कांचन-मुक्ति का तरीका सुझाया है, उससे यह काम सिद्ध हो सकता है।

यन्त्र-बहिष्कार के सम्बन्ध में मैं एक बात सुझाना चाहता हूँ। 'यंत्र-बहिष्कार' शब्द से बहुत गलतफहमी हो सकती है। फिर स्पष्टीकरण करते रहने पर बिगड़ी बात बन नहीं पाती। नाम ऐसा ही रखिये, जो व्यापक हो, जिसमें फैलाव की गुंजाइश हो। एक गाँव में, जहाँ बरसों से रचनात्मक काम हो रहा है, किसी शख्स ने आटे की मिल खोल दी। कार्यकर्ता हाथ के आटे की बात करते ही रह गये; पर किसीने नहीं सुनी, आटे की मिल मजे में चलती रही। मैंने पूछा कि आपके देखते वहाँ मिल दाखिल हो गयी, तो आपको यह कैसे नहीं सूझा कि खानगी मिल चलने देने के बदले गाँव की मालकियत की मिल आप चलाते? कई जगह पानी खींचने के लिए इंजिन लगाना पड़ता है। उससे सिंचाई होती है। अगर हम यह आग्रह करें कि उस खेती का अनाज स्वीकार नहीं करेंगे, तो हम संकुचित बनेंगे, व्यापकता खोयेंगे। इसलिए शब्द ऐसा चाहिए, जिसके अर्थ का विस्तार हो सके। मैंने 'काञ्चन-मुक्ति'

शब्द इसीलिए रखा कि उसमें गलतफहमी की गुंजाइश कम है। सारांश, खाने-पीने और पहनने-ओढ़ने की वस्तुओं के लिए ग्रामोद्योगों का ही आग्रह रखनेवाले धीरेन्द्र भाई के प्रस्ताव का मैं स्वागत करता हूँ, क्योंकि मैं मानता हूँ कि यह प्राथमिक वस्तु है। इससे गाँव बलवान् बन सकते हैं और उसके जरिये हम काञ्चनमुक्ति की ओर भी बढ़ सकते हैं।

भूदान : बुनियादी कार्य

मैं मानता हूँ कि भूदान-यज्ञ बहुत ही बुनियादी काम है। लेकिन जैसे कि एक भाई ने कहा, इस काम की एक मर्यादा है, फिर भी मैं क्या करने जा रहा हूँ, इस बारे में अपने विचार आपको समझा दूँ। स्पष्ट है कि मनुष्य के हृदय में कितनी शक्ति छिपी हुई है, इसका हमें पता नहीं चल सकता। अगर मैं उसकी हद बाँध दूँ, तो कहना पड़ेगा कि मुझे कभी आत्मदर्शन नहीं हो सकता। हमने देखा कि जनता बिना किसी कानून की मदद के अपनी जमीन का हिस्सा दे सकती है। जब हम जनता को समझाते हैं कि 'बेजमीनों का उस पर हक है और जैसे हवा, पानी और सूरज की रोशनी भगवान् की देन है, वैसे जमीन भी भगवान् की देन है, इसलिए जो बेजमीन हैं, उन्हें जमीन देनी चाहिए', तो जमीनवाले बेजमीनों को खुशी से जमीन दे देते हैं। इस तरह लोगों ने इस क्रान्तिकारी कार्यक्रम को अपनाया और हमें उनकी आत्मा में छिपी अपार शक्ति का दर्शन मिला।

अगर हम मानते हैं कि 'स्टेट' (राज्य) को 'विदर अवे' (एक राज्य) हो जाना है, विलयन हो जाना है, तो वह १९५२ में क्यों नहीं हो सकता ? हमारी श्रद्धा ऐसी होनी चाहिए कि अगर मैं इस विचार को पसंद करता हूँ, इस तरीके में श्रद्धा रखता हूँ और इस यज्ञ में अपनी सारी-की-सारी जमीन दे देता हूँ, तो वह विचार दूसरों को भी ऐसी प्रेरणा क्यों नहीं देगा ? एक भाई ने अपनी उन्नीस सौ एकड़ जमीन में से पाँच सौ एकड़ जमीन मुझे यह कहकर दे दी कि हम तीन हैं और आप चौथे हुए। दूसरे एक भाई ने अपने छह एकड़ में से दो एकड़ यह कहकर दे दिये कि हम दो भाई हैं, आप तीसरे हुए। प्रायः रोज ऐसी घटनाएँ घटती हैं। मैं आपसे पूछता हूँ कि अगर भगवान्

मुझे माँगने की प्रेरणा देता है और अगर एक शख्स मानता है कि मैं इतना कर सकता हूँ, तो वह सारे मनुष्य क्यों नहीं कर सकते ? क्या विभिन्न व्यक्तियों में आत्मा का स्वभाव भिन्न-भिन्न हुआ करता है ? क्या आत्मशक्ति की भी कुछ सीमा होती है ? मैं तो इसी विचार के सहारे आगे बढ़ूँगा कि हर व्यक्ति में आत्मा की शक्ति विद्यमान है और उसकी कोई सीमा नहीं है। जो त्याग एक व्यक्ति कर सकता है, वह सभी कर सकते हैं।

नैतिक तरीके में अटल श्रद्धा हो

कानून की बात हमेशा उठायी जाती है। लेकिन मेरा कहना है कि कानून की बात कानूनवालों पर छोड़ दीजिये। हमें तो अपना काम इसी तरीके से करते जाना है। हो सकता है कि इसी तरीके से सारी जमीन बेजमीनों में बँट जाय और कानून की आवश्यकता ही न पड़े। किन्तु अगर मनुष्य की संकल्प-शक्ति उतनी कारगर नहीं हुई, जितनी कि इस समस्या को हल करने के लिए जरूरी है, और राज्य की मदद लेनी ही पड़ी, तो उस हालत में भी हमें यही समझना चाहिए कि हमारा यह काम कानून बनाने में पूरा मददगार होगा। याने या तो कानून की आवश्यकता ही नहीं रहेगी या जो कोई कानून बनाना है, वह बिना विरोध के आसानी के साथ बन सकेगा।

फिर मेरे माँगने का भी एक तरीका है। मैं अत्यंत नम्र होकर माँगता हूँ, डरा-धमकाकर नहीं माँगना चाहता। अगर मैं लोगों को यह समझाऊँ कि आप मुझे भूमि नहीं देंगे, तो मैं दो-चार साल में कानून से जबर्दस्ती ले ही लूँगा, तो कहना पड़ेगा कि मैं माँगना ही नहीं जानता। मुझे अपनी श्रद्धा न छोड़नी चाहिए। श्रद्धा तो दीवार के समान खड़ी होती है, परदे के समान लटकती नहीं। या तो वह खड़ी रहती है या पड़ी। वह आठ आने या चार आने याने आंशिक खड़ी नहीं रहती; या तो पूरी रहेगी या फिर नहीं ही। जैसे आदमी पूरा जिंदा रहता है या नहीं रहता। वह आठ आने जिंदा या आठ आने मरा है, ऐसा नहीं होता। श्रद्धा की भी यही हाल है। बिना श्रद्धा के कोई काम नहीं बन सकता। श्रद्धा से कृति होती है और कृति के बाद वह 'निष्ठा' में परिणत हो जाती है। निष्ठा प्राप्त होने के पहले मनुष्य श्रद्धा से

काम कर सकता है । निष्ठा तो अनुभवजन्य होती है, अतः वह बाद में आती है । किन्तु श्रद्धा तो आरंभ से ही होनी चाहिए । इसीलिए कहता हूँ कि अगर हमें नैतिक शक्ति से यह मसला हल करना है, तो हमारी उस तरीके में अटल श्रद्धा होनी चाहिए ।

मुझे अभिनिवेश नहीं

अक्सर लोग मुझसे पूछते हैं कि क्या आप इस तरह जमीन का यह मसला हल कर सकेंगे ? मेरा कहना है कि दुनिया का मसला न तो राम हल कर सके, और न कृष्ण । उसे तो दुनिया ही हल कर सकती है । आपका मसला मैं हल कर सकूँगा । ऐसा कोई अभिनिवेश मुझमें नहीं है । इसलिए मैं सदा निश्चिन्त रहता हूँ । रात को गहरी नींद सोता हूँ, एक मिनट भी मुझे नींद आने में देरी नहीं लगती । दिनभर काम भी किये जाता हूँ । कभी मुझे चार एकड़ जमीन मिलती है, कभी चार सौ, तो कभी चार हजार एकड़ मिलती है; फिर भी मुझे उसका कुछ भी सुख-दुःख या हर्ष-विषाद नहीं । जनक महाराज की तरह मैं निश्चिन्त सोता हूँ, इसीलिए काम कर सकता हूँ ।

सत्याग्रह

तीसरी बात सत्याग्रह के संबंध की है । मैं आप लोगों को समझाना चाहता हूँ कि मुझे अगर कोई आबरू है, तो वह सत्याग्रही के नाते ही । दूसरी कोई आबरू मेरे पास नहीं है । इसलिए अगर सत्याग्रह करने की आवश्यकता हुई, तो मैं जरूर करूँगा । लेकिन गांधीजी का यह तरीका था कि वे एक कदम उठाना काफी समझते थे । याने दूसरे कदम के बारे में हम कुछ जानते ही नहीं, ऐसा नहीं है । लेकिन जहाँ हमने दूसरे कदम की बात सोची, वहीं हमारे मन में हमारे पहले कदम की सफलता के बारे में अश्रद्धा पैदा होती है । मैं जब कभी बीमार की सेवा करूँगा, तो इस खयाल से नहीं कि संभव है, वह न सुधर सके और मर जाय तो दवा के साथ-साथ लकड़ी भी लाकर रख दूँ । बल्कि इस खयाल और इस श्रद्धा से करूँगा कि वह उपचार और सेवा से जरूर सुधर जायगा । अगर मर ही जाय, तो शांति से लकड़ी इकट्ठा करूँगा ।

आखिर दूसरे कदम के बारे में हम इसीलिए विचार करते हैं न, कि

शायद लोग हमारी बात न मानें, वे हमें जमीन न दें? ऐसा मानने में ही सामने-वाले के प्रति हमारी अश्रद्धा प्रकट होती है। फिर हम श्रद्धावान् नहीं कहलायेंगे, मुत्सद्दी या युक्ति-कुशल कहलायेंगे। अगर जमीन हासिल करने की ऐसी कोई बनी-बनायी युक्ति होती, तो उससे भी शायद जमीन मिल सकती। लेकिन यह काम का सही तरीका नहीं है। इससे काम बनने के बजाय बिगड़ता है और हमारे संकल्प में हीनता आती है। फिर संकल्प में हीनता आने पर काम कैसे बनेगा? मैं अपने अनुभव से कहता हूँ कि जो-जो संकल्प मेरे मन में उठे, सभी पूरे होकर रहे। लोगों के पास भी इसी विचार से माँगता हूँ कि जो भगवान् मेरे भीतर विराजमान हैं, वही उनके भीतर भी हैं और उन्हें अपना विचार समझाया जा सकता है। एक बार, दो बार नहीं, अनेक बार समझाया जा सकता है। आखिर शंकराचार्य के पास सिवा समझाने के और क्या शस्त्र था?

हमारी अन्तिम श्रद्धा अगर किसी चीज पर हो सकती है, तो वह हमारी समझाने की शक्ति पर ही। जैसे ईसामसीह ने कहा कि 'अपराधी को क्षमा करना चाहिए और क्षमा की कोई हद नहीं होती', वैसे ही समझाने की भी कोई मर्यादा या सीमा नहीं होती। इसलिए जिसे आप 'सत्याग्रह' कहते हैं, वह उसी हद तक सम्भव है, जिस हद तक उसको समझाने का स्वरूप बना हुआ है। दबाव का स्वरूप आने पर तो वह सत्याग्रह नहीं रह जाता। माता जैसे बच्चे के बारे में यह आशा किये रहती है कि वह कभी-न-कभी सुधरेगा ही, वैसे ही सत्याग्रही को भी लोगों के बारे में आशा रखनी चाहिए कि 'उन्हें सूझेगा, सूझेगा और जरूर सूझेगा'। सारांश, इसमें सत्याग्रह का भी स्थान है। लेकिन अगर हम सत्याग्रह को नहीं समझेंगे, तो वह सत्याग्रह सत्याग्रह नहीं रहेगा, हिंसा होगी।

किसीको जलील नहीं करना है

आज एक भाई ने प्रश्न उठाया कि जिसके पास एक हजार या दस हजार एकड़ जमीन हो, वह अगर कम जमीन दे, तो उसे स्वीकार करना चाहिए या नहीं? उसकी उस भीख से क्या होगा? हमारे आंदोलन में इस सवाल का जवाब प्रायः रोज दिया जाता है—मेरे भाषण से भी और कृति से भी। मैं लोगों को समझाता हूँ कि न तो मुझे गरीबों को जलील करना है और न श्रीमानों

को। इसलिए जब कोई बड़ा आदमी कम जमीन देता है, तो मैं स्वीकार नहीं करता। लेकिन मेरा अनुभव यह है कि थोड़ा समझाने पर लोग ठीक-ठीक हिस्सा दे देते हैं। तीन सौ एकड़वाले एक भाई मुझे आकर स्वेच्छा से एक एकड़ देने लगे। लेकिन जब मैंने वह एक एकड़ लेने से इनकार कर दिया और अपना दृष्टिकोण समझाया, तो उस भाई ने फौरन तीस एकड़ कर दिया। इन सबमें मुश्किल से मेरे दो-तीन मिनट गये होंगे।

मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है कि अगर एक पैसे की मिश्री से भगवान् राजी होते हैं, तो वह चार पैसे की खरीदकर नहीं चढ़ाता। वह इधर भगवान् को भी राजी रखने की कोशिश करता है और उधर पैसा भी बचाना चाहता है। दोनों में मनुष्य प्रामाणिक होता है। अगर मैं किसी मन्दिर या मठ के लिए माँगता होता, तो एक-आध एकड़ से भी मेरा काम चल जाता। लेकिन मैं तो गरीबों के हक के रूप में माँगता हूँ। अब तक इस तरह करीब दस हजार लोगों ने दान दिया है। उनमें कई दान परम पवित्र हैं, जिनका स्मरण रहेगा।

एक दूसरे भाई ने सवाल पूछा कि दान देनेवाले की तो देने से प्रतिष्ठा बढ़ती है, लेकिन क्या लेनेवाला इससे जलील नहीं होता? इस पर मेरा कहना है कि नहीं होता, क्योंकि मैं भीख नहीं माँगता। मैं तो गरीब का हक माँगता हूँ। अगर मैं जमीन के बदले उसे पका-पकाया अन्न देता, तो जरूर जलील करता। लेकिन जमीन से वह जलील नहीं होता। वास्तव में जो जमीन माँगने आता है, उसका उपकार ही मानना चाहिए। कारण जमीन लेनेभर से तो उसमें फसल नहीं आयेगी। फसल के लिए उसे अपना पसीना बहाना होगा। सालभर मेहनत और मशक्कत करने पर उसे फसल मिलेगी। इसलिए इसमें जमीन लेनेवाला कभी दीन नहीं बनता।

दूषण भी भूषण ही

कुछ भाई कहते हैं कि मैं इस तरह जमीनें माँगकर जमीनवालों को संजीवन दे रहा हूँ। यह आक्षेप मुझे कबूल है। जमीनवालों को तो मुझे संजीवन देना ही है। हाँ, उनकी 'जमींदारी' को संजीवन नहीं देना है। कारण वह तो रोग है और उसे निकालकर ही रोगी को संजीवन दिया जा सकता है। मेरी इस 'संजीवनी' की

खूबी यह है कि इससे गरीब गरीब नहीं रहता और न धनवान् ही धनी रहता है।

दूसरा आक्षेप यह किया जाता है कि लोगों के दिलों में जमीन की भूख पैदा कर मैं उन्हें बागी बना रहा हूँ। यह आक्षेप भी मुझे मंजूर है। दोनों आक्षेप मुझे उस-उस अर्थ में मंजूर हैं। क्योंकि मैं एक क्रान्ति को रोकना चाहता हूँ और दूसरी लाना चाहता हूँ। हिंसक क्रान्ति को रोकना और अहिंसक क्रान्ति को लाना चाहता हूँ।

बागी का कुछ नहीं बिगड़ता

कुछ प्रश्न कानूनी सुविधा-असुविधा के बारे में उठाये जाते हैं। एक भाई ने शंका उठायी है कि सरकार अगर कानूनी सुविधाएँ न दे तो? मेरा कहना है कि सरकार जरूर हर तरह की सुविधाएँ और मदद देगी। देना उसके हक में है। लेकिन मान लो कि नहीं देती, तो क्या होगा? जिन लोगों ने दान दिया है, उन सबका उपकार मानकर मैं चला जाऊँगा। इसमें बागी का कुछ नहीं बिगड़ता, सरकार को ही सोचना पड़ेगा।

मोदक-प्रिय

आखिर हम लोग यहाँ किस बात के लिए जमा होते हैं? स्पष्ट है कि एक आदर्श समाज-रचना करने की दृष्टि रखकर ही हम इकट्ठा होते हैं। केवल चित्त-शुद्धि की एकांत-साधना करना हमारा उद्देश्य नहीं हो सकता। कृपालानीजी ने यह बात अच्छी तरह समझायी है। उन्होंने विश्लेषण करके यह बात हम लोगों के सामने रखी। किस चीज पर कितना भार देना चाहिए, यह समझने के लिए विश्लेषण (Analysis) का उपयोग होता है। फिर भी विश्लेषण की मर्यादा है। आखिर वस्तु का मूलरूप विश्लेषण से नहीं, संश्लेषण (Synthesis) से मालूम होता है। केवल विश्लेषण से कभी-कभी वस्तु की जान ही चली जाती है। हम तो मोदक-प्रिय हैं। हम न केवल आटा चाहते हैं, न केवल घी चाहते हैं और न केवल शक्कर ही। हमने इस काम को इसीलिए उठाया कि हम समाज में परिवर्तन चाहते हैं, इससे गरीबों को राहत मिलेगी और हम आत्मशुद्धि भी चाहते हैं। अर्थात् इसके जो-जो अवश्यम्भावी अच्छे परिणाम हैं, उन सबको एकत्र सम्मिलित पाने के लिए ही हमने यह मोदक बनाया है।

मैं चाहता हूँ कि सर्वोदय के सिद्धान्त के माननेवाले जो लोग यहाँ आये हैं, वे महसूस कर सकें कि वे जो कुछ करना चाहते हैं, वह इस भूदान-यज्ञ के जरिये सध सकता है।

सेवापुरी (बनारस)
१२-४-'५२

शब्द हमारे शस्त्र हैं : ३२ :

हमारे 'भूदान' में 'दान' शब्द के प्रयोग पर कुछ लोगों का आक्षेप है। जो शब्द-तत्त्व-सारज्ञ होते हैं, वे पुराने शब्दों को छोड़ते नहीं, उनमें नया अर्थ भरते हैं। वे शब्दों की शक्ति खोते नहीं, उसे बढ़ाते हैं; क्योंकि शब्दों की महिमा पहचानते हैं। जिन्होंने शब्दों के अर्थों को बिगाड़ा, उनकी वह अपनी जायदाद नहीं थी। हम यह क्यों मानें कि दान, उपकार, दया, संन्यास, वैराग्य आदि शब्दों के अर्थों को बिगाड़नेवालों का उन पर अधिकार था और हमारा कुछ भी अधिकार नहीं ? अगर इस तरह हम पुराने शब्दों को छोड़ते चले जायँगे, तो एक-एक शस्त्र खोते जायँगे और हमारा शस्त्रागार खाली हो जायगा। जिन पुराने शब्दों को हम छोड़ते हैं, उनकी जगह उतने अच्छे नये शब्द तैयार नहीं कर पाते। 'दान' हमें पसंद नहीं, 'दया' हमें पसंद नहीं, 'उपकार' हमें पसंद नहीं, 'संन्यास' हमें पसंद नहीं और इनकी जगह अपने नये शब्द भी नहीं ! इसलिए हमें पुराने शब्दों की शक्ति कायम रखकर उनमें नया रस डालना चाहिए। पुराने वृक्ष में नयी कलम लगाकर नयी शक्ति पैदा करनी चाहिए। हममें प्राचीन शब्दों में नये-नये अर्थ डालने की शक्ति होनी चाहिए।

पुराने भाष्यकारों के भाष्यों में हमें यह कला दिखाई देती है। उन्होंने पुराने शब्दों की शक्ति बढ़ायी है। भगवान् शंकराचार्य ने दान की ऐसी ही व्याख्या की है। उन्होंने लिखा है : दानम् संविभागः याने दान का अर्थ सम्यक् विभाजन है। शंकराचार्य कोई अर्थशास्त्री नहीं थे, लेकिन तेरह सौ साल पहले उन्होंने 'दान' शब्द की जो व्याख्या की, उसे आज का कोई भी अर्थशास्त्री मान्य करेगा। 'संविभाग' का अर्थ है : विभाजन में विषमता न हो, वितरण में

समानता हो। शंकराचार्य ने 'दान' शब्द की व्याख्या करते हुए परम्परा से उन्हें जो ज्ञान प्राप्त हुआ था, उसीको प्रकट किया है। दान तो हमारे यहाँ नित्य कर्तव्य बतलाया गया है। उसका मतलब है कि धन को अपने पास न रखे, फुटबॉल की तरह वह एक के पास से दूसरे के पास जाता रहे। और इस तरह धन के नित्य प्रवाह से 'संविभाग' होना चाहिए। वास्तव में देखा जाय, तो 'दान' शब्द में नया अर्थ भरने की भी जरूरत नहीं है। लेकिन हमारे पास बुद्धि और शिक्षण की कमी है। हमें अपनी संस्कृति का ज्ञान नहीं है, उसका ठीक से अभ्यास नहीं किया है। इसीलिए हमें 'दान' शब्द में दीनता दिखाई देती है। गीता में यज्ञ, दान, तप, ये तीन कर्म बतलाये हैं। इन तीनों शब्दों को छोड़ दें, तो गीता में कोई अर्थ ही नहीं रह जायगा। हमारा सारा जीवन शुष्क हो जायगा और हम कुछ भी काम न कर सकेंगे।

पुराने शब्दों में नये अर्थ भरने की यह कुशलता हमें गीता ने सिखायी है। हमारे नेताओं ने भी, जो यहाँ के संस्कारों में पले और यहाँ की संस्कृति के प्रेमी थे, सारे शब्द हमारी परम्परा से ही लिये हैं। तिलक महाराज ने सारे शब्द गीता से लिये हैं। गांधीजी ने भी यही किया। अरविन्द को भी गीता से बल मिला। पहले के जमाने में शंकराचार्य, रामानन्द जैसे महान् विचार-प्रवर्तकों ने भी गीता से ही प्रेरणा ली। सन्त ज्ञानेश्वर महान् क्रान्तिकारी और युग-प्रवर्तक पुरुष थे। उनके जैसे अवतारी पुरुष ने भी गीता का आधार लिया। इसलिए हमें भी पुराने शब्दों की शक्ति बढ़ानी चाहिए और यह नहीं समझना चाहिए कि वे शब्द व्यर्थ होते हैं।

हर व्यक्ति किसान बने

लोग मुझसे पूछते हैं कि क्या केवल भूमि-वितरण से सारा काम हो जायगा? मैं कहता हूँ कि भूमि-वितरण से ही काम का आरम्भ होगा। भूमि तो हमारा अधिष्ठान है। वह धरित्री है, हमारे जीवन का आधार है। लेकिन केवल भूमि से काम नहीं चलेगा, उसके साथ ग्रामोद्योग भी चाहिए।

एक सज्जन ने यह प्रश्न उठाया कि अगर सभी लोग खेती करने लग जायँगे, हरएक परिपूर्ण किसान ही बनेगा, तो दूसरे उद्योगों का संकोच होगा।

इस पर मेरा जवाब यही है कि आज जिनके रोजगार चल रहे हैं, उन्हें तो हमें जमीन नहीं देनी है। आज की समाज-व्यवस्था की भाषा में ही कहना हो, तो मैं कहूँगा कि तेली रहेंगे, धोबी रहेंगे; लुहार, बुनकर, चमार, सभी रहेंगे। उन्हें जमीन देने की कोई बात नहीं है। लेकिन जिसे रोजगार नहीं है और जो खेती करना जानता और चाहता है, उसे जमीन दी जायगी। अगर हम विवेक न करें, तो हमारे प्रधानमन्त्री भी जमीन की माँग कर सकते हैं।

किन्तु मेरी अन्तिम अभिलाषा यह है कि हमारी आदर्श समाज-रचना में हरएक मनुष्य किसान होगा। हरएक का कुदरत के साथ सम्पर्क रहेगा। अगर कोई न्यायाधीश है, तो वह दो-चार घण्टे खेती और बाकी के समय में न्यायाधीश का काम करेगा। कुछ आदमियों को सतत एक-ही-एक काम करना पड़े, ऐसी स्थिति नहीं होनी चाहिए। टण्डनजी के समान मैं भी चाहता हूँ कि हर घर के साथ कुछ जमीन हो। उसीमें उस घर के लोगों का मल-मूत्र आदि काम आये। दो-चार घण्टे खेती-काम करने का हरएक का हक और कर्तव्य है। जब सर्वत्र इस तरह के घर बन जायेंगे, तो लोग अपनी ही बाड़ी में अपनी साग-सब्जी पैदा करेंगे और जैसी कि टण्डनजी ने आशा प्रकट की, आज के शहर एक दिन खण्डहर हो जायँगे। उनकी इस आशा के लिए वैदिक संस्कृति का भी आधार है। वेदों में इंद्र के लिए 'पुरन्दर' शब्द आता है। 'पुरन्दर' शब्द का अर्थ है, शहरों का दारण करनेवाला, उन्हें तोड़ डालनेवाला। एक दिन आयेगा, जब यह वैदिक संकल्प और टण्डनजी की इच्छा जरूर पूर्ण होगी। तभी पृथ्वी को शांति मिलेगी।

सेवापुरी (बनारस)
१४-४-'५२

विकेन्द्रीकरण से शासन-मुक्ति की ओर : ३४ :

सर्वोदय-सम्मेलन की चर्चा में यहाँ कई बार कहा गया है कि हमें शान्ति-सेना का कार्य करना चाहिए। मैंने तो शान्ति-सेना के सैनिक के नाते ही सालभर काम किया। तेलंगाना में लोगों से यही कहा कि 'मैं शान्ति-सैनिक के नाते यहाँ आया हूँ।'

शान्ति-सेना के कर्तव्य

शान्ति-सैनिकों को ऐसे काम में लग जाना चाहिए, जिससे अशान्ति का उद्भव ही न हो। उन्हें निरन्तर अशान्ति के बीजों को नष्ट करने के प्रयत्न में लगे रहना चाहिए। जनता के निकट संपर्क में आ जाना चाहिए। इस प्रयत्न में अगर बलिदान का प्रसंग आये, तो वह भी परमेश्वर की कृपा से संपन्न हो सकता है। मैंने अपनी पैदल-यात्रा में यह अनुभव किया कि जनता के साथ संपर्क साधने का यह सबसे अच्छा तरीका है। शान्ति-सेना का कार्य इसी तरीके से चल सकता है।

अन्तिम व्यवस्था के तीन विचार

आज हमारे सामने तीन प्रकार के विचार हैं: पहला विचार यह है कि अन्तिम अवस्था में सरकार क्षीण होकर शासन-मुक्त व्यवस्था हो जायगी। लेकिन वहाँ जाने के लिए आज हाथ में अधिकतम सत्ता होनी चाहिए। ऐसा मानने-वाले आरम्भ में अधिराज्यवादी और अन्त में राज्यविलयवादी कहलाते हैं।

दूसरा विचार यह है कि राज्य-शासन शुरू से था, आज भी है और आगे भी रहेगा। शासनमुक्त समाज हो ही नहीं सकता। इसलिए समाज में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे सबका भला हो। शासन-सत्ता थोड़ी-बहुत सब तरफ बँटे, लेकिन महत्त्व की व्यवस्था केन्द्र में ही रहे। ऐसा विचार रखनेवाले मानते हैं कि शासन हमेशा होना चाहिए और सबका नियमन करने की शक्ति समाज द्वारा नियुक्त सरकार को मिलनी चाहिए।

तीसरा विचार हमारा है। हम भी मानते हैं कि अन्तिम हालत में समाज शासन-मुक्त होगा। यह पक्ष प्रारम्भिक अवस्था में एक हद तक शासन-व्यवस्था की जरूरत महसूस करता है, लेकिन अन्तिम स्थिति में शासन की कोई आवश्यकता नहीं मानता। इस व्यवस्थाशून्य समाज की ओर बढ़ने के लिए वह अधिराज्य की भी आवश्यकता नहीं मानता, बल्कि व्यवस्था और सत्ता के विकेन्द्रीकरण द्वारा उस ओर कदम बढ़ाना चाहता है। अन्तिम स्थिति में कोई शासन नहीं रहेगा, केवल नैतिक नियमन रहेगा। ऐसा आत्म-निर्भर समाज निर्माण करने के लिए सर्वत्र स्वयंपूर्ण क्षेत्र बनने चाहिए। उत्पादन, विभाजन,

रक्षण, शिक्षण जहाँ का वहीं हो। केन्द्र में कम-से-कम सत्ता रहे। इस तरह हम प्रादेशिक स्वयंपूर्णता में से विकेन्द्रीकरण साध लेंगे।

सरकारी दृष्टि से मौलिक अन्तर

सरकार के प्लानिंग कमीशन (योजना-आयोग) और हमारी दृष्टि में यही मूलभूत अन्तर है। आयोग के एक सदस्य से पूछा कि क्या आपके प्लानिंग कमीशन के सामने यह आदर्श है? उन्होंने कहा : 'हमारे मन में यह जरूर है कि हरएक गाँव अपनी मुख्य-मुख्य जरूरतों के बारे में थोड़ा-बहुत स्वावलम्बी बने, कुछ गाँव मिलकर अपना-अपना इन्तजाम भी कर लें; लेकिन अन्त में शासनशून्य स्थिति की कल्पना हमारी नहीं है।' मैंने कहा कि हमारी अहिंसक-योजना में तो यह बात है कि अर्थशास्त्र की भाषा में व्यवस्था की आवश्यकता धीरे-धीरे कम हो और अन्त में बिलकुल ही न रहे। कम्युनिस्ट भी अन्त में शासन-मुक्त समाज चाहते हैं, पर वे आज अपना अधिराज्य चाहते हैं। वे कहते हैं : आज अधिक-से-अधिक सत्ता होगी और अन्त में वह शून्य हो जायगी। दूसरे कहते हैं कि शासन-व्यवस्था आज है और आगे भी रहेगी। बहुत-सी केन्द्रित रहेगी, तो कुछ तकसीम भी की जायगी। हम कहते हैं कि अगर बहुत-सी या सारी-की-सारी शासन-व्यवस्था केन्द्रित रही, तो आगे उसका विलीन होना मुश्किल होगा। इसलिए आज ही से हम उसे विकेन्द्रीकरण की ओर ले जायँ। हमारे सारे नियोजन की यही बुनियाद होगी। आज ही मेरा आग्रह नहीं है कि हरएक गाँव सारी-की-सारी चीजें बनाये। गाँवों के समूह भी स्वयंपूर्ण बनाये जा सकते हैं। सारांश, हम प्रादेशिक आत्म-निर्भरता में से सामाजिक व्यवस्था-शून्यता की ओर कदम बढ़ाने की दृष्टि से ही सारा नियोजन करेंगे।

अधिक-से-अधिक स्वावलम्बन

हमारा ध्येय तो यह हो कि हरएक व्यक्ति अधिक-से-अधिक स्वावलम्बी बने। भगवान् की भी यही योजना है। इसीलिए उसने सबको केवल मन, बुद्धि आदि अन्तःकरण ही नहीं दिये, बल्कि आँख, कान, नाक जैसे अलग-अलग बाह्यकरण भी दिये हैं। उसने किसीको दशकर्ण, किसीको दशाक्ष, किसीको दशहस्त, तो किसीको दशपाद नहीं बनाया। उसने ऐसी योजना नहीं की कि

अगर दशकर्ण को देखने की आवश्यकता पड़े, तो वह दशनेत्र की तरफ दौड़े और दशनेत्र को सुनने की जरूरत हो, तो उसे दशकर्ण के पास जाना पड़े ! भगवान् ने इतना अधिक विकेन्द्रीकरण कर दिया है कि अब उसमें नियमन की जरूरत ही नहीं रही। इसलिए भगवान् खुद भी है या नहीं, इस बारे में कुछ लोग बेशक शंका प्रकट कर सकते हैं। अगर वह ऐसी सुन्दर व्यवस्था न करता, तो उसे आज के मन्त्रियों के इतनी ही दौड़धूप करनी पड़ती। एक जगह शक्कर, दूसरी जगह अनाज और तीसरी जगह तेल, ऐसी व्यवस्था रही, तो हरएक चीज यहाँ से वहाँ भेजने की फिक्र रहेगी। और कभी झगड़ा हो गया, तो किसीको एक चीज मिलेगी, किसीको दूसरी मिलेगी। ऐसी व्यवस्था हमें कभी भी शासनमुक्त समाज की ओर नहीं ले जा सकती।

टोटेलिटेरियनिज्म और डेमोक्रेसी

हम बहुत दफा सुनते ह कि 'हमें डेमोक्रेसी (लोकतन्त्र) के जरिये काम करना पड़ता है, इसलिए हम शीघ्रता से काम नहीं कर सकते; टोटेलिटेरियन (सर्वाधिकार-वादी) होते, तो काम शीघ्र होता।' लेकिन आप इस विचार को अपने दिमाग से निकाल दें। जहाँ दूर-दृष्टि नहीं होती, वहाँ लोग कहते हैं कि 'इंजेक्शन से शीघ्र आरोग्य मिलता है, इसलिए दूसरी औषधियों से वह शीघ्र फलदायी है।' किन्तु अगर जहर का इंजेक्शन दें, तो चार घण्टे के अंदर बीमारी के साथ बीमार का भी अंत हो जायगा। पूछा जा सकता है कि 'यह तो जहर का इंजेक्शन है नहीं। बीमारी शीघ्र चली जाती है और बीमार भी नहीं मरता। फिर हम टोटेलिटेरियनिज्म क्यों न अपनायें ?' सुनने में तो यह बात बहुत ठीक मालूम पड़ती है; लेकिन वास्तव में वह केवल शीघ्र परिणामदायी ही नहीं, शीघ्र कुपरिणामदायी भी है। उस रास्ते से सिर्फ शीघ्र राहत ही नहीं मिलती, बल्कि शीघ्र अनेक रोग भी पैदा होते हैं। इसके बावजूद निसर्गोपचार से थोड़ी देर लगती है, लेकिन हमेशा के लिए रोग से मुक्ति मिलती है। दूसरी दवा से शीघ्र लाभ का आभास होता है, लेकिन डॉक्टर के पंजे से तभी छूटते हैं, जब कि शरीर छूटता है।

'मुख में राम, बगल में छुरी !'

हमारे लिए यह तरीका काम का नहीं है। लोकतन्त्र में भी शीघ्र फल

की सामर्थ्य है, बशर्ते हम उसका ठीक-ठीक अर्थ समझें। अगर हम लोकतन्त्र का ठीक अर्थ समझें, तो हमारा नियोजन आज ही से ऐसा होना चाहिए कि लश्कर की कम-से-कम आवश्यकता रहे, लोग अपनी रक्षा का भार स्वयं उठायें। याने उनमें इतनी निर्भयता और निर्वैरता हो कि लश्कर की जरूरत ही न रह जाय। अगर हम ऐसी योजना बनायेंगे, तभी सच्चा लोकतन्त्र होगा और वह शीघ्र फलदायी भी होगा। आज हम इधर तो लोकतन्त्र की बात करते हैं, उधर अर्थ-व्यवस्था पूँजीवादी और लश्करशाही रखते हैं। जिस चीज का नाम लेते हैं, उसीके खिलाफ काम करते हैं। इसीलिए उसका थोड़ा-सा फल मिलता है और एक समय ऐसा भी आयेगा, जब लोकतन्त्र का कुछ भी फल न निकलेगा। आज थोड़ा-सा फल दीखता है, यह भी आश्चर्य की ही बात है। कहते हैं न, 'मुख में राम और बगल में छुरी', ऐसी ही असंगत हमारी यह नीति है। हम लोकतन्त्र के साथ-साथ केन्द्रित योजना और लश्कर चाहते हैं। मुँह में लोकतन्त्र है और बगल में केन्द्रीकरण तथा लश्कर है। उस मूर्ख को आप क्या कहेंगे, जो सूत कातता जाता है और उसे तोड़ता भी जाता है? हम लोकतन्त्र के साथ-साथ उसके विनाश के तत्त्व भी लेते रहेंगे, तो परिणाम कैसे निकलेगा?

लोकतन्त्र का सच्चा अर्थ समझें!

हम एक विचारक हैं और विचारक के नाते अपना काम करते जाते हैं। अहिंसा हमारी नीति है, जिसका तत्त्व समन्वय है। हमारा विचार किसीके साथ थोड़ा भी मेल खाता हो, तो उसके साथ सहानुभूति और सहकार करने को हम तैयार रहते हैं। हरएक व्यक्ति के विचार में थोड़ा-बहुत भेद अवश्य रहेगा—पिण्डे पिण्डे मतिर्भिन्ना। लेकिन कुल मिलाकर हमारी मूलभूत राय एक है। हमारे मन में यह सन्देह न रहे कि टोटेलिटेरियनिज्म नहीं है, इसलिए हमारा काम शीघ्र नहीं होता। हम लोकतन्त्र का सच्चा अर्थ समझें और पूरे अर्थ के साथ उसका प्रयोग करें, तो हमारा काम शीघ्रतम होगा।

सेवापुरी (बनारस)

१५-४-'५२

सेवापुरी से बनारस

[अप्रैल १९५२ से सितम्बर १९५२]

अभी चार-पाँच साल हुए, हमारे देश को स्वराज्य प्राप्त हुआ है। एक तरह से यह हमारा नया जन्म है। अभी दुनिया के देशों के सामने हम बालक ही हैं, क्योंकि हमें सारे देश की नयी रचना करनी है, देश को विकसित करना है। पहले चार-पाँच सालों में देश के सामने बड़े भारी विघ्न आये थे। उनके निवारण में ही हमारा सारा समय चला गया। अब हम आयोजन करेंगे। इस तरह एक दृष्टि से तो हम बच्चे हैं, क्योंकि हमारे जीवन के विकास का अभी-अभी आरंभ हुआ है।

लेकिन दूसरी दृष्टि से हम कम-से-कम दस हजार साल के पुराने हैं। जब दूसरे देशों के इतिहास का आरंभ भी नहीं हुआ था, तब हमारे पूर्वज गौरव-शिखर पर पहुँच गये थे। इस बात को सभी महसूस करते हैं कि काफी परिवर्तन होने के बावजूद यहाँ की परंपरा अटूट रही, जो प्राचीन काल से हमें जोड़ देती है। स्थल और काल के भेदों के अलावा यहाँ एकता का ही दर्शन होता है। जो दर्शन काशी में होता है, वही रामेश्वर में भी होता है। जो दर्शन दस हजार साल पहले होता था, वही आज बीसवीं शताब्दी में भी हो रहा है। हमारे जीवन का ढाँचा बदला, फिर भी हमारी आंतरिक एकता कायम ही रही। जो विचार-बीज दस हजार साल पहले बोया गया था, उसीका विकसित रूप आज हम देख रहे हैं। यूनान, रोम, मिस्र मिट गये, लेकिन इस देश में अभी भी एक हस्ती मौजूद है। बाहर के देशों से आनेवाले चन्द दिनों में इस बात को पहचान जाते हैं कि यद्यपि यहाँ के लोग और देशों के लोगों के समान खाते-पीते हैं, यहाँ के लोगों के बाहरी जीवन में वे ही चीजें दिखाई देती हैं, जो दूसरे देशों के लोगों के जीवन में हैं; फिर भी यहाँ एक विशेषता है, जो और देशों में नहीं है। इसलिए हम एक ओर से शिशु हैं और दूसरी ओर से अनुभवी, प्राचीन। इस तरह हम 'अनुभवी बच्चे' कहे जा सकते हैं। यह हमारा दोहरा वर्णन है।

हमारा दोहरा कर्तव्य

जिन विषयों में हम अनुभवी हैं, उनमें अपनी विशेषता कायम रखते हुए हमें आगे बढ़ना चाहिए। जिनके बारे में यहाँ प्रयोग हो चुके, अनुभव प्राप्त हो गये, उनसे हमें लाभ उठाना चाहिए। और दूसरे जिन विषयों के बारे में हम नहीं जानते, उन्हें दूसरों से सीखना चाहिए। नयी रोशनी और नया ज्ञान लेने के लिए हमें सदैव तैयार रहना चाहिए। अपनी जायदाद और संस्कारों की रक्षा तथा विकास करते हुए हमें बाहर के विज्ञान के प्रकाश को नम्र होकर लेना है। उसे लेकर अपने जीवन में जो बाह्य परिवर्तन करना है, वह करना चाहिए। यह हमारा दूसरा कर्तव्य है।

हमारा मसला अन्दर से आध्यात्मिक और बाहर से नैतिक है। मिसाल के तौर पर बढ़ती हुई जनसंख्या का मसला हम लें। जापान में यह जनसंख्या हमसे ज्यादा बढ़ी है। दुनिया के और देशों में भी जनसंख्या और जमीन की समस्याएँ मौजूद हैं। अगर जमीन अविकसित रही और उत्पादन कम रहा, वह चन्द लोगों के हाथ में रही और उसे चन्द लोगों की ही काश्त का लाभ हुआ, तो आपत्ति आयेगी। इस दृष्टि से देखा जाय, तो हमारा मसला दूसरों के जैसा ही है। चूँकि हम अनुभवी हैं, इसलिए हमें इस मसले का हल ऐसा ढूँढ़ना चाहिए, जो हमारी सभ्यता के अनुकूल हो।

समाजशास्त्र में हम यूरोप से आगे

हिन्दुस्तान एक विशाल देश है। यहाँ का एक-एक प्रदेश यूरोप के एक-एक देश के बराबर है। यहाँ यूरोप जैसा विशाल भू-विस्तार है। आबादी है और विविधता भी। फिर भी यहाँ जैसी एकता है, वैसी वहाँ नहीं है। फ्रांस और जर्मनी के बीच भगवान् ने कोई दीवार खड़ी नहीं की, लेकिन उन लोगों ने स्वयं कर ली। वे देश छोटे-छोटे हैं, फिर भी अपने को अलग-अलग मानते हैं। लेकिन यहाँ कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक शान्ति से एक आम चुनाव हुआ। यह बात यूरोप में नहीं हो सकती। हमारे यहाँ सामुदायिक रसोई बनती है, तो यूरोप में अभी तक अलग-अलग छोटे चूल्हे हैं। इस बात में हम यूरोप

से आगे हैं। प्राचीन काल से हम इस देश को एक मानते आये हैं। रघुराजा की भौतिक विजय हो या शंकराचार्य की आध्यात्मिक विजय, सबने भारत को एक ही माना है। शंकराचार्य का जन्म मलाबार में हुआ, उन्हें ज्ञान नर्मदा के तट पर प्राप्त हुआ और उन्होंने कैलाश में जाकर समाधि ली। उस जमाने में भी, जब कि यातायात के साधन नहीं थे, हमने भारत को एक देश मान लिया था। लेकिन यूरोप को अभी वह करना है। यूरोप में एकता का सामान मौजूद होते हुए भी वह एक नहीं बन सका। वहाँ पर एक ही धर्म है, एक ही लिपि है। भाषाएँ अनेक होते हुए भी करीब-करीब एक-सी ही हैं। फिर भी यूरोप एक नहीं है। इस उद्देश्य को हासिल करने के लिए न जाने उन्होंने आज तक कितनी लड़ाइयाँ लड़ीं होंगी और अभी उन्हें कितनी लड़ाइयाँ लड़नी पड़ेंगी।

हमें पश्चिम का विज्ञान सीखना है

इसका मतलब यह है कि राजनीतिक और समाज-शास्त्र में वे हमसे पिछड़े हुए हैं। मानस-शास्त्र और नीति-शास्त्र में भी हमारे पास उन्हें सिखाने लायक चीजें हैं। अवश्य ही इन शास्त्रों में उनके पास जो अच्छी-अच्छी चीजें हैं, वे हमें लेनी हैं; फिर भी हमारा समाज-शास्त्र उनसे आगे है। विज्ञान की सहायता से उन्होंने अपने जीवन का बाहरी स्वरूप काफी हद तक बदल दिया है, कई सहूलियतें पैदा की हैं। सामूहिक स्वच्छता और बीमारों की सेवा के अनेक साधन निर्माण किये हैं, जो हमारे पास नहीं हैं। वे सब हमें उनसे लेने हैं। उनके जीवन में जो अच्छाई है, वह हमें उनसे सीखनी है।

हमारी चातुर्वर्ण्य कल्पना

हमें अपना पुराना समाज-शास्त्र और अर्वाचीन विज्ञान को लेकर आगे बढ़ना है। इस दृष्टि से मैंने भूमि-समस्या का हल ढूँढ़ने की कोशिश की है। दुनियाभर में जो चीज नहीं है, वह यहाँ है। वह हमारे समाज की विशेषता है। उसमें बुराइयाँ हैं, फिर भी वह चीज दुनिया के किसी भी देश में नहीं है। वह है, हमारी चातुर्वर्ण्य की कल्पना, जिसका उद्देश्य है, स्पर्धा-रहित समाज-रचना करना।

ब्राह्मण अपरिग्रही थे

वर्ण-व्यवस्था के अनुसार विद्यादान करने वाले वर्ण को 'ब्राह्मण' कहा जाता था। ब्राह्मण अपरिग्रही होता था। जब से ब्राह्मणों ने अपरिग्रह छोड़ा और वे पैसे के पीछे पड़े, तभी से उनका पतन होता गया। किसी भी प्रोफेसर का पाँच सौ या हजार रुपये वेतन माँगना चातुर्वर्ण्य में नहीं बैठता। अपरिग्रही को ही विद्या का अध्ययन और अध्यापन करने का अधिकार है। लेकिन आज के विद्वान् पैसे के पीछे पड़कर समाज के रक्षक होने के बजाय शोषक बन गये हैं। हमारी कल्पना के अनुसार जो जितना विद्वान् हो, उतना ही वह गरीब होना चाहिए। बड़ा भारी विद्वान्, बड़ा भारी त्यागी होना चाहिए। विद्वान् का बोझ समाज पर नहीं पड़ना चाहिए, जैसा कि आजकल हो रहा है। आजकल पोस्ट ग्रेज्युएट क्लास लेनेवाले बड़े भारी विद्वान् प्रोफेसर बड़ी तनख्वाह पाते हैं। उन क्लासों में विद्यार्थी तो बहुत ही कम रहते हैं। इसलिए उनका बोझ समाज पर पड़ता है। जब माता-पिता ही, जो बच्चे के ट्रस्टी हैं, बच्चे के शोषक बन जायँ, तो घर की क्या हालत होगी?

क्षत्रिय, समाज के सेवक

क्षत्रिय-वर्ण के लोग समाज के रक्षक होते हैं। लेकिन उनका भी अपना धर्म है। भगवान् रामचन्द्र ने जब जंगल जाते समय माता कौशल्या से आज्ञा माँगी, तो माता ने कहा था: 'कहीं भी जाओ, सुख से जाओ। आखिर क्षत्रियों को कभी-न-कभी जंगल में जाना ही है। सबको वृद्धावस्था में जाना पड़ता है, लेकिन तुम युवावस्था में जा रहे हो। कहीं भी जाओ, अपने धर्म का पालन करते रहो।' इसका मतलब यह है कि क्षत्रियों को यह सिखाया जाता था कि तुम राज्य-वहन का कर्तव्य करते हो, फिर भी एक दिन तुम्हें वह छोड़ना है। आज हम पाँच साल के लिए अपने राज्य-कर्ता याने 'सेवक' चुनते हैं। क्षत्रियों को यह बताया गया था कि कुछ उम्र के बाद तुम्हें यहाँ से हटकर जंगल में जाना चाहिए। फिर चाहे तो वहाँ तुम कुछ अध्ययन करो, अपने अनुभव के आधार पर कुछ लिखो या जब प्रजा तुमसे सलाह पूछेगी, तब सलाह दो। इस

तरह वे राज्य के 'पालक' और 'सेवक' बन जाते, 'मालिक' नहीं। उनकी सम्पत्ति दूसरे की याने प्रजा की थी। भरत ने कहा था कि यह मेरी सम्पत्ति नहीं है, रघुपति की है : 'सम्पति सब रघुपति कै आही'।

आज के राज्य-कर्ताओं से भी यह कहना चाहिए कि यह सम्पत्ति प्रजा की है। तुम्हें तब तक सिर्फ सँभालनी है, जब तक कि तुम वन नहीं जाते। हरएक को किसी-न-किसी दिन वन जाना ही है। बचपन में राजाओं के बेटे सबके साथ गुरु के आश्रम में शिक्षा पाते थे। किसान के बच्चे के साथ राजा का बच्चा पाला-पोसा जाता था। उन सबको गुरु की सेवा करनी पड़ती थी। सादगी से जीवन बिताना पड़ता था। कृष्ण और सुदामा का उदाहरण तो हम सब जानते ही हैं। इसका मतलब यह है कि बचपन में क्षत्रियों को आम लोगों के साथ उनके जैसा रहना पड़ता था और फिर कुछ दिन तक राज्य करके वन जाना पड़ता था। इस तरह हमारी योजना ऐसी थी, जिसमें क्षत्रिय केवल 'सेवक' होते थे।

वर्ण-व्यवस्था के दो तत्त्व

सभी धन्धेवाले वैश्य-वर्ग के अन्तर्गत थे। सभी धंधों में समान मजदूरी मिलनी चाहिए, यह आदर्श था। एक दिन मेरे पास एक शख्स आये, जो वर्ण-व्यवस्था में विश्वास करते थे, पर जिनके बदन पर मिल के कपड़े थे। मैंने उनसे कहा : 'अगर आप वर्ण-व्यवस्था में विश्वास करते हैं, तो मिल के कपड़े कैसे पहनते हैं ? वर्ण-व्यवस्था तो यह कहती है कि बुनकर को बुनाई करनी चाहिए, कुम्हार को मिट्टी के बर्तन बनाने चाहिए, चमार को जूते बनाने चाहिए; क्योंकि यही उनका धर्म है। तो वैश्य की भी यह जिम्मेदारी है कि वह बुनकर का बुना कपड़ा खरीदे, कुम्हार के मिट्टी के बर्तन ही ले और चमार के बनाये हुए ही जूते पहने। अगर वह उनकी बनायी चीजें न खरीदकर उन पर वे चीजें बनाने की जिम्मेवारी डालता है, तो वह अपने धर्म का पालन नहीं करता। वर्ण-धर्म मानता है कि गाँव के हरएक की पैदा की हुई चीज खरीदना हम सबका धर्म है। हम गाँव के चमार के जूते न लेकर बाटा के बूट खरीदते हैं, तो हम वर्ण-धर्म का पालन नहीं करते।

वर्ण-धर्म का दूसरा तत्त्व यह है कि सबको समान मजदूरी मिले, भले ही वह बढ़ई हो, चमार हो या बुनकर हो। नहीं तो हर कोई जिस धन्धे में ज्यादा मजदूरी मिलेगी, वही काम करेगा और अपना काम छोड़ देगा। अगर सबको पूरी रोजी मिले और दूसरे को एक से ज्यादा न मिले, तो हर कोई अपना-अपना धंधा करेगा।

आज का उल्टा मामला

किसान प्रमुख उत्पादक है। बाकी सभी उसके मददगार हैं। पहले सभी धन्धे करनेवाले किसान जैसी ही जिंदगी बिताते थे। फसल अच्छी होने पर किसान के साथ सभी सुखी होते और अकाल में उसके साथ सभी दुःखी होते थे। लेकिन आज तो सभीमें स्पर्धा चल पड़ी है, मजदूरी भी कम-ज्यादा हो गयी है। आज प्रोफेसर, मंत्री और व्यापारी को ज्यादा वेतन मिलता है। सबसे कम किसान को मिलता है। बुनियादी चीज यह है कि अनाज महँगा हो गया, तो जीवन भी महँगा हो जाता है। लेकिन आज अनाज से ज्यादा तंबाकू या ऐसी ही दूसरी वस्तुओं की कीमत है। जिनके पास पैसा है, ऐसे लोग अक्सर मूर्ख और व्यसनी होते हैं। इसीलिए वे तंबाकू को अनाज से ज्यादा पैसे देते हैं। यही कारण है कि किसान को अनाज पैदा करने की अपेक्षा तंबाकू पैदा करना अधिक लाभदायक होता है। आज यह सब उल्टा हो गया है।

आज सबसे बुनियादी धंधा करनेवाले शख्स को कम दाम मिलता है और गैर बुनियादी काम करनेवालों को ज्यादा तनख्वाह मिलती है। एक साल सब कॉलेज बंद हो जायँ, तो देश का कुछ नुकसान नहीं होगा। लेकिन एक साल खेती बंद होगी, तो देश जी नहीं सकता। दोनों बातों को दो पलड़ों में डालकर तौलें, तो मालूम होता है कि खेती का महत्त्व कहीं अधिक है। लड़ाई के दिनों में तो कॉलेज बंद ही हो जाते और सबको आवश्यक काम करने पड़ते हैं। लेकिन उन दिनों भी कभी खेती बंद नहीं रहती है। उसके बगैर लड़ाई भी तो नहीं हो सकती। ऐसे बुनियादी काम करनेवाले को आज हम सबसे कम वेतन देते हैं।

वर्ण-व्यवस्था याने समान वेतन

हरएक को चाहिए कि वह अपना-अपना धंधा करे और जब तक समाज ना न कहे, तब तक उसे न छोड़े। यह तभी हो सकता है, जब सबको समान वेतन मिलेगा। अगर समान वेतन न मिले, तो लोग अपने-अपने धंधे छोड़ देंगे। इसलिए वर्ण-व्यवस्था में समान वेतन है ही। न हो तो वह वर्ण-व्यवस्था ही नहीं। वर्गहीन समाज का मतलब सबका समान वेतन है। यह तभी हो सकता है, जब बेटा बाप का धंधा न छोड़े। वर्ण की कल्पना वर्ग की विरोधी है।

हरएक को मोक्ष का समान अधिकार

लेकिन हमारी इस वर्ण-व्यवस्था में ऊँच-नीच का दोष आया और उससे उसका पतन हुआ। ब्राह्मण अपने को ऊँचा समझने लगा। ऊँच नीच की भावना से वर्ण-व्यवस्था दूषित हो गयी। लेकिन अगर उस भावना को मिटाकर कोई अपना-अपना कर्म अनासक्ति से करता है और सब कुछ भगवान् को अर्पण करता है, तो वह मोक्ष पाता है। निष्काम कर्म करनेवाला वैश्य या शूद्र सकाम कर्म करनेवाले ब्राह्मण से मोक्ष का अधिक अधिकारी बनता है। गीता कहती है कि हर कोई अपना-अपना कर्म ठीक तरह से करके मोक्ष का अधिकारी बन सकता है। पहले हरएक काम की नैतिक या आध्यात्मिक योग्यता समान थी, लेकिन अब उसमें स्पर्धा शुरू हो गयी है।

सब खेती में हिस्सा लें

वर्ण-व्यवस्था का जब यह असली सार था, तब खेती को प्रमुख स्थान दिया गया था। वेदों में कहा है कि सबको खेती करनी ही चाहिए। उससे ढेर पैसा नहीं मिलता; लेकिन जो वित्त पैदा होता है, वह बहुमूल्य माना जाता है : **कृषिमित् कृषस्व, वित्ते रमस्व बहुमन्यमानाः।** क्योंकि यह नया उत्पादन है। एक जमाने में माना जाता था कि चारों वर्ण अपना-अपना काम करते हुए खेती में थोड़ा-सा हिस्सा लें। सबको खेती की थोड़ी-सी सेवा करनी पड़ती थी। पृथ्वी को माता माना गया था और हम सब उसके सेवक हैं।

हमारा आदर्श यह होगा कि अब न्यायाधीश भी चार घण्टे खेती का काम करेगा और चार घण्टे न्यायदान करेगा। वकील चार घण्टे वकालत करेगा

और चार घण्टे खेती भी करेगा। इस तरह समाज के हरएक सदस्य को खेती करनी होगी। इससे हरएक को आरोग्य मिलेगा। खेती के सम्पर्क से, परमेश्वर के संपर्क से सबको समान लाभ होगा। एक जमाना ऐसा था, जब ब्राह्मण भी कृषि करते थे, गाय पालते थे। पुराणों में कहा है कि सत्यकाम को बताया गया था कि उसकी चार सौ गौएँ एक हजार बनने तक उसे खेती करनी है। ब्राह्मण तालीम और ज्ञान का साधन समझकर खेती करते थे।

सबको अपना-अपना काम करते हुए मोक्ष का समान अधिकार, सबको समान वेतन, ऊँच-नीचता की भावना का अभाव ही वर्ण-व्यवस्था का सार है।

काम और दाम में चोरी

लेकिन जब से यह व्यवस्था टूट गयी, तभी से खेती में सबसे कम पैसा मिलने लगा। धीरे-धीरे खेती श्रीमानों के हाथ में चली गयी। आज यहाँ चालीस प्रतिशत मजदूर खेती पर काम करते हैं, फिर भी वे जमीन के मालिक नहीं हैं। लोग अक्सर शिकायत करते हैं कि मजदूर काम टालता है, अप्रामाणिकता से काम करता है। मजदूरों का प्रतिनिधि होते हुए भी मैं इस बात को कबूल करता हूँ कि वह अप्रामाणिकता से काम करता है। लेकिन इसका कारण यही है कि उसे पूरा खाना नहीं मिलता। जिस जमीन पर वह काम करता है, उस जमीन का वह मालिक न होने के कारण उसे सिर्फ आज्ञा-पालन करना पड़ता है और वह अपनी अक्ल का उपयोग नहीं कर सकता। उसे कम-से-कम दाम मिलता है। मालिक और भी कम देते हैं, क्योंकि स्पर्धा बढ़ गयी है। मालिक दाम में और मजदूर काम में चोरी करता है। हमने आज मजदूर को बैल के समान बनाया है। जिस तरह बैल गन्ने के खेत में काम करता है, फिर भी उसे गन्ना खाने को नहीं मिलता, उसी तरह मजदूर को खुद पैदा की हुई फसल खाने का हक नहीं है। इस तरह मालिक और मजदूर, दोनों एक-दूसरे को ठगने की कोशिश करते हैं और दोनों मिलकर देश को ठगते हैं।

यदि यह सब बदलना है, तो जो जमीन गरीबों से श्रीमानों के पास आयी है, उसे बेजमीन मजदूरों के पास पहुँचाना चाहिए। आज मजदूरों की संख्या बढ़ गयी है, लेकिन हमारी संस्कृति के अनुसार मजदूर सबसे कम होना

चाहिए। वैश्य वर्ण सबसे अधिक होना चाहिए याने समाज में उद्योग करने-वालों की संख्या अधिक होनी चाहिए।

भारत का करुणा का मार्ग

यह काम कत्ल या कानून से किया जा सकता है; लेकिन दोनों मार्ग हमारी सभ्यता के खिलाफ हैं। मेरा तो करुणा का रास्ता है। अक्सर यह आक्षेप किया जाता है कि दान दिलाकर मैं लेनेवालों को दीन बना रहा हूँ। लेकिन दान से लेनेवाला दीन नहीं होता। शंकराचार्य ने कहा है कि **दानम् संविभागः**—दान का मतलब है सम्यक् विभाजन। दान करना हरएक का कर्तव्य और धर्म है। दान न करनेवाला धर्म-विहीन हो जाता है। मजदूरी करके खाना किसान का धर्म है। मैं यह नहीं कहना चाहता कि श्रीमानों को गरीबों को खिलाना चाहिए, क्योंकि उससे गरीब दीन बनते हैं। मैं तो कहता हूँ कि जमीन देना श्रीमानों का कर्तव्य है, क्योंकि सूर्य का प्रकाश और पानी की तरह जमीन भी भगवान् की देन है। मेरे मार्ग से न गरीब दीन बनते और न श्रीमान् ही अहंकारी बनते हैं।

मैं श्रीमानों से कहता हूँ कि जमीन परमेश्वर की पैदा की हुई चीज है। उस पर सबका समान हक है। अच्छे या बुरे तरीके से वह आपके पास आयी है, फिर भी वह परमेश्वर की ही है। इसलिए दान करना आपका धर्म है। यह मैं आर्य-सभ्यता के अनुसार कह रहा हूँ। जमीन का मसला हमारे ढंग से याने करुणा से हल करना चाहता हूँ। हरएक बेजमीनवाले को जमीन मिलनी चाहिए। समाज में शूद्र वर्ण कम-से-कम रहे और वैश्य वर्ण बढ़ना चाहिए। इसलिए मजदूर को जमीन का मालिक बनाना चाहिए। इसीसे हम अपनी प्राचीन सभ्यता को टिका सकते हैं। हमारी जमीन में जो कमियाँ हैं, वह हमें विज्ञान की सहायता से दूर करनी हैं। जमीन के अंदर छिपी गुप्त सरस्वती को बाहर लाना, अच्छी खाद और बीज देना, यह सब हम विज्ञान की मदद से ही कर सकते हैं। इसमें हमें पाश्चात्यों के शास्त्र को अपनाना है।

सभी इस काम में जुट जायँ !

मैं मानता हूँ कि मेरा काम बुनियादी है। मेरा काम आज के लिए सामयिक, दौलत बढ़ानेवाला और क्रांति के लिए उपयुक्त है। वह हमारी सभ्यता की रक्षा करनेवाला और संस्कृति को बढ़ानेवाला है। इसलिए यह सब दलों का काम है। इस तरह इसने सब दलों के लिए एक प्लेटफार्म तैयार कर दिया है। समाजवादी कहते हैं कि विनोबा जमीन के मसले को हल करने का काम कर रहा है, याने हमारा ही काम कर रहा है। मैं कहता हूँ, सच है। इसलिए आप मेरे काम में जुट जाइये। जनसंघवाले कहते हैं कि विनोबा हमारी सभ्यता के अनुसार काम कर रहा है। मैं कहता हूँ कि सच है, इसलिए आप भी मेरे काम में जुट जाइये। कांग्रेसवाले कहते हैं कि विनोबा हमारा ही काम कर रहा है। मैं कहता हूँ कि सच है, इसलिए मेरे काम में जुट जाइये। सर्वोदयवाले कहते हैं कि विनोबा गांधी-तत्त्वज्ञान के अनुसार काम करते हैं। मैं कहता हूँ कि सच है, इसलिए आप भी इस काम में जुट जाइये।

इस काम में बहुत सारे जुट जाते हैं, तो हम कंधे से कंधा लगाकर यह काम कर सकते हैं। इससे हमारे दूसरे मसले भी हल हो जायँगे। हम देश में एकता कायम करेंगे। प्राचीन काल से हमारी यही कमजोरी रही है कि हममें एकता का अभाव है। इसका लाभ बाहर के लोगों ने उठाया है। इसलिए अब यहाँ अनेक दल होते हुए भी हमें एकता बनाये रखना है। अब चुनाव हो गये, एक खेल खतम हो चुका। इस खेल में जो हारनेवाले थे, हार गये और जो जीतनेवाले थे, वे जीत गये। अब हमें उसे भूल जाना है और उसका भला-बुरा न मानकर असली काम में एक होकर जुट जाना है।

जौनपुर
२३-४-'५२

देशवासियों से सहयोग की अपील : ३६ :

पिछले वर्ष गर्मी के दिनों में मैं तेलंगाना में घूमता था। वहाँ जो विकट समस्या खड़ी थी, उसके बारे में मेरा चिन्तन रोज चलता था। एक दिन हरिजनों की माँग पर मैंने ग्रामवालों से भूमि-दान की बात कही। गाँववालों ने वह बात मान ली और मुझे पहला भूमि-दान मिला। अठारह अप्रैल का वह दिन था। उसके बाद भूमिदान-यज्ञ की कल्पना मुझे सूझी और उसे तेलंगाना के दौरे में मैंने आजमाया। परिणाम अच्छा रहा। दो महीनों में बारह हजार एकड़ जमीन मिली। मेरा खयाल है कि उससे वहाँ की परिस्थिति सुलझाने में बहुत मदद मिली। सारे देश पर उसका असर पड़ा। आज हम देखते हैं कि तेलंगाना का वातावरण काफी शांत है।

गांधीजी के जाने के बाद अहिंसा के प्रवेश के लिए मैं रास्ता ढूँढ़ता रहा। मेवात के मुसलमानों को बसाने का सवाल इसी खयाल से मैंने हाथ में लिया था। उसमें कुछ अनुभव मिला और उसी आधार पर मैंने तेलंगाना में जाने का साहस किया। वहाँ भूदान-यज्ञ के रूप में मुझे अहिंसा का साक्षात्कार हुआ।

गंगा-प्रवाह

तेलंगाना में जो भूदान मिला, उसके पीछे वहाँ की पृष्ठ-भूमि थी। उस पृष्ठ-भूमि के अभाव में शायद हिंदुस्तान के दूसरे हिस्सों में यह कल्पना चले या न चले, इस बारे में शंका हो सकती थी। उसके निरसन के लिए दूसरे प्रदेशों में भूदान-यज्ञ आजमाना जरूरी था। योजना-आयोग के सामने अपने विचार रखने के लिए पण्डित नेहरूजी ने मुझे निमंत्रण दिया। उस निमित्त से मैं पैदल-यात्रा के लिए निकल पड़ा और दिल्ली तक दो महीनों में करीब अठारह हजार एकड़ जमीन मुझे मिली। देखा कि अहिंसा को प्रवेश देने के लिए जनता उत्सुक है।

पच्चीस लाख का संकल्प

उत्तर प्रदेशवाले सर्वोदय-प्रेमी कार्यकर्ताओं की माँग पर मैंने भूमिदान-यज्ञ का उत्तर प्रदेश के व्यापक क्षेत्र में प्रयोग आरम्भ किया। इस प्रदेश में एक

लाख से ज्यादा देहात हैं। हर गाँव में कम-से-कम एक सर्वोदय-परिवार बसाया जाय और एक परिवार को कम-बेशी पाँच एकड़ जमीन दी जाय, इस हिसाब से पाँच लाख एकड़ जमीन प्राप्त करने का संकल्प किया गया। बावजूद इसके कि बीच में तीन महीने बहुत सारे कार्यकर्ता चुनाव में व्यस्त थे, लोगों का सहयोग अच्छा रहा। एक लाख एकड़ तक हम पहुँच गये। मैं तो इसमें ईश्वरीय संकेत देखता हूँ। मेरे बहुत सारे साथियों को भी ऐसा ही लगा। नतीजा यह हुआ कि सेवापुरी के सर्वोदय-सम्मेलन में सबने मिलकर सारे हिन्दुस्तान में अगले दो साल के अन्दर कम-से-कम पच्चीस लाख एकड़ जमीन प्राप्त करने का संकल्प किया। यह बात अब आप लोगों को मालूम हो गयी है।

पच्चीस लाख एकड़ से हिन्दुस्तान के भूमिहीनों का मसला हल हो जाता है, ऐसी बात नहीं। उसके लिए तो कम-से-कम पाँच करोड़ एकड़ जमीन चाहिए। लेकिन प्रथम किश्त के तौर पर अगर हम पच्चीस लाख एकड़ कर लेते हैं, और हिंदुस्तान के पाँच लाख गाँवों में अहिंसा का संदेश पहुँचा देते हैं, तो भूमि के न्यायोचित वितरण के लिए जरूरी हवा तैयार हो जायगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

दाताओं में शबरी, सुदामा और सर्वदलीय लोग

मैं जमीन बड़े काश्तकारों और जमींदारों से तो माँगता ही हूँ, लेकिन छोटे-छोटे काश्तकारों से भी इसमें हाथ बँटाने की प्रार्थना की है। मुझे यह बताने में खुशी होती है कि बड़े दिलवाले इन छोटे लोगों ने बहुत प्रेम से मेरी प्रार्थना मान्य की है। इस यज्ञ में कई शबरियों ने अपने बेर दिये हैं और कई सुदामाओं ने अपने तंदुल समर्पित किये हैं। यह मेरे लिए एक चिरस्मरणीय भक्त-गाथा हुई है। इसमें दरिद्रों को आत्मोद्धार की प्रेरणा मिली है और श्रीमानों को आत्म-शुद्धि और स्वामित्व-निरसन की।

मुझे भूमि सब तरह के लोगों ने दी है। हिंदुओं ने दी, मुसलमानों ने दी, और सारे धर्मवालों ने दी। जो सब तरह से 'सब हारा' गिने जायँगे, उन हरिजनों ने भी दी। जिनका भूमि पर अधिकार नहीं माना जाता, ऐसी स्त्रियों ने भी दी। देनेवालों में सब तबकों और सब दलों के लोग शामिल हैं। दरिद्रनारायण

को अपने कुटुम्ब का एक अंश समझकर हक के तौर पर दिया जाय, ऐसी मैंने माँग की। और उसी भावना से लोगों ने मुझे जमीन दी।

हमारे तीन सूत्र

हम विनय से, प्रेम से और वस्तुस्थिति समझाकर माँगते हैं। हमारे तीन सूत्र हैं : (१) हमारा विचार समझने पर अगर कोई नहीं देता, तो उससे हम दुःखी नहीं होते; क्योंकि हम मानते हैं कि जो आज नहीं देता, वह कल देगा, विचार-बीज उगे बगैर नहीं रहता। (२) हमारा विचार समझकर अगर कोई देता है, तो उससे हमें आनंद होता है; क्योंकि उससे सब ओर सद्भावना पैदा होती है। और (३) हमारा विचार समझे बगैर, किसी दबाव के कारण अगर कोई देगा, तो उससे हमें दुःख होगा। हमें किसी तरह जमीन बटोरना नहीं है, बल्कि साम्ययोग और सर्वोदय की वृत्ति निर्माण करनी है।

तिहरा दावा

मैं मानता हूँ कि यह एक ऐसा कार्यक्रम हमें मिला है, जिसमें सब दलों के लोगों को समान पृष्ठ-भूमि पर काम करने का मौका मिलता है। लोग कांग्रेस की शुद्धि की बात करते हैं। शुद्धि की तो सभी संस्थाओं को जरूरत है। लेकिन कांग्रेस का नाम इसलिए लिया जाता है कि वह बड़ी संस्था है। मेरा विश्वास है कि कांग्रेस और दूसरी संस्थाएँ अगर इस कार्यक्रम को अपनायेंगी और सत्य-अहिंसा के तरीके से इसे चलायेंगी, तो उससे सबकी शुद्धि हो जायगी, सबका बल बढ़ेगा और सबमें एकता आयेगी। भारतवासी बन्धुजनों से मेरी प्रार्थना है कि वे इस 'प्रजासूय'-यज्ञ में अपना हविर्भाग दें और इस काम को सफल कर आर्थिक क्षेत्र में अहिंसा की प्रतिष्ठापना करें। मेरा इस काम के लिए तिहरा दावा है : एक तो यह कि, यह भारतीय सभ्यता के अनुकूल है। दूसरा, इसमें आर्थिक और सामाजिक क्रांति के बीज हैं। और तीसरा यह कि, इससे दुनिया में शांति-स्थापना में मदद मिल सकती है।

सहयोग की याचना

मैं जानता हूँ कि सारे हिन्दुस्तान के सामने कोई कार्यक्रम रखने का मेरा अधिकार नहीं। लोगों को आदेश देनेवाला मैं कोई नेता नहीं हूँ। मैं तो

ग्रामीणों की सेवा को ही अपनी परमार्थ-साधना समझनेवाला एक भक्तिमार्गी मनुष्य हूँ। आज अगर गांधीजी होते, तो मैं इस तरह लोगों के सामने उपस्थित ही न होता; बल्कि वही देहात का भंगी-काम और वही कांचन-मुक्त खेती का प्रयोग करता हुआ आपको दीखता। लेकिन परिस्थितिवश मुझे बाहर आना पड़ा, और एक महान् यज्ञ का पुरोहित बनने की धृष्टता करनी पड़ी है। यह धृष्टता या नम्रता जो भी हो, परमेश्वर को समर्पित कर मैं सब भाई-बहनों से सहयोग की याचना कर रहा हूँ।

अकबरपुर (जौनपुर)
२८-४-'५२

भूदान मजदूर-आन्दोलन है : ३७ :

हजारों बरसों से यह मानव-समूह इस पृथ्वी पर जिन्दगी बसर करता आ रहा है—खाना, पीना, सोना तथा और भी ऐसी कुछ बुनियादी चीजें, जो दूसरे जानवरों में हैं, मनुष्य में भी पायी जाती हैं और पुराने जमाने से लेकर आज तक और हरएक देश में चलती आयी हैं। लेकिन बाकी के मानव-जीवन का और खासकर सामूहिक जीवन का ढाँचा बदलता रहा है। दस हजार साल पहले का मानव यदि आज इस दुनिया में आये, तो उसे दुनिया बहुत बदली हुई नजर आयेगी। आज की बहुत-सी बातें, आज की भाषाएँ, आज के सामाजिक जीवन के तरीके और हमारी आज की बहुत-सी समस्याएँ वह समझ भी नहीं सकेगा। उसे यह दुनिया अजीब-सी लगेगी। उसके जमाने में दूसरे मसले थे, विचार और शब्द भी अलग थे। आज वे मसले नहीं रहे, इसलिए वे विचार और वे शब्द आज नहीं चलते। आज नये मसले पैदा हुए हैं, उनके लिए नये विचार और नये शब्द चाहिए।

मानव को प्रेरणा उसके मन से मिलती है। लेकिन मन केवल व्यक्तिगत याने निजी नहीं होता, बल्कि सारे समाज का भी एक सामूहिक मन होता है। वह सामूहिक मन दिन-ब-दिन बदलता रहता है। हरएक देश में यह बदल

हुआ है। उस-उस जमाने में उस-उस समाज का मन एक तरह से काम करता था। आज के जैसे आवागमन के साधन उस समय मौजूद नहीं थे। एक देश से दूसरे देश में खबरें पहुँचने में काफी साल लगते थे। आज तो हमारे पास बड़े-बड़े साधन मौजूद हैं, खबरें फौरन पहुँच जाती हैं। और दुनिया के समाचार एक जगह बैठकर हम नित्य जान सकते हैं। पुराने जमाने में ये सब साधन नहीं थे, फिर भी सारी पृथ्वी पर जहाँ-जहाँ मानव फैला हुआ था, करीब-करीब एक ही तरीके से मानव का मन काम करता रहा।

एक साथ धर्म-संस्थापना की प्रेरणा

हम ढाई हजार साल पहले का जमाना लें, तो हमें मालूम होगा कि उस समय भारत में वैदिक, बौद्ध और जैन-धर्म की विचार-धारा चलती थी। समाज में खाने-पीने जैसी मामूली बातें तो चलती ही थीं, परंतु एक प्रेरणा ऐसी काम कर रही थी, जिसका मूल रूप भगवान् बुद्ध और महावीर बने। उन्होंने धर्म-संस्थापना की। उसी समय चीन में भी लाओत्से, कन्फ्यूशियस आदि 'ताओ' के बारे में विचार करते थे, जिससे वहाँ भी धर्म-संस्थापना हुई। याने वहाँ के लोगों को उस समय वैसी ही भूख लगी थी, यद्यपि चीन और हिंदुस्तान एक-दूसरे के बारे में बहुत कम जानते थे। उसी जमाने में ईरान और फिलस्तीन में हमें उसी प्रकार की प्रेरणा का दर्शन मिलता है। ईरान में जरथुस्त को और मिश्र में मूसा और फिलस्तीन में ईसा को हम देखते हैं, जिन्होंने पारसी, यहूदी, ईसाई आदि धर्मों की स्थापना की। याने उन दो सौ, तीन सौ, पाँच सौ साल के अन्दर दुनिया के सभी देशों में धर्म-संस्थापना का कार्य होता दिखाई देता है।

आखिर सभी मानवों को धर्म-संस्थापना की वह एक ही प्रेरणा कैसे मिली? इसका जवाब यही हो सकता है कि व्यक्ति के मन की तरह समाज के मन को भी परमेश्वर से प्रेरणा मिलती है। जब मूसा काम कर रहे होंगे, तब उन्हें मालूम भी नहीं होगा कि दूसरी तरफ लाओत्से काम कर रहे हैं। उस समय एक तरफ की खबर दूसरी तरफ जाने

में सैकड़ों बरस लगते थे। फिर भी एक अव्यक्त हवा-सी फैल जाती थी, जिसका कारण एक सर्वान्तर्यामी, सर्वप्रेरक परमेश्वर ही हो सकता है। यदि हमें 'परमेश्वर' शब्द पसंद नहीं, तो हम कह सकते हैं कि सब दुनिया को 'विवेक-शक्ति' (कान्शस) सबको समान प्रेरणा देती है। चाहे हम परमेश्वर कहें या विवेक-शक्ति कहें, शब्द दो हैं, पर अर्थ एक ही है। परमेश्वर शब्द से हम अधिक गहराई में जाते हैं और विवेक-शक्ति कहने से उतनी गहराई में नहीं जा पाते। इसमें और दूसरा कोई अर्थभेद नहीं है।

एक साथ ध्यान-चिंतन की प्रेरणा

आगे चलकर हम आठ सौ या हजार साल पहले का जमाना लें। उस समय धर्म-संस्थापना की नहीं, बल्कि उपासना की, ध्यान की, चिंतन की याने मन की शक्तियों को एकाग्र करने और उनका विकास करने की प्रेरणा मिलती थी। उन्हें 'मिस्टिसिज्म' (Mysticism) या भक्ति का युग कहा जा सकता है। उस समय कई संत पुरुष (मिस्टिक) पैदा हुए। सिर्फ भारत में ही नहीं, बल्कि दुनिया के बहुत सारे देशों में—जैसे मिस्र और इटली में भी—पैदा हुए। हर जगह उसी तरह का ध्यान, वही चिंतन और वैसा ही तसव्वुर दिखाई देता है। याने मन के अंदर जो शक्तियाँ थीं, उनका आह्वान करके जिन्दगी को शक्तिशाली बनाना और उसका उपयोग दुनिया की भलाई के लिए करना उनका उद्देश्य था। यह आध्यात्मिक संशोधन-कार्य चल रहा था। तुलसीदास और सूरदास को तो उत्तर प्रदेशवाले अच्छी तरह जानते हैं। उन्होंने पर्यटन करके अपने विचार फैलाये। आज हम उनकी महिमा गाते हैं। वैसे ही संत दक्षिण भारत में भी और यूरोप में भी पैदा हुए, लेकिन हम उन्हें जानते नहीं। यूरोप में कई संन्यासी और संन्यासिनियों ने ध्यान तथा उपवासादि से शरीर को क्लेश देकर साधना की, फिर चाहे उन्होंने मेरी का ध्यान किया हो या रोशनी का या अग्नि का।

उस जमाने में सभी को मानस-शास्त्र में संशोधन करने की प्रेरणा मिली थी। जैसे ढाई हजार साल पहले समाज की धारणा के मूल तत्त्व खोजने की इच्छा सबको हुई थी। सबको समान प्रेरणा होना, एक ही इच्छा से सबके मन

जाग्रत होना अजीब घटना है। इधर के संतों को उधर के संतों की कोई खबर नहीं मिलती थी। फिर भी एक समान प्रेरणा ने सबको उठाया—सबको जगाया, सबको हिला दिया।

स्वतन्त्रता, समता और न्याय की भूख

ऐसा ही दृश्य दुनिया में लगभग सौ-डेढ़ सौ साल पहले हमने देखा। अब यातायात की सहूलियतें पैदा हो चुकी थीं। सब तरह की खबरें एक-दूसरे को बहुत कम समय में मिलने लगीं। दुनिया में समता, न्याय और स्वतंत्रता की बात बोली जाने लगी। हम देखते हैं कि जीवन में समता लानी चाहिए, हरएक को स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए, यह उद्देश्य आज सबको प्रेरित कर रहा है। लेकिन यातायात के ये सब साधन होते हुए भी एक देश के आन्दोलन से ही दूसरे को प्रेरणा मिली है, ऐसा हम नहीं कह सकते। सबको अलग-अलग रूप से समान प्रेरणा मिली। उस समय समाज के बुनियादी तत्त्वों का संशोधन हो चुका था। बीच के काल में मन की शक्तियों का उन तत्त्वों को अमल में लाने के लिए कैसे उपयोग किया जा सकता है, इसका भी संशोधन हो गया। अब ऐसा समय आया, जब अपनी इच्छा से जो धर्म-संस्थापना हो चुकी और उसके अमल के लिए मन की शक्तियों का जो संशोधन हुआ, उसके आधार पर हम वे मूलभूत सिद्धान्त समाज-रचना के लिए काम में लायें, जिनसे आत्मा में मौजूदा शक्ति का साक्षात्कार होने की इच्छा हुई। सबमें एक ही आत्मा समान रूप से है, इस आध्यात्मिक तत्त्व को तो हमने प्राचीनकाल से मान ही लिया था, लेकिन अब उस तत्त्व को जीवन में लाने की बात थी। उसे मानते हुए भी हमारे जीवन में आज तक सब प्रकार के भेद हैं, दर्जे हैं, छुआछूत आदि बातें भी हैं।

सबके अन्दर एक समान ज्योति है, इसकी खोज तो सारी दुनिया कर चुकी थी और उसके लिए मानसिक वृत्तियों का संशोधन भी हो चुका था। लेकिन अब ऐसा समय आया था कि जीवन में वह समता प्रत्यक्ष रूप में लाने की बात थी। हर जगह यही एक-सी भूख लगी थी। स्वतंत्रता, समता और न्याय की बातें दुनिया के हरएक देश में फैली हुई थीं। यदि हम ठीक ढंग से, बारीकी

से और तटस्थ होकर देखें, तो हमें मालूम पड़ेगा कि हरएक देश में यह विचार स्वतंत्र रूप से फैला। जिस तरह सवेरे-सवेरे अयोध्या का मुर्गा बाँग लगाता है और नागपुर का मुर्गा भी उसी तरह बाँग लगाता है, सूर्योदय के कारण दुनिया के सभी मुर्गों को समान प्रेरणा मिलती है। इसी तरह इस जमाने में भी ऐसी समान प्रेरणा सबको मिली। हाँ, आज एक बात हुई है, काल की गति बढ़ गयी है और कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इसका मतलब यह है कि जो काम पहले दो सौ साल में होता था, अब वह पाँच वर्ष में होने लगा।

कांग्रेस के उद्देश्य

मैं और निकट आऊँ। हम साठ-सत्तर साल पहले की बात देखें, तो मालूम पड़ता है कि दुनिया के कई देशों में एक-सा काम प्रारम्भ हुआ। हिन्दुस्तान में कांग्रेस का काम प्रारम्भ हुआ, जिसमें देश के सभी प्रान्तों के लोग, सभी धर्मों के लोग और अंग्रेज तक शरीक थे। आजादी की इच्छा प्रकट करना कांग्रेस का उद्देश्य था। उसके पहले भी हिन्दुस्तान के लोगों की यह भूख थी। परन्तु पहले ऐसी अवस्था होती है कि बच्चा रोकर अपनी भूख प्रकट करता है। पर जब उसमें बोलने की शक्ति आती है, तो वह माँगता है। फिर बड़ा होता है, तो खुद रोटी बनाकर खा लेता है। मानव जैसे-जैसे आगे बढ़ता है, वैसे-ही-वैसे वह अपने विचार का प्रकाशन उत्कट रूप से और अधिकाधिक स्पष्ट करता जाता है। कांग्रेस के रूप में हमने वाणी द्वारा अपनी वही भूख प्रकट की।

आजादी हासिल करने के लिए हमारा अपना खास तरीका था और भगवान् की कृपा से हमें उसके लिए एक उचित नेता भी मिले थे। जुल्म से मुक्त होने की आजादी की ऐसी ही प्रेरणा उस समय दुनिया के सभी मानवों को मिली थी। उस समय कांग्रेस के मानी थे : आजादी, समता और उच्चता-नीचता का अभाव! ठीक उसी समय हम देखते हैं कि दूसरे देशों के सामने, जहाँ राजकीय आजादी का ऐसा मसला नहीं था, मजदूरों की समस्या आयी। इसीलिए यूरोप में मजदूरों को आजादी दिलाने का आन्दोलन शुरू हुआ। दुनिया के सब मजदूर एक हैं, सबको समानता का अधिकार है, इसलिए सबको मुक्ति मिलनी

चाहिए। यह आंदोलन वहाँ चला। आज तो पहली मई को सर्वत्र 'मई-दिवस' (May day) मनाया जाता है। मजदूर-आंदोलन और कांग्रेस की वृत्ति में कोई फर्क नहीं है। सिर्फ परिस्थितियों का फर्क है। परतंत्र होने के कारण हमने राजकीय आजादी को ज्यादा महत्त्व दिया। लेकिन हमारी आजादी की लड़ाई में हमारे और भी उद्देश्य थे। सब तरह की समानता, न्याय, स्त्रियों तथा हरिजनों की आजादी के प्रश्न, जैसी सभी बातें उसमें थीं। उन सबका प्रकाशन कांग्रेस के जरिये हुआ था। उधर मजदूर-आंदोलनों में भी ये ही बातें थीं।

हमारा आन्दोलन मजदूर-आन्दोलन है

आज 'मई-दिवस' के निमित्त मैं कह रहा हूँ। मैंने आज जो काम उठाया है, वह भी मजदूर-आंदोलन ही है। जो सबसे कमजोर हैं, जो बेजमीन और बेजबान हैं, उनका यह आंदोलन है। अक्सर मजदूरों के आंदोलन शहरों में होते हैं। यूरोप में तो किसानों के भी आन्दोलन हुए हैं। लेकिन हिन्दुस्तान में ज्यादातर शहरों में ही ऐसे आंदोलन हुआ करते हैं। गाँव के मजदूर अत्यंत असंगठित हैं। उनमें जाग्रति नहीं है। उन्हें शिक्षा मिलती नहीं। उनके पास सिवा खेती के दूसरा कोई धंधा भी नहीं है। और जिस खेती पर वे काम करते हैं, उसके वे मालिक नहीं हैं। वे तो खेती के मजदूर हैं, जो सबसे नीचे के तबके के और समाज की श्रेणियों में सबसे निकृष्ट हैं। उनका सवाल मैंने उठाया है। जो सबसे नीचे के स्तर के होते हैं, उनका सवाल उठाना ही 'सर्वोदय' का और 'अहिंसा' का तरीका है। क्योंकि जो सबसे अन्तिम हैं, उसे ऊपर उठाना चाहिए। फिर उसके बाद बाकी के भी ऊपर उठ जाते हैं। फिर उनसे ऊँचों के लिए स्वतंत्र आंदोलन करना नहीं पड़ता।

मुझ पर आक्षेप किया जाता है कि मैं सिर्फ नीचेवालों को ऊपर उठाने की बात करता हूँ। समुद्र-स्नान से सब नदियों के स्नान का पुण्य मिल जाता है। फिर नदियों में अलग स्नान करने की जरूरत नहीं पड़ती। उसी तरह यह काम है, बशर्ते कि वह करने का ढंग ऐसा हो कि जिससे एक को लाभ और दूसरे को हानि न हो। अगर हम ऐसा तरीका अख्तियार करते हैं, तो सारा का सारा समाज ऊँचा उठता है। सर्वोदय का, अहिंसा का तरीका ऐसा है कि

जिससे बाकी के सब लोग स्वयं ऊँचे उठ जाते हैं। किसीने मुझसे पूछा था कि आप मध्यम श्रेणीवालों या शहर के मजदूरों के लिए क्या कर रहे हैं? उस समय मैंने मजाक में कह दिया था कि दुनिया के सब मसले हल करने का मैंने ठेका नहीं लिया है। लेकिन वह तो विनोद था। **एकहि साधे सब सधे, सब साधे सब जाय।** इस तरह मैं तो एक वातावरण निर्माण करना चाहता हूँ, जिसमे समता, न्याय, भूतदया और सहानुभूति की हवा फैल जाय तथा उससे बाकी के मसले अपने-आप हल हो जायँ। यदि न भी हों, तो केवल जरा-सा आंदोलन करके हल किये जा सकें।

भूदान की ओर देखने की अनेक दृष्टियाँ

मेरे काम की ओर देखने की अनेक दृष्टियाँ हैं। लेकिन मई-दिवस के निमित्त मैंने यह एक दृष्टि आपके सामने रखी कि मेरा आंदोलन मजदूर-आंदोलन है। मैं खुद अपने को मजदूर मानता हूँ। मैंने अपने जीवन के, जवानी के ३२ वर्ष, जो 'वेस्ट इयर्स' कहे जाते हैं, मजदूरी में बिताये। मैंने तरह-तरह के काम किये हैं, जिन कामों को समाज हीन और दीन मानता है—जिनकी कोई प्रतिष्ठा नहीं है यद्यपि उनकी आवश्यकता बहुत है—ऐसे काम मैंने किये हैं। जैसे : भंगी-काम, बढ़ई-काम, खेती आदि। आज गांधीजी नहीं हैं, इसलिए मैं बाहर निकला हूँ। अगर वे होते, तो मैं बाहर कभी नहीं आता और आप मुझे किसी मजदूरी में मग्न पाते। कर्म से मैं मजदूर हूँ, यद्यपि जन्म से ब्राह्मण याने ब्रह्मनिष्ठ और अपरिग्रही हूँ। ब्रह्मनिष्ठा तो मैं छोड नहीं सकता। किसी भी काम की ओर देखने की हरएक की अपनी अलग-अलग दृष्टि होती है। तुलसीदासजी ने लिखा है कि जहाँ राम खड़े हुए थे, वहाँ उन्हें देखनेवाले जिस तरह के लोग थे, उस तरह से उन्होंने राम की ओर देखा। **जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।** जो काम व्यापक होते हैं, उनके अनेक पहलू होते हैं। इसीलिए उनकी ओर कई दृष्टियों से देखा जा सकता है। मेरे काम से भूमि की समस्या हल हो सकती है। अन्न के उत्पादन में वृद्धि हो सकती है, न्याय बढ़ सकता है। ग्रामों का संगठन हो सकता है। राजकारण पर उसका अच्छा असर हो सकता है। लोगों में धर्मभावना का विकास हो

सकता है। लोगों की अविकसित और गुप्त धर्म-भावना को, दान और दया करने की वृत्ति को बाहर लाया जा सकता है। मेरे काम की ओर धार्मिक कार्य और भारत की पद्धति के अनुकूल कार्य हैं, इस दृष्टि से भी देखा जा सकता है और इसे एक बड़ा भारी मजदूर-आन्दोलन भी कहा जा सकता है।

परमेश्वर की प्रेरणा से कार्यारम्भ

यह सब मैंने किया नहीं, मुझे करना पड़ा है। हैदराबाद के 'सर्वोदय-सम्मेलन' के बाद मैं एक अहिंसक निरीक्षक के नाते तेलंगाना गया था। वहाँ के आतंक को नष्ट करने के लिए सरकार सालाना पाँच करोड़ रुपया खर्च करती थी, फिर भी वह नष्ट नहीं हुआ था। इसलिए अहिंसा वहाँ कैसे काम कर सकती है, यह देखने के वास्ते मैं नम्र भाव से गया। मैंने वहाँ की परिस्थिति देखी और मुझे मानो सूचना मिली कि किसानों की समस्या हाथ में लेनी होगी। जो लोग खेती में मजदूरी करते हैं, परन्तु बेजमीन हैं, उनका प्रश्न उठाना होगा। मुझमें ताकत नहीं थी, फिर भी मुझे वह काम लेना पड़ा। नहीं तो मैं डरपोक साबित होता और धर्म को भूलता। मैंने सोचा कि जब परमेश्वर मुझे यह प्रेरणा दे रहा है, तब इस काम को पूरा करने की ताकत भी देगा। यह मानकर मैंने इस काम को उठाया। ईश्वर पर याने आप सब पर श्रद्धा रखकर मैंने यह काम किया है। जो परमेश्वर मुझे माँगने की प्रेरणा दे रहा है, वह आपको देने की देगा। वह एकतरफा नहीं करता, बल्कि व्यापक और सब सोचनेवाला है, ऐसा मेरा विश्वास है। यह अहिंसा का तरीका है।

हम सुपंथ लेंगे

दुनिया के कई देशों में कृषक-मजदूरों के भी आंदोलन चले, लेकिन भारत में किसीने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। सिर्फ कम्युनिस्टों ने तेलंगाना में उनकी ओर ध्यान दिया। बाकी तो सब शहर के मजदूरों के आन्दोलन हैं। दुनिया में हरएक ने अपने-अपने ढंग से इस सवाल को हल किया है। लेकिन उनका तरीका बेढंगा है। मैं उसे नहीं चाहता। मैं मानता हूँ कि उससे न तो कभी दुनिया का भला हुआ और न होगा। मैं मानता हूँ कि भारत के

लिए वे तरीके नुकसान पहुँचानेवाले हैं। मेरी या हमारी या भारत की एक विशेषता है। मैं तो इन तीनों को एक ही मानता हूँ। हमारा अपना एक विशेष तरीका है। मुझे कल किसी ने कहा कि जबर्दस्ती से जल्दी जमीन मिल सकती है। मैंने कहा कि मैं जबर्दस्ती नहीं चाहता। मेरा काम आहिस्ता-आहिस्ता चले, तो कोई हर्ज नहीं; लेकिन वह मेरे तरीके से होना चाहिए, हिंसक तरीके से नहीं। मेरा तरीका अहिंसा का, सर्वोदय का और भारतीय संस्कृति का तरीका है। यदि घी के डब्बे को आग लगायी जाय, तो घी जल जाता है और वेद-मन्त्र के साथ यज्ञ में उसकी आहुति दी जाय, तो भी वह जलता है। दोनों में घी जलता ही है। लेकिन एक से भावना जल जाती और दुनिया खतम हो जाती है, तो दूसरे से भावना पावन हो जाती है। हिंसक तरीके से एक मसला हल करने से दूसरे मसले पैदा हो जाते हैं। हिंसक तरीके से नयी-नयी तकलीफें पैदा होती हैं।

हमने आजादी हासिल करने के लिए जो तरीका उठाया था, वह यहीं निर्माण हो सका, क्योंकि वह भारत की सभ्यता के अनुकूल था। उसके लिए हमें सुयोग्य नेता भी मिला था। वैसे ही विशुद्ध तरीके से हमें और भी सभी मसले हल करने हैं। उपनिषदों में कहा गया है कि अग्निदेव, हमें सुपंथ से ले जाओ, बुरे रास्ते से नहीं—अग्ने नय सुपथा राये। हमें चाहे जिस रास्ते लक्ष्मी नहीं चाहिए, बल्कि वह सुपंथ से चाहिए। कुरान में भी कहा गया है: इह्दिनस् सिरातल् मुस्तकीम, सिरातल् लजीन अन् अम्त अलैहिम। याने हे भगवन्! हमें सिर्फ सीधी राह चाहिए। गलत राह से हम मुकाम पर नहीं पहुँच सकते। कभी-कभी यह आभास होता है कि हम मुकाम पर पहुँच गये, परन्तु असल में 'जन्नत' में जाने के बजाय हम 'जहन्नुम' में पहुँच जाते हैं। इसीलिए हम सीधी राह से या सुपंथ लेकर आदर्श की तरफ पहुँचना चाहते हैं।

क्षमता और समता में अविरोध

हमें केवल मजदूरों को अन्न-वस्त्र नहीं देना है। यह मसला केवल भौतिक मसला नहीं है। मेरी दृष्टि से तो कोई भी मसला केवल आर्थिक मसला हो ही नहीं सकता। यदि हम गहराई में पहुँचें, तो मालूम होगा कि भौतिक मसले

आध्यात्मिक और नैतिक ही होते हैं। उसी तरह यह भी मसला आध्यात्मिक है। यदि हमने कहा कि गरीबों को समता चाहिए, न्याय चाहिए, तो जो हमारे विरुद्ध पक्ष में हैं, वे भी हमारी बात मंजूर करते हैं। वे भी विषमता की बात तो नहीं ही करते हैं। बल्कि यह कहते हैं कि जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े न होने चाहिए। जहाँ हम समता की बात करते हैं, वहाँ वे असमता की बात तो नहीं करते, पर क्षमता की बातें खड़ी करते हैं।

वे 'समता विरुद्ध असमता' नहीं कह सकते, क्योंकि असमता को कोई नहीं मानता। प्रकाश के सामने अंधकार टिक नहीं सकता। राम के विरुद्ध रावण लड़ नहीं सकता। लेकिन अर्जुन के विरुद्ध यदि भीष्म का नाम लिया जाय, तो युद्ध हो सकता है। अच्छे शब्द के विरुद्ध अच्छा शब्द लाकर ही युद्ध हो सकेगा। राम-रावण की लड़ाई एक अजीब बात है। यदि हम कहें कि सूर्य और अंधकार की बड़ी भारी लड़ाई हुई, जिसमें अंधकार के समूह सूर्य पर टूट पड़े और सूर्य-किरणों ने उन्हें नष्ट किया, तो यह केवल वर्णन ही होगा। क्योंकि सूर्य के उदय के साथ-साथ ही अंधकार को नष्ट होना पड़ता है। इसी तरह राम का उदय होने के साथ ही रावण खतम हो जाता है। सूर्य के सामने अंधकार टिक नहीं सकता। ठीक इसी तरह राम के सामने रावण टिक नहीं सकता और समता के सामने असमता टिक नहीं सकती। लेकिन जब हम समता के सामने क्षमता खड़ी करते हैं, तो युद्ध होना सम्भव है। क्षमता में विश्वास करनेवाले कहते हैं कि क्षमता के लिए जमीन के बड़े-बड़े टुकड़े होने चाहिए। तो, भिन्न विचारवाले नया विचार प्रकट करते हैं कि हम ऐसी कुशलता से समता लायेंगे कि उसमें क्षमता भी होगी। जहाँ समता है, वहाँ क्षमता भी आयेगी : यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।

मजदूरों के सवाल को एकांगी ढंग से और हिंसक तरीके से हल करने की कोशिश करनेवाले कभी कामयाब नहीं हो सकते। उससे तो हानि ही होगी। मैं ऐसी कुशलता से यह काम करना चाहता हूँ कि समता की तो रक्षा हो सके, पर ऐसे ढंग से कि मजदूरों का दुःख नष्ट हो और क्षमता तथा दूसरे और भी गुण रहें।

पूँजीवादी समाज में कुछ मस्तिष्क, कुछ हाथ !

आज सारा भारत मजदूर बन गया है। भारतवासी बुद्धि का उपयोग करना नहीं जानते। लाखों को हमने शिक्षा से वंचित रखा है। ये सब धन, मान और ज्ञान से विहीन हैं। फिर उनमें क्षमता कैसे आयेगी? आज गाँव में अच्छा बढ़ई भी नहीं मिलता। यदि चरखे का कोई नया 'मॉडल' बनाना हो, तो गाँव का बढ़ई नहीं बना सकता। उसके लिए हमें पाँच साल उसे तालीम देनी पड़ती है। हमारा कारीगर-वर्ग 'अनस्किल्ड' मजदूर है, जिसे न ज्ञान है, न प्रतिष्ठा और न ध्येय है। पूँजीवादी समाज में कुछ तो ऐसे होते हैं, जो दिमाग का ही काम करते हैं और कुछ यंत्र के समान काम करते हैं, जो अपनी अक्ल का उपयोग नहीं कर सकते। किसीको चाकू में छेद डालने का काम दिया जाय, तो वह रोज पाँच हजार चाकू में छेद डालता और जिन्दगीभर यही काम करता रहता है। वे लोग कहते हैं कि इस तरह से काम दिया जाय, तो क्षमता और कुशलता पैदा होती है। वे मनुष्य-जीवन को सर्वांगीण बनने ही नहीं देते। पूँजीवादी समाज में कुछ तो 'हेड्स' (मस्तिष्क) बनते हैं और कुछ 'हैण्ड्स' (हाथ)। जैसे : मिल हैण्ड्स, हेड मास्टर, हेड क्लर्क आदि। इसका मतलब यह है कि इधर सारे सिर ही सिर, चाहे वह सिरजोर क्यों न हो और उधर सारे हाथ ही हाथ। और उनका कहना है कि उससे क्षमता आती है। सर्वांगपरिपूर्ण मनुष्य उनकी दृष्टि से क्षमता के खिलाफ है।

सार्ववर्णिक धर्म

चातुर्वर्ण्य में भी कुछ लोगों ने ऐसी कल्पना कर रखी थी कि ब्राह्मण भंगी का काम नहीं करेगा। लेकिन यह गलत है। चातुर्वर्ण्य का सच्चा अर्थ यही है कि चारों वर्णों में चारों वर्ण होते हैं; लेकिन एक की प्रधानता होती है और बाकी के गौण होते हैं। भगवान् कृष्ण युद्ध के समय केवल लड़ते ही नहीं थे, बल्कि घोड़े धोने का भी काम करते थे। उस समय उन्होंने यह नहीं कहा कि यह तो क्षत्रिय का काम नहीं है, और जब अर्जुन का मोह निरास करने की बात आयी, तब उन्होंने वह भी काम किया। अर्जुन से यह नहीं कहा कि

यह तो ब्राह्मण का काम है, इसलिए तुम अपनी शंका लेकर किसी ब्राह्मण के पास जाओ। कृष्ण भगवान् तो मौके पर ग्वाल बनते थे, मौके पर ब्राह्मण, मौके पर शूद्र। क्षत्रिय तो वे थे ही। इसलिए लड़ने का काम तो उन्हें करना ही पड़ता था। तो, चातुर्वर्ण्य में हरएक के लिए अपना-अपना काम होता है और वह उसे करना ही पड़ता है। लेकिन बाकी के काम भी वह करता है।

एक बार किसी गणित के प्रोफेसर से पूछा गया कि फैजाबाद स्टेशन कहाँ है? तो उसने कहा : मैं भूगोल नहीं जानता। अगर वह इस तरह कहता है, तो अच्छा नागरिक नहीं बन सकता। गणित का प्रोफेसर होते हुए भी उसे भूगोल का इतना तो सामान्य ज्ञान होना ही चाहिए। शास्त्रों में कहा गया है कि 'धर्मोऽयम् सार्ववर्णिकः'। सबके लिए समान गुण आवश्यक है। फिर भी हरएक के अपने-अपने वर्ण के अनुसार अलग-अलग गुण भी होते हैं। विशेषता कायम रखते हुए सबको परिपूर्ण मानव बनाना उसका उद्देश्य है। सबको मन, हाथ, सिर आदि सब अवयव दिये हैं; इसलिए सबको सभी काम करना चाहिए। फिर भी वह किसी एक काम को अधिक समय दे सकता है।

मालिक-प्रधान मजदूर, मजदूर-प्रधान मालिक

मैं चाहता हूँ कि मालिक और मजदूर का भेद मिट जाय। इसका मतलब यह नहीं कि हम मालिक की अक्ल का उपयोग नहीं करना चाहते। जो मालिक होगा, वह मजदूर भी होगा और जो मजदूर होगा, वह मालिक भी। कुछ तो मालिक-प्रधान मजदूर रहेंगे, जो हाथ का काम करते हुए भी दिमाग के काम को प्रधानता देंगे और कुछ मजदूर-प्रधान मालिक होंगे, जो दिमाग का काम करते हुए हाथ के काम को प्रधानता देंगे। बुद्धि-प्रधान शरीर-श्रम करनेवाले और श्रम-प्रधान बुद्धि का काम करनेवाले, ऐसी अवस्था समाज में होनी चाहिए। अगर भगवान् यह नहीं चाहता, तो कुछ को तो वह हाथ ही हाथ देता और कुछ को बुद्धि ही। राहु और केतु के समान सबको अपूर्ण बनाता। पर उसने सबको परिपूर्ण बनाया है, इसलिए कि सब परिपूर्ण जीवन बिता सकें।

हम मालिक-मजदूर भेद मिटाना चाहते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि मजदूर की श्रम-शक्ति या मालिक की व्यवस्था-शक्ति का हम विकास नहीं चाहते। हम दोनों की दोनों तरह की शक्तियों का विकास करना चाहते हैं। हम समता भी लाना चाहते हैं और क्षमता भी खोना नहीं चाहते।

फैजाबाद
१-५-'५२

धर्म-चक्र-प्रवर्तन : ३८ :

जब किसी दूध की परीक्षा की जाती है, तो वैज्ञानिक उसमें मक्खन का परिमाण देख लेते हैं। उस पर से दूध का कस मापा जाता है। जहाँ किसी समाज की योग्यता का माप किया जाता है, वहाँ यही देखा जाता है कि उस समाज में कितने ऊँचे महापुरुष निर्माण हुए? समाज के महापुरुष दूध के मक्खन की तरह होते हैं। भारत के उन्नत और अवनत, दोनों समय महापुरुष दर्शन देते ही गये हैं। इतना ही नहीं, इस सौ-डेढ़ सौ साल के—जब कि हम गुलामी में थे, जब एक विदेशी सत्ता हमें दबाये हुए थी तथा हमारी हालत अत्यन्त हीन थी—अवनति-काल में भी यहाँ राममोहन राय, दयानंद, रामकृष्ण परमहंस, लोकमान्य तिलक, रवि ठाकुर और महात्मा गांधी जैसे पचासों महापुरुषों के नाम, जो ऊँचाई में दुनिया के दूसरे महापुरुषों से कम नहीं हैं, गिनाये जा सकते हैं। याने भारत-भूमि ने साबित कर दिया कि उसकी पुरुषार्थ-शक्ति अब भी कायम है। प्राचीन काल से यहाँ ऐसी एक अंतर्यामी शक्ति काम कर रही थी, जिसके कारण प्रतिकूल परिस्थिति के बावजूद यहाँ महापुरुष निर्माण होते रहे हैं।

भगवान् बुद्ध के विचार अब अंकुरित

आज बुद्ध-जयंती का दिन है। आज दुनिया में बहुत-से लोगों का बुद्ध भगवान् के प्रति आकर्षण बढ़ रहा है। जिस व्यक्ति की जयंती उसके जन्म के ढाई हजार वर्ष के बाद मनायी जाय, उसकी आयु कितनी दीर्घ होनी चाहिए?

आज सभी हिंदू किसी धर्म-कार्य का संकल्प करते समय "बौद्धावतारे वैवस्वते मन्वंतरे कलियुगे" आदि मंत्र का स्मरण करते हैं। याने आज भी हम बुद्ध के जमाने में ही काम कर रहे हैं। बुद्ध-युग का मानो अब आरंभ हो रहा है। जैसे मिट्टी से बीज ढँका जाता है और फिर उसमें से वह अंकुरित होता है, वैसे ही बीच के जमाने में बुद्ध की शिक्षा का बीज कुछ ढँका-सा रहा और अब वह अंकुरित होता दिखाई दे रहा है। बुद्ध भगवान् ने स्पष्ट शब्दों में कहा था : भाइयो, **न हि वेरेण वेराणि सम्मन्तीध कुदाचन। अवेरेण च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो।** वैर से वैर कभी शान्त नहीं होता। कितनी भी कोशिश करो, अग्नि के शमन के लिए घी नहीं, पानी ही चाहिए। अदावत से अदावत मिट नहीं सकती। वैर से वैर शांत नहीं हो सकता। दुश्मनी से दुश्मनी बढ़ती ही है। यह उनकी शिक्षा का सार है। उनके शब्दों में जो ताकत थी, उसका भान आज लोगों को हो रहा है।

आज सारी दुनिया के जीवन में कशमकश और असंतोष का अनुभव हो रहा है। अनेक कठिन समस्याएँ हमारे सामने उपस्थित हैं। समाज के नेता जब उनके हल का चिंतन करते हैं, तब उन्हें बुद्ध भगवान् के तरीके का खयाल आता है। वे सोचते हैं कि अगर संभव हुआ, तो वे ही तरीके आज चलाने चाहिए, क्योंकि एटम बम और हाइड्रोजन बम से तो दुनिया की शक्ति का क्षय होगा, शक्ति-क्षय का ही वह कार्यक्रम होगा। दुनिया को भान हो रहा है और वह महसूस कर रही है कि हम इस तरह आगे नहीं बढ़ सकेंगे, जहाँ-के-तहाँ ही रह जायँगे। आज कई नास्तिक भी बुद्ध में विश्वास रखने लगे हैं। बीच में पचीस सौ वर्ष बुद्ध भगवान् गर्भावस्था में थे। लेकिन आज बुद्ध भगवान् के विचारों को अंकुर आ रहे हैं।

जो तालीम उन्होंने दी, वह उनके जमाने में भी नयी नहीं थी, सैकड़ों सन्तों ने उसे दोहराया था। वैर से वैर नहीं शान्त होता, यह उनकी बात नयी नहीं थी। यहाँ सब तरह का तत्त्वज्ञान, सैकड़ों वर्षों का अनुभव, आत्मानात्म-विवेक, वेद, उपनिषद्, सांख्य, गीता आदि निर्माण हो चुके थे और हमें इन सबने निर्वैरता की ही शिक्षा दी थी। ऋषियों ने गाया था :

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।
मित्रस्य अहम् चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ॥

सारी दुनिया मेरी तरफ मित्र की निगाह से देखे। अगर हम ऐसा चाहते हैं, तो हमें भी दुनिया की तरफ उसी मित्र-भावना से देखना होगा।

चेतन के सामने विशालतम जड़ भी नगण्य

दुनिया को मित्र या शत्रु बनाना मेरे हाथ की बात है। मैं चाहूँ तो मित्र बनाऊँ, चाहूँ तो शत्रु। यह सारा 'इनिशिएटिव' याने 'अभिक्रम' मेरे हाथ में है। वह मैं दूसरों के हाथ में नहीं देना चाहता। दुनिया को जैसा हम नचायेंगे, वह नाचेगी। हम उसे चाहे जैसा रूप दे सकते हैं। दुनिया की ताकत नहीं कि मेरे प्रति वैर-भाव रखे, अगर मेरे हृदय में दुनिया के प्रति प्रेम-भाव हो। आईने की ताकत नहीं कि मेरी आँख यदि निर्मल है, तो वह मलिन दिखाये। मेरी इच्छा के विरुद्ध आईने में दर्शन हो नहीं सकता। आईने की तरह दुनिया भी मेरी प्रतिबिंब-स्वरूप है। वह इतनी अनंत, अपार और विशाल है कि किसी भी जगह देखो, तो असीम, असीम और असीम ही नजर आती है। लेकिन चेतन के सामने इतनी असीम और विशाल दुनिया भी कोई महत्त्व नहीं रखती, जिस तरह अग्नि के सामने कपास का ढेर कोई महत्त्व नहीं रखता। जिस प्रकार की शक्ल हम दुनिया को देना चाहें, दे सकते हैं। यह सारी दुनिया मेरे हुक्म से चल रही है। यह हिमालय मेरी आज्ञा से उत्तर की तरफ बैठा है। अगर मैं चाहूँ, तो उसे दक्षिण की तरफ फेंक सकता हूँ। एक लड़के ने मुझसे पूछा कि यह कैसे सम्भव है ? मैंने समझाया कि अगर मैं उत्तर की तरफ चला जाऊँ, तो वह दक्षिण की तरफ फेंका जायगा। फिर उसकी ताकत नहीं कि वह उत्तर की तरफ आ सके। मैं उसे हर दिशा में फेंक सकता हूँ, क्योंकि मैं चेतन हूँ। वह बड़ा है, पर जड़ है। मैं अग्नि की चिनगारी हूँ और वह कपास का ढेर। मैं उसे खाक कर सकता हूँ, वह मुझे जला नहीं सकता।

दुनिया को मैं मित्र ही बना सकता हूँ, शत्रु नहीं बना सकता, यह वेदों ने हमें समझाया था। बीच में हजारों वर्षों में इसकी कसौटी नहीं हुई।

आखिर बुद्ध ने हमें यह अनुभव बताया। इसलिए जो बात बुद्ध भगवान् ने कही, वह नयी नहीं थी, परन्तु शायद इतनी स्पष्टतापूर्वक पहले नहीं कही गयी थी।

व्यक्तिगत जीवन में अहिंसा के प्रयोग

विचार के तौर पर बुद्ध भगवान् की बात सब तरफ फैल तो गयी, परन्तु सारे समाज में जो समस्याएँ मौजूद हैं, वे सब कैसे हल हों? शिक्षण की समस्या, अन्न की समस्या, वस्त्र की समस्या आदि कई समस्याएँ हैं। इन सभी सामाजिक समस्याओं को हल करने के लिए अक्रोध, निर्वैर का तत्त्व कैसे लागू हो सकता है, इस बारे में मानव-समाज को शंका बनी रही। किन्तु बीच के जमाने में लोगों ने सिद्ध कर दिया कि हम अक्रोध से क्रोध, निर्भयता से भय और प्रेम से द्वेष को जीत सकते हैं, परन्तु यह सब प्रयोग व्यक्तिगत जीवन में हुए। उनका सामाजिक प्रयोग अभी बाकी था।

विज्ञान में जितने प्रयोग होते हैं, वे पहले छोटे पैमाने पर प्रयोगशाला में होते हैं। जब कोई सिद्धान्त प्रयोगशाला में सिद्ध होता है, तब उसके व्यापक अमल के बारे में सोचा जाता है। मनुष्य का व्यक्तिगत जीवन भी एक प्रयोग-शाला ही है। निर्वैरता का सिद्धान्त सबको जीतनेवाला है और सन्तों ने यह सिद्धान्त व्यक्तिगत जीवन में सिद्ध कर दिया है।

अहिंसा का प्रथम सामुदायिक प्रयोग

इस बीच दुनिया में विज्ञान आगे बढ़ा। विज्ञान की शक्ति से लोगों ने अनेक देशों पर कब्जा किया। अंग्रेज यहाँ आये और वे यहाँ के मालिक बने। उन्होंने एक चमत्कार यहाँ किया। उन्होंने हिन्दुस्तान के सब लोगों के हाथ से शस्त्र छीन लिये। यह एक ऐसी घटना थी कि अगर इसे ऐसे ही बर्दाश्त किया जाता, तो देश को हमेशा के लिए गुलामी स्वीकार करनी पड़ती। किन्तु जिस देश के पीछे हजारों वर्षों का अनुभव हो, वह हमेशा के लिए गुलाम नहीं रह सकता था। निःशस्त्र होते हुए भी हम उठ सकें और गुलामी को तोड़ सकें, ऐसा कोई शस्त्र हमारे लिए जरूरी था। इसलिए जो सिद्धान्त संतों

ने अपने व्यक्तिगत जीवन में सिद्ध किया, उसका प्रयोग सामाजिक जीवन में किया गया। नतीजा यह हुआ कि हमें आजादी मिली।

मैं यह दावा नहीं करता कि हमें जो आजादी मिली, वह हमारी अहिंसा के परिणामस्वरूप ही मिली, क्योंकि वह दावा ठीक नहीं होगा। गीता ने बताया है, कोई भी काम पाँच कारणों से बनता है। इसलिए केवल हमारे अहिंसक प्रयोग से ही आजादी मिली, यह कहना अहंकार-होगा। लेकिन अहिंसात्मक लड़ाई एक बड़ा कारण है, ऐसा हम कह सकते हैं। दुनिया का इतिहास लिखनेवालों को लिखना पड़ेगा कि हिन्दुस्तान का राजकीय मसला नैतिक तरीके से हल हुआ था तथा हिन्दुस्तान में राष्ट्रीय आजादी का प्रयत्न करनेवालों को जो यश मिला, वह इतना अपूर्व और ऐसा अद्भुत है कि उसने दुनिया का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया है। इस तरह हमने देखा कि हमने एक अत्यन्त बलवान् राष्ट्र से आजादी हासिल की है।

नैतिकता में एक की जीत से दूसरे की हार नहीं

दूसरा एक चमत्कार इस देश में यह हुआ कि इतनी बड़ी सल्तनत, जिसके बारे में कहा जाता था कि 'उस पर सूर्य कभी अस्त नहीं होता', यहाँ से अपना सारा कारोबार समाप्त कर चली गयी। उसने एक तारीख मुकर्रर की और ठीक उससे पहले वह यहाँ से कूच कर गयी। इसलिए मेरा मानना है कि हमने जो अहिंसक तरीका अपनी आजादी हासिल करने के लिए अख्तियार किया था, उसकी जितनी महिमा है, उतनी ही महिमा इस बात की भी है कि अंग्रेजों ने एक निश्चित तारीख को यहाँ से अपनी हुकूमत उठा ली। इतिहासकार मानेंगे कि यह भी नैतिकता की एक अद्भुत विजय हुई। ऊपर के चमत्कार से भी अधिक बड़ा एक और चमत्कार यह हुआ कि जहाँ माउण्टबेटन ने हिन्दुस्तान का कारोबार हिन्दुस्तान के लोगों के हाथों में सौंप दिया, वहीं हमारे लोगों ने उसे ही 'गवर्नर जनरल' के तौर पर रख लिया। नैतिक विजय की इससे बड़ी मिसाल कोई हो नहीं सकती थी। नैतिक तरीके की यही खूबी होती है कि उसमें जो जीतते हैं, वे जीतते ही हैं, लेकिन जो नहीं जीतते, वे भी जीतते हैं। एक की हार के आधार पर दूसरे की जीत नहीं होती। आप देखते हैं कि बावजूद

इस बात के कि हमें इंग्लैण्ड से कई तरह का दुःख पहुँचा और यातनाएँ सहनी पड़ीं, हम लोगों के मन में आज इंग्लैण्ड के बारे में दुश्मनी के भाव नहीं हैं। अन्यत्र किसी भी लड़ाई के बाद ऐसा सद्भाव प्रकट नहीं हुआ है। इस घटना का शांति से संशोधन करो।

हिंसा या अहिंसा के चुनाव का समय

अब, जब कि एक राज्य जाकर दूसरा राज्य आया है, यह सोचने का समय है कि हमें किस प्रकार अपनी समाज-रचना करनी चाहिए। याने यह संध्या का समय है, ध्यान का समय है। हमारे सामने आज पचासों रास्ते खुले हैं। लेकिन कौन-सा रास्ता लें, यह हमें तय करना है। यह तय करने में हमें उस घटना को नहीं भूलना चाहिए, जिसका हमने आदरपूर्वक अभी उल्लेख किया। वह कोई छोटी घटना नहीं है। उसे हम भूल नहीं सकते। इसलिए हम सबके सामने यह बड़ा भारी सवाल है कि अपनी आर्थिक और सामाजिक रचना करने में कौन-सा तरीका स्वीकार करें।

गांधीजी के जमाने में हमने अहिंसा का तरीका आजमाया था, लेकिन उसमें हमारी कोई विशेषता नहीं थी, क्योंकि तब हम लाचार थे। अगर हम उस रास्ते नहीं जाते, तो मार खाते। दूसरा कोई हिंसक रास्ता हमारे लिए खुला नहीं था। इसलिए जो रुख हमने अख्तियार किया, वह अशरण की शरण था, अगतिकता की गति थी। अनाथ का आश्रय था। परन्तु गांधीजी का नेतृत्व हमें मिला। हमने सोचा कि वह तरीका हम आजमायें। हिंसा में हम जितने ताकतवर थे, उससे ज्यादा ताकतवर हमारे दुश्मन थे। लेकिन अहिंसा में हम उनसे ज्यादा ताकतवर थे। इसलिए हमारे सामने एक ही रास्ता था—या तो आजादी हासिल करने की अभिलाषा छोड़कर चुपचाप गुलामी स्वीकार करें या अहिंसक प्रतिकार के लिए तैयार हो जायँ। उस समय हमारे सामने पसन्दगी का सवाल नहीं था। लेकिन अब बात दूसरी है। अब हम चुनाव कर सकते हैं। अगर हम चाहें तो हिंसा का तरीका चुन सकते हैं, चाहें तो अहिंसा का चुन सकते हैं। चाहें तो सेना में आदमी बढ़ा सकते हैं, नौकादल और वायुदल भी बढ़ा सकते हैं और देश को खाना-पीना भले ही न

मिले, पर देशवासियों को इस सेना के लिए त्याग करने को कह सकते हैं और चाहें तो अहिंसा के रास्ते भी जा सकते हैं। चुनाव करने की यह सत्ता आज हमारे हाथ में है। पहले लाचारी थी, आज ऐसी लाचारी नहीं है।

हिंसा का नतीजा : गुलामी या दुनिया को खतरा

और फिर आज, जब कि गांधीजी चले गये हैं, हम लोग मुक्त मन से और खुले दिल से बिना किसी दबाव के निर्णय कर सकते हैं। मानो इसीलिए गांधीजी को भगवान् हमारे बीच से उठा ले गया। अब उनका दबाव हम पर नहीं है। अगर हम हिंसा के तरीके को मानते हैं, तो हमें रूस या अमेरिका को गुरु मानना होगा। किसी एक गुरु को मानकर उसके शागिर्द बनकर स्वतंत्रतापूर्वक उनमें से किसीका गुलाम बनना होगा। सवाल यह है कि क्या स्वतंत्र इच्छा से हम उनके शागिर्द बनना चाहते हैं? क्या उनके 'कैंप-फालोअर' बनकर उनके पीछे पीछे जाकर हमारी ताकत बढ़ेगी? उनकी ताकत से ताकत लेने में हमें पचासों वर्ष लग जायँगे और संभव है, फिर भी हम उनसे ज्यादा ताकतवर न हो सकें। नतीजा यह होगा कि हिन्दुस्तान को फिर से गुलाम होकर रहना पड़ेगा। और अगर हम अमेरिका तथा रूस, दोनों से भी ताकतवर बन जायँ, तो दुनिया के लिए एक खतरा साबित होंगे। अब सवाल हमारे सामने यह है कि स्वतंत्रता के नाम पर क्या हम गुलाम बनना चाहते हैं या दुनिया के लिए एक खतरा बनना? हमें गहराई से इस पर सोचना होगा।

हिंसा के मार्ग से भारत के टुकड़े होंगे

आज हिन्दुस्तान स्वतंत्र है, फिर भी अनाज या कपड़ा बाहर से भी मँगाना पड़ता है। आज हिन्दुस्तान स्वतंत्र है, तब भी हमें विशेषज्ञ लोग बाहर से बुलाने पड़ते हैं। आज हिन्दुस्तान स्वतंत्र है, लेकिन हमें शस्त्र और सेनापति बाहर से ही बुलाने पड़ते हैं। आज हिंदुस्तान स्वतंत्र है, परंतु तालीम के लिए भी हमें बाहर के देशों पर निर्भर रहना पड़ता है। तो, क्या आजादी के साथ-साथ हम स्वतंत्रतापूर्वक गुलाम बने रहना चाहते हैं? आज यह सवाल हम लोगों के सामने उपस्थित है। भगवान् ने हिन्दुस्तान का नसीब ऐसा बनाया है कि या तो उसे अहिंसा के रास्ते से श्रद्धापूर्वक चलना चाहिए, या जो लोग

हिंसा में पंडित हैं, उनकी गुलामी मंजूर करनी चाहिए; क्योंकि हिंदुस्तान एक पचरंगी दुनिया है, एक खण्ड-प्राय देश है। इसमें अनेक धर्म, अनेक भाषाएँ, अनेक प्रांत और उनके अनेक रस्मोरिवाज हैं। उसका एक-एक प्रांत यूरोप के बड़े-बड़े देश की बराबरी का है। क्या ऐसी अनेकविध जमातों को हम हिंसक तरीके से एकरस रख सकते हैं? एक-एक मसला नित्य हमारे सामने उपस्थित होता जा रहा है। कुछ लोग स्वतंत्र प्रांत चाहते हैं, तो क्या स्वतंत्र प्रदेश-रचना की माँग आज हिंसक तरीके से पूरी हो सकती है?

अगर हिंसात्मक तरीके को हम ठीक मानते हैं, तो हमें यह मानना होगा कि गांधी का हत्यारा पुण्यवान् था। उसका विचार भले ही गलत हो, पर वह प्रामाणिक था। अगर हम अच्छे और सच्चे विचार के लिए हिंसात्मक तरीके अख्तियार करना ठीक समझते हैं, तो आपको मानना होगा कि गांधीजी की हत्या करनेवाले ने भी बड़ा भारी त्याग किया है। अगर हम ऐसा मानें कि प्रामाणिक विचार रखनेवाले अपने विचारों के अमल के लिए हिंसक तरीके अख्तियार कर सकते हैं, तो मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि फिर हिन्दुस्तान के टुकड़े-टुकड़े हो जायँगे, वह मजबूत नहीं रह सकेगा। हिंसा से एक मसला तय होता दिखाई देगा, लेकिन दूसरा उठ खड़ा होगा। मसले कम होने के बजाय नये-नये पैदा होते ही रहेंगे। आज भी हरिजनों को मंदिरों में प्रवेश नहीं मिलता। छुआछूत का यह भेद नहीं मिट पाया, तो क्या हरिजन अपने हाथ में शस्त्रास्त्र लें? अगर अच्छे काम के लिए हिंसा जायज है, तो हरिजन भाई शस्त्र उठायें, यह भी जायज मानना होगा। यह दूसरी बात है कि वे शस्त्र न उठायें।

इसलिए आज ये सब बातें ध्यान में रखकर तय करना होगा कि आज जो महत्त्व के मसले हमारे सामने हैं, उन्हें हल करने के लिए कौन-से तरीके जायज हैं और कौन-से नाजायज? अगर हम अच्छे उद्देश्य के लिए खराब साधन इस्तेमाल करते हैं, तो हिन्दुस्तान के सामने मसले पैदा ही होते रहेंगे। लेकिन अगर हम अहिंसक तरीके से अपने मसले तय करेंगे, तो दुनिया में मसले रहेंगे ही नहीं। यही वजह है कि मैं भूमि की समस्या शान्ति के साथ

हल करना चाहता हूँ। भूमि की समस्या छोटी समस्या नहीं है। मैं लोगों से दान में भूमि माँग रहा हूँ, भीख नहीं माँग रहा हूँ। एक ब्राह्मण के नाते मैं भीख माँगने का अधिकारी तो हूँ, लेकिन यह भीख मैं व्यक्तिगत नाते ही माँग सकता हूँ। पर जहाँ दरिद्रनारायण के प्रतिनिधि के तौर पर माँगना होता है, वहाँ मुझे भिक्षा नहीं माँगनी है, दीक्षा देनी है। इसलिए मैं इस नतीजे पर पहुँच चुका हूँ कि भगवान् जो काम बुद्ध के जरिये कराना चाहते थे, वह काम उन्होंने मेरे इन कमजोर कन्धों पर डाला है।

देशों की दीवारें विचारों की निरोधक नहीं

मैं मानता हूँ कि यह धर्म-चक्र-प्रवर्तन का कार्य है। जमीन तो मेरे पास कब की पहुँच चुकी है। आप जिस तरीके से चाहें, उस तरीके से यह समस्या हल कर सकते हैं। आपको तय करना है कि घी के डिब्बे को आग लगानी है या वेद-मत्रों के साथ यज्ञ में उसकी आहुति देनी है। आप यह मत समझिए कि बाहर से हमारे इस देश में केवल मानसून ही आते हैं, बल्कि क्रांतिकारी विचार भी आते हैं। जिस तरह हवा बेरोक-टोक आती है, उसी तरह क्रांतिकारी विचार भी बिना रोक-टोक और बिना किसी तरह के पासपोर्ट के आते रहते हैं। लोगों ने, जहाँ दीवारें नहीं थीं, वहाँ बनायीं। चीन की वह बड़ी दीवार देख लीजिये। भगवान् ने जर्मनी और फ्रांस के बीच कोई दीवार नहीं खड़ी की थी, लेकिन उन्होंने 'सीगफ्रिड' और 'मेजिनो' लाइनें बनाकर क्षेत्र संकुचित कर दिया। मगर ये दीवारें लोगों को केवल इधर-से-उधर जाने-आने से ही रोक सकती हैं, पर विचारों के आवागमन को नहीं रोक सकतीं। उसी तरह यहाँ भी दुनिया के हरएक देश से विचार आयँगे और यहाँ से बाहर भी जायँगे। इसीलिए हमें तय करना चाहिए कि भूमि की समस्या हमें शांति से हल करनी है या हिंसा से ? मेरे मन में इस बारे में संदेह नहीं है कि यह समस्या शांति से हल हो सकती है। इस संबंध में इतना स्पष्ट दर्शन मेरे मन में है, इसीलिए मैं निःसंदेह होकर बोल रहा हूँ और कहता हूँ कि भाइयो, वन में पंछी बोल रहे हैं, इसलिए अब जाग जाओ। जिस तरह तुलसीदासजी भगवान् को समझा रहे थे, उसी तरह मैं अपने भगवान् को यानी

आपसे कहता हूँ कि जाग जाओ। यदि आप सब दान दोगे, तो आपकी इज्जत होगी।

इस युग के मार्कंडेय बनें !

जैसा कि मैंने अभी कहा, जिस तरह बाहर की हवा इस देश में आ सकती है, उसी तरह यहाँ की हवा भी बाहर जा सकती है। और जिस तरह बाहर से विचारों का आक्रमण यहाँ हो सकता है, उसी तरह हम भी अपने विचार बाहर भेज सकते हैं। यह भूदान-यज्ञ एक छोटा-सा कार्यक्रम है। लेकिन आज दुनिया की नजरें इस तरफ लगी हैं। कहते हैं : 'भारत में यह एक अजीब तमाशा हो रहा है कि माँगने से जमीन मिल रही है। हम सोचते थे कि जमीन तो मारने से ही मिल सकती है।' यह एक स्वतंत्र दृष्टि से विचार करने लायक बात है कि अब तक माँगने से लाखों एकड़ से ज्यादा जमीन मिली है। जहाँ दुनिया में चारों ओर लेने और छीनने की बातें चल रही हैं, वहाँ इस देश में देने का आरंभ हो रहा है, याने अन्तर्यामी भगवान् जाग रहे हैं। जिस तरह बाहर से विचार यहाँ आ सकते हैं, उसी तरह यदि हम धीरज और हिम्मत रखें, तो यहाँ के भी विचार बाहर जा सकते हैं। जरूरत इस बात की है कि भूदान-यज्ञ का संदेश सब ओर फैलाने के लिए हम उसी निष्ठा से काम करें, जिस निष्ठा से भगवान् बुद्ध के शिष्यों ने किया। वे बाहर के देशों में गये और वहाँ प्रेम से प्रचार किया। उसी निष्ठा से हमें इस नये धर्म-चक्र-प्रवर्तन में लग जाना चाहिए। ऐसा होगा, तब आप भी दुनिया को एक नया आकार दे सकेंगे। मैंने कहा है कि जब प्रलय के समय सारी दुनिया जलमय हो जाती है, तो अकेला मार्कंडेय ऋषि तैरता रहता है और फिर वही दुनिया को बचाता है। उसी तरह आज भी दुनिया में विचारों से, वचन से, व्यापार से, शस्त्रास्त्रों से, एटम बम से, हर तरह से प्रलयात्मक प्रयत्न हो रहे हैं। उस प्रलय के सारे प्रयत्नों पर जो देश मार्कण्डेय की तरह अकेला तैरेगा, उसीके हाथ में दुनिया का नेतृत्व आयेगा।

मैं यह अभिमान से नहीं, बल्कि नम्रतापूर्वक बोल रहा हूँ। हम नम्र बनें, तभी ऊँचे उठ सकेंगे। मनु महाराज ने भविष्य लिख रखा है : 'इस देश में

जो महान् पुरुष पैदा होंगे, उनमें ऐसी शक्ति होगी कि उसके द्वारा सारी दुनिया के लोग अपने जीवन के लिए आदर्श सीखेंगे।'

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वंस्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

मैं कहता हूँ कि वह शक्ति, वह सत्ता आपके हाथों में है। आपको एक नेता मिला था, जिसके नेतृत्व में आपका देश अहिंसा के तरीके से आजाद हो सका। आज भी इस देश में ऐसे लोग हैं, जिनके हृदय में सद्भाव मौजूद है। अब थोड़ी हिम्मत रखो और थोड़ी कल्पना-शक्ति रखो, तो आप देखेंगे कि आपके हाथ में भी वह शक्ति है, जिससे आप दुनिया को आकार दे सकते हैं। यह आक्रमण नहीं, बल्कि दुनिया को बचाना है। यह एक ऐसी महत्त्वाकांक्षा है, जो रखने लायक है। यदि हम भूमि का मसला शान्ति से हल करें, तो दुनिया को रास्ता दिखा सकेंगे।

लखनऊ
९-५-'५२

हिंदू-धर्म समुद्रवत् है : ३९ :

[राष्ट्रीय-स्वयंसेवक-संघ के कार्यकर्ताओं के सामने दिया गया भाषण]

एक बार मुझे ब्राह्मण-समाज ने व्याख्यान के लिए निमंत्रण दिया था। मैंने उनसे कहा कि मैं जन्म से तो ब्राह्मण हूँ ही और धर्म से भी हूँ। वैसे कर्म से तो मैं किसान, भंगी, बुनकर, सभी हूँ। वैसे मैंने यह कोशिश की है कि ब्राह्मण के कर्म करूँ। यज्ञ, तप, ज्ञान, साधना, अपरिग्रह, यह जो सारे शास्त्र के आदेश हैं, उनका पालन करने की मैं कोशिश करूँगा। फिर भी ब्राह्मण-समाज में जाकर व्याख्यान नहीं दूँगा।

व्यापक और संकुचित भाव से सेवा

कारण माँ बच्चे की सेवा से मोक्ष पा सकती है, अगर उसके मन में उदारता हो। इसके विपरीत कोई देश की सेवा भी संकुचित भाव से करता हो, दूसरे

देश के प्रति मन में द्वेष रखता हो, तो उसे मोक्ष नहीं मिलेगा। बच्चे की सेवा मूर्ति-पूजा के समान प्रतीक बन सकती है, अगर वह विशाल हृदय से की जाय। उस सेवा में सारी दुनिया की सेवा हो जाती है, परन्तु उस सेवा के लिए वैसे तरीके ढूँढ़ने चाहिए। इसी तरह यद्यपि मैं यह मानता हूँ कि ब्राह्मण की सेवा करते-करते सारी दुनिया की सेवा हो सकती है; फिर भी आज अपना समाज जिस हालत में है, उसे देखते हुए मैं मानव-सेवा को ही पसंद करूँगा। इसीलिए ब्राह्मणों को विशेष उपदेश नहीं दूँगा। मेरे कुछ मित्र ऐसी सभाओं में जाते हैं, वह अच्छा है। फिर भी मैं इस तरह का काम नहीं करूँगा। नाम संकुचित हो, तो सेवा-वृत्ति होने पर भी मेरे हृदय को वह सेवा ग्राह्य नहीं होगी, उसमें मैं खतरा देखता हूँ।

हृदय संकुचित न हो, चाहे सेवा का क्षेत्र सीमित हो

जब हिंदू और मुसलमान दोनों दुःखी हों, ठंड से ठिठुर रहे हों और ऐसी हालत में अगर अकेले हिंदुओं या अकेले मुसलमानों के लिए कंबल देने हों, तो मैं उन्हें फेंक दूँगा। कुछ हिंदू हिंदुओं के लिए ही काम करते हैं, तो मैं उन्हें दोष नहीं देता। लेकिन जहाँ मानवता का सवाल आ जाता है, वहाँ अगर कोई इस तरह भेद करता है, तो ऐसी वृत्ति से की गयी बातें मैं पसंद नहीं करूँगा। ज्ञानदेव ने कहा है कि कोई डूबता हो, तो आप स्पृश्यास्पृश्यता माननेवाले होने पर भी आपको उस समय उसका खयाल न करना चाहिए। उस समय तो डूबनेवाले को फौरन बचाना चाहिए, नहीं तो आप महापातक करते हैं। जब मानवता के टुकड़े होते हों, तो वह बात हृदय को असह्य होनी चाहिए। अगर कोई वर्धा जिले के लोगों के लिए फंड इकट्ठा करता है तो ठीक है, परंतु दिल के टुकड़े न होने चाहिए। मेरा हृदय उस चीज को कबूल नहीं करता। हिंदू, मुसलमान, वैश्य या ऐसी ही किसी संस्था का मैं सदस्य बनूँ, तो उससे एक ऐसा लेबल चिपकता है, जिससे आत्मा की विशालता कम हो जाती है। उससे मैं कमाता तो कम हूँ, पर खोता ज्यादा हूँ, ऐसा मुझे लगता है।

एक बार मैं जैन-बोर्डिंग में गया था, तो मैंने वहाँ कहा : 'मैं ऐसी संस्था

को पसन्द नहीं करता । सरस्वती के मन्दिर में सबको प्रवेश मिलना चाहिए। ऐसी संस्थाओं में सद्भावना होने पर भी उनसे हृदय का जो संकोच हो जाता है, वह बड़ी भारी बात है। इसलिए उससे हम बहुत ज्यादा खोते हैं।

अनन्त खोकर सान्त रखना अनुचित

आप किसी एक जमात की सेवा करना चाहते हों तो करें, परन्तु आपकी यह वृत्ति होनी चाहिए कि मैं एक परिशुद्ध आत्मा हूँ। मैं देह से अलग हूँ, पर देह के कारण ही पुरुष या स्त्री बनता हूँ। लेकिन अगर मैं देह के कारण अपने को दूसरी जमात के व्यक्ति से अलग मानता हूँ, तो मेरी आत्मा छिन्न-विच्छिन्न हो जायगी। अगर अपने अन्दर की अनन्त-शक्ति खोकर सांत-शक्ति रखता हूँ, तो इसमें मैं बहुत खोता हूँ। इसलिए जो लोग शील-संवर्धन चाहते हैं, उन्हें तो संतों जैसा ही करना चाहिए। संत अपने को किसी एक जमात का नहीं मानते थे। कोई भी सन्त चाहे राम का नाम लें या कृष्ण का, सहज भाव से उनके मुख से कोई नाम निकल जाता है। कौटुम्बिक और सामाजिक आदतों के कारण किसीको कोई नाम विशेष प्रिय होता है। किन्तु अगर उनसे पूछा जाय कि आप राम का काम करते हैं, तो वे कहेंगे कि सर्वांतर्यामी राम का काम करते हैं और सब लोग इसीका नाम भिन्न-भिन्न तरह से लेते हैं।

तुलसीदास ने भी तो कहा था कि सारा त्रिभुवन मेरा है। अवश्य ही उन्होंने यह लिखा तो हिंदी भाषा में, क्योंकि मानव की शक्ति मर्यादित रहती है। मानव का शरीर मर्यादित शक्तिवाला होने के कारण सेवा मर्यादित ही की जा सकती है, किन्तु वृत्ति मर्यादित न रखनी चाहिए। कोई मेरे कर्तव्य-क्षेत्र के बाहर भले ही हो, पर अगर वह मेरी सहानुभूति और विचार के क्षेत्र से बाहर हो जाता है, तो मैं अपार शक्ति खोता हूँ, मेरी शक्ति मर्यादित हो जाती है। सारांश, चाहे सेवा का क्षेत्र मर्यादित ही क्यों न हो, पर भावना और सहानुभूति का क्षेत्र अमर्यादित होना चाहिए।

व्यापकता हिंदू-धर्म की आत्मा

मनुष्य को मनुष्य के नाते ही देखो, नहीं तो हम हिंदू-धर्म की आत्मा

खो देंगे। हिंदू-धर्म कहता है कि सबमें एक ही आत्मा वास करती है। हिन्दू-धर्म ऐसा विशाल धर्म है कि वह किसी भी तरह का संकुचित भाव नहीं रखता। यदि हम इस बात को ध्यान में नहीं रखते, तो हिंदू-धर्म की बुनियाद को ही खोते हैं। हमारे शास्त्रों में कहा है कि 'एकम् सत् विप्राः बहुधा वदन्ति'। हिंदू-धर्म कहता है कि सत्य एक है, परंतु उपासना के लिए वह अलग-अलग हो सकता है। उन्होंने 'मूर्खाः बहुधा वदंति' ऐसा नहीं कहा। इसलिए ऐसी व्यापक वृत्ति हो, तो फिर आप हिंदुओं की सेवा कर सकते हैं।

समुद्र की वृत्ति रखो

कुछ लोग कहते हैं, "जैसे मुसलमानों के पास एक ही किताब 'कुरान' है, वैसी हमारे पास एक ही किताब नहीं है। इसलिए हमारी शक्ति बिखर जाती है। इसलिए गीता को ही प्रमाण मानो।" मैं गीता को मानता हूँ, पर चाहता हूँ कि हिंदू-धर्म के लिए कोई एक ही ग्रंथ प्रमाण न हो। वह तो समुद्र है, समुद्र में सभी नदियाँ आ जाती हैं। इसके लिए हमें समन्वय करने की खूबी दिखानी चाहिए। उपनिषदों का समन्वय गीता ने किया और गीता का भी समन्वय भागवत ने किया। अब हमें पुराण, कुरान, बाइबिल और गीता का समन्वय करना होगा। जैसे समुद्र सब नदियों को स्वीकार करता है, वैसी ही हमारी वृत्ति होनी चाहिए। विवेकानंद ने कहा है कि हमारा वेदांत धर्म है। हम सब उपासनाओं की ओर समान भाव से देखते हैं, यह हमारी सबसे महान् शक्ति है। जैसे सारे कौए काले होते हैं या सब सिपाहियों की पोशाक एक-सी होती है, वैसे ही एक ग्रंथ और एक नारा चाहेंगे, तो एकता तो बढ़ेगी ही नहीं, व्यापकता भी खो देंगे। उससे हम हिंदू-धर्म को ही खो देंगे।

रामकृष्ण परमहंस ने इसलाम और बाइबिल की भी उपासना की थी। यह बिल्कुल ठीक बात है। उन्होंने इसी तरह नाना उपासनाएँ करके अपने जीवन में उनका समन्वय पाया था। ऐसों से हमारी शक्ति बढ़ती है। एक भगवान्, एक पुस्तक और एक संघ चाहने से तो हमारी शक्ति घटती ही है। शंकराचार्य खुद तो मूर्ति को नहीं मानते थे, फिर भी उन्होंने पंचायतन को सामने रखा। उस समय जितने पंथ चलते थे, उन सबसे उन्होंने कहा कि हमारे पास आओ, हम तो

समुद्र हैं। आज भी हमें यही समन्वय करना चाहिए। अगर हम यह करेंगे, तो सारी दुनिया में अपनी भावना बढ़ा सकते हैं।

डर छोड़ो और प्रेम करो

इस पर हमसे पूछा जाता है कि 'अगर किसी एक धर्म का दूसरे धर्म पर आक्रमण होता हो, तो क्या उसे संगठित नहीं होना चाहिए?' वास्तव में यह सवाल हवा में नहीं, जमीन पर पूछा गया है। आज हमें डर है कि यद्यपि हमारी संख्या बड़ी है, फिर भी मुसलमान हमें खतम कर देंगे। मुसलमानों को भी हमसे ऐसा ही डर है। पाकिस्तान की आमदनी का ७० प्रतिशत सेना पर खर्च होता है और हमारी आमदनी का ६० प्रतिशत। इसलिए यह सौदा दोनों को बहुत महँगा पड़ रहा है। हम दोनों एक-दूसरे के खिलाफ़ मजबूत रहना चाहते हैं। वैसे भौतिक-दृष्टि से तो हम बलवान् नहीं हैं, फिर भी अमेरिका और रूस जैसे भौतिक-दृष्टि से बलवान् देश भी एक-दूसरे से डरते रहते हैं। एक-दूसरे के डर से दोनों शस्त्रास्त्र बढ़ाते हैं। किन्तु ध्यान रहे कि डर से डर पैदा होता है। जो गुण हम अपने हृदय में रखते हैं, वही दूसरे में पैदा होता है। यदि किसी जानवर के सामने भी हम निर्भय होकर जायँ, तो हमारी आँखों में निर्भयता देख वह हम पर हमला नहीं करता। इसलिए आज हमारा डर ही हमें डरा रहा है। हिंदू-धर्म कितना बलवान् है! उसने सबको हजम कर लिया और अपना रूप दिया है। अपना रूप देने की जो प्रक्रिया है, उसे क्यों छोड़ते हो?

मैंने मुसलमानों का प्रेम पाया

मैंने अलीगढ़ में कहा था कि इसलाम को कभी-न-कभी मांसाहार छोड़ना ही पड़ेगा। इस तरह कहने की हिम्मत और कौन करता है? परंतु मैं प्रेम से वहाँ गया और उनको मैंने यह बात सुनायी और उन्होंने अत्यंत शांति से और प्रेम से मेरी बात सुनी भी।

मेरी यात्रा में एक जगह गाय कटी थी। उसका बहुत हो-हल्ला हुआ था। यह गलती से हुआ था। 'जमीयत-उल-उलेमा' ने कहा था कि गाय मत काटो, परन्तु सरकार ने तो गोवध-बन्दी नहीं की थी। मैं अचानक उस स्थान पर पहुँच

गया। शुक्रवार का दिन था। मीटिंग मसजिद में हो सकती थी, क्योंकि मसजिद में दस-बीस गाँव के लोग इकट्ठा हुए थे। मैंने वहाँ मीटिंग ली और उन दोनों से कहा कि जरा सोचो तो, अगर ईश्वर गाय-बकरे के बलिदान से संतुष्ट होता, तो पैगम्बर को क्यों भेजता, उसके लिए तो कसाई ही काफी था। कुरान में साफ कहा गया है कि अल्ला प्रेम का भूखा है, बलिदान का नहीं। वैसे अल्ला तो मांस ही क्या, केला भी नहीं खाता। लेकिन हम उसे वे चीजें देते हैं; क्योंकि हम जो खाते हैं, वह भगवान् को देकर खाते हैं। इसलिए लोगों को मांस खाने से छुड़ाना चाहिए। अल्ला तो धर्म-निष्ठा और प्रेम चाहता है।

मैंने अजमेर के दर्गे में भी भाषण किया था। वहाँ लोगों ने मुझ पर इतना प्रेम बरसाया कि दस हजार मुसलमानों ने मेरा हाथ चूमा। मैंने उनसे कहा कि इसलाम को कभी-न-कभी परदा छोड़ना ही होगा। अल्ला की मसजिद में भी स्त्रियाँ नहीं आतीं, इसका क्या मतलब? वहाँ तो स्त्री-पुरुष-भेद न होना चाहिए। मैंने उनसे ऐसी बात कही, जो तेरह सौ सालों में उन्हें किसीने नहीं सुनायी। जिसके सामने जो चीज रखनी चाहिए, वह वही रख सकता है, जो सब पर प्रेम करता है। डर से कुछ नहीं होगा, इसलिए बहादुर बनो।

शुद्धि की आवश्यकता

हमारी जाति का नाश अगर कोई करनेवाला है, तो वह हम ही हैं। गीता कहती है : उद्धरेत् आत्मनात्मानम्। आत्मा ही अपना उद्धार कर सकती है और नाश भी कर सकती है। मसजिद में हर किसीको आने दिया जाता है, पर हमारे मंदिरों में हरिजनों को आने नहीं दिया जाता। जिस वृन्दावन में गोपाल-कृष्ण ने प्रेम और अभेद का वातावरण निर्माण किया था, वहीं गोपाल-कृष्ण के मंदिर में आज हरिजनों को प्रवेश नहीं है। यह सब पहचानो, जाग्रत होओ, अपनी शुद्धि करो और निर्भय बनो। जो सामनेवाले के हाथ से हाथ मिलाना नहीं चाहता और हाथ में लाठी रखता है, वह कभी निर्भय नहीं बन सकता। इसलिए मुसलमानों को मित्र बनाओ। फिर देखोगे कि वे आपके जैसे ही प्रेम के प्यासे हैं। उन्हें भी प्रेम का स्पर्श होता है। उनमें भी अपने बाल-बच्चों के लिए प्रेम है।

सारे मुसलमान बुरे होते हैं, यह नहीं कहना चाहिए। 'परमेश्वर ने किसी एक जमात को बुरा बनाया' यह कहना ईश्वर पर बड़ा भारी आरोप हो जाता है। अमेरिकन समझते हैं कि रूस के सभी लोग बदमाश हैं और रूसी समझते हैं कि अमेरिका के सभी लोग बदमाश हैं। इसी तरह पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के लोग भी एक-दूसरे के बारे में ऐसा ही खयाल रखते हैं। लेकिन यह गलत विचारधारा है।

सत्य के लिए सबूत नहीं चाहिए

वेदान्त कहता है कि कोई भी कुछ कहे, तो उसे सत्य मानो और सबूत होने पर ही असत्य मानो। सत्य पर विश्वास रखना चाहिए, क्योंकि वह स्वयं प्रकाश होता है। कुछ लोग कहते हैं कि जब तक सबूत नहीं मिलता, तब तक कोई बात सत्य है, इसे हम नहीं मानेंगे। लेकिन यह तो जेलर की वृत्ति है। 'इट इज टू गुड टु बी ट्रू' ऐसा कहा जाता है, याने यह खबर इतनी अच्छी है कि सच्ची नहीं हो सकती। इसका मतलब यह है कि हम बुरी बात पर तत्काल विश्वास करते हैं और भलाई पर सबूत मिलने के बाद। किसीने व्यभिचार किया, यह हम फौरन मान लेते हैं, पर किसीने त्याग किया, इस बात को फौरन नहीं मानते, ऐसी हमारी वृत्ति बन गयी है। किंतु वेदांत की वृत्ति इससे उल्टी है। कोर्ट में भी अगर बुराई के लिए सबूत नहीं मिलता, तो छोड़ दिया जाता है। याने यह माना गया है कि आदमी अच्छा है और बुराई के लिए सबूत चाहिए।

लेकिन आजकल हिंदुस्तान और पाकिस्तान के लोग अपने-अपने देश का ही अखबार पढ़ते हैं और दूसरे देश के बारे में द्वेष-भावना मन में रखते हैं। जैसे राम के भक्त कृष्ण के मंदिर में और कृष्ण के भक्त राम के मंदिर में नहीं जायँगे, वैसे ही आजकल अखबार की भक्ति चलती है। मुझे बचपन में एक दफा किसीने कहा था कि किसी पेड़ के पास भूत रहता है। लेकिन मेरी माँ ने कहा कि भूत है ही नहीं, अगर कहीं दीख पड़े, तो मालूम होगा; इसलिए जाकर देखो। जब मैंने जाकर देखा, तो मालूम हुआ कि भूत है ही नहीं, वह तो एक पेड़ था। सारांश, नजदीक पहुँचने पर डर खतम हो जाता है। इसलिए जिसका डर हो, उसके साथ कुश्ती खेलने के लिए हाथ बढ़ाओ।

हमारे दुश्मन भीतर हैं

मुसलमान हमारे ही हैं। आखिर बाहर से कितने लोग आये होंगे? बहुत से तो यहीं पर मुसलमान बने हैं। मुसलमान तो हमारे हृदय की कटुता का प्रतिबिंब हैं। हमने यहाँ के अछूतों से अच्छा बर्ताव नहीं किया, जिसके कारण उनमें से बहुत-से मुसलमान बने। इसीलिए उनके मन में हमारे प्रति अच्छे भाव नहीं हैं। नहीं तो दूसरे देशों के मुसलमान हमसे बहुत अच्छा बर्ताव करते हैं। इस तरह स्पष्ट है कि यहाँ के मुसलमानों में जो संकुचित वृत्ति है, वह हमारा ही प्रतिबिंब है। हजार साल से यहाँ पर जाति-भेद और संकुचितता रही है। मन्दिर में हरिजनों का प्रवेश निषिद्ध है। यह सब संगठन तो नहीं, विघटन है। साने गुरुजी ने मुझे किस्सा सुनाया था कि जिनको मन्दिर में प्रवेश नहीं मिला, उन्हें मसजिद और चर्च में प्रवेश मिला।

कुछ लोग कहते हैं कि ईसाई लोग सेवा तो करते हैं, लेकिन मन में यह भाव रखते हैं कि इनमें से कुछ लोगों को ईसा के पास पहुँचा देंगे। फिर भी वे सेवा तो करते हैं। मन्दिर में आश्रय न देनेवालों से मसजिद और चर्च में आश्रय देनेवाले कहीं उदार हैं, यद्यपि वे धर्म-प्रसार की भावना मन में रखते हैं।

इसलिए यह ध्यान में रखो कि हिन्दुस्तान को कोई हरा नहीं सकता। हमारा नाश अगर कोई कर सकता है, तो हम ही कर सकते हैं। आज १९५२ में भी मैं वेदों के जमाने की पोशाक पहन रहा हूँ। मुझे आज तक कोट-टोपी नहीं छुई है। किन्तु अगर हम निष्ठा नहीं रखते, उदारता नहीं रखते, सुधार नहीं करते, हिम्मत से दूसरे के पास नहीं पहुँचते, तो हमारे धर्म के लिए खतरा है।

लखनऊ
९-५-'५२

जो इतिहास जानते हैं, उनको पता है कि भारत में कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक अशोक के जमाने से आज तक एक ही सत्ता कायम न हो सकी, जो आज हुई है। यह छोटी बात नहीं। दो हजार साल के इतिहास में हमने कई अनुभव देखे। जो सार्वभौम सत्ता आज तक नहीं थी, वह आज हमारे हाथ में आयी है। अतः यह हमारे लिए सोचने का अवसर है। हमें नये सिरे से सारे समाज की रचना करनी है। इसलिए निश्चयपूर्वक, धीर-गम्भीर बनकर कदम उठाना चाहिए। दो हजार सालों में ऐसी सत्ता हमारे हाथ में आयी है, तो उसका कैसा उपयोग करें, यह हमें सोचना है। फिर निश्चित रूप से सारे समाज की रचना करनी है। बीच के काल में वह उच्छृङ्खल हो गयी थी। पिछले चार-पाँच सौ सालों में समाज में कोई रचना ही नहीं थी। जातियाँ थीं और वे ही काम करती थीं। सबके लिए एक योजना नहीं बनती थी। बड़े-बड़े राजा और बादशाह आये, परन्तु उनका परिणाम समाज की रचना पर नहीं हुआ। ऐसी कोई भी हुकूमत नहीं थी, जो समाज के लिए एक योजना बनाये। इसलिए अब हमें नये सिरे से रचना करनी है। यह बड़ा भारी काम है।

भगवान् बापू को ऐन मौके पर ले गया, जब कि हिन्दुस्तान की आवाज दुनियाभर में पहुँचने का समय आया था। मैं इसमें भी परमेश्वर का एक संदेश देखता हूँ। गुरु का उपयोग वह सिर्फ दर्शन कराने के लिए करता है और उसके बाद उसे उठा ले जाता है, ताकि हम स्वतन्त्र बुद्धि से सोचें, तय करें और आगे बढ़ें। अब हमारी जिम्मेवारी भगवान् की दृष्टि से बढ़ गयी है। गांधीजी के जाने के बाद हमने अपने को अनाथ पाया। लेकिन भगवान् की यह इच्छा नहीं थी। वे तो हमसे स्वतन्त्र बुद्धि से काम चाहते थे। अब हमारे लिए सब दिशाएँ खुली हैं। कौन-सी दिशा लेना, यह हम तय कर सकते हैं। जो रास्ता हमारी सभ्यता के अनुकूल है, वह हमें लेना चाहिए। यदि हम खुद उसका संदेश नहीं सुनते, तो दुनिया को कैसे सुनायेंगे ?

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है कि हिन्दुस्तान महामानवों का समुद्र है। यहाँ दुनिया से कई जमातें आयीं और यहीं की बन गयीं। हमने सबका प्रेम से स्वागत किया। यहाँ के लोगों ने सारे विश्व को अपनाया और उसे अपना भारतीय रूप दिया। सबको बचा लेना, सबके साथ रहना, सबको हृदय से अपनाना हमारा संदेश है। हमें इसे ध्यान में रखना चाहिए। हमारे समाज की शक्ति सबको बचाने में, सबको हजम करने में है। उसका प्रयोग हम आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में कर सकते हैं या नहीं, यह मैं देख रहा था। तेलंगाना जाने पर मुझे इसका दर्शन हुआ। तब से मैं इसे परमेश्वर का आदेश समझकर घूम रहा हूँ।

मुक्ति : समाजरूप भगवान् में विलय

हिन्दुस्तान में तत्त्वज्ञान, आध्यात्मिक विचार, समाज-शास्त्र के बारे में काफी प्रगति हुई और पश्चिमी राष्ट्रों में विज्ञान की। सारा भरत-खण्ड एक बनाया और वहाँ एक विचार फैलाया। यह एक बड़ा भारी काम हमने किया। तत्त्वज्ञानियों ने हिन्दुस्तान को आत्मा का दर्शन कराने के लिए अनेक तरह के विचार दिये हैं। आखिर एक सिद्धान्त स्थिर हो गया। मनुष्य-जीवन का अन्तिम आदर्श मुक्ति है। मुक्ति याने हम अपने को भूल जायँ, अहंकार शून्य हो जाय, हम मिट जायँ, बिन्दु सिन्धु में लीन हो जाने से छोटा नहीं रहता, बल्कि बड़ा हो जाता है। इसी तरह हम भी अपने को मिटाकर समाज-रूप और विश्व-रूप बनें। मुक्ति का अर्थ यही है कि मानव अपने छोटे-से जीवन को शून्य बनाये और समाज एवं विश्व के जीवन में लीन हो जाय। काम-क्रोध छोड दे। बिन्दु के समान हम परमेश्वर में सारी शक्ति लीन करें। हजार मस्तकों, हजार हाथों और हजार नेत्रों से जो परमेश्वर हमारे सामने खड़ा है, उसकी सेवा में लग जायँ। विश्व-रूप भगवान् की सेवा करें। जब भगवान् ने हिरण्यकशिपु का विदारण किया, तब प्रह्लाद ने उनकी स्तुति की : "मुझे आपके इस रूप से डर नहीं लगता, क्योंकि यह रूप बुराइयों को मिटानेवाला है।" फिर उन्होंने भगवान् की प्रार्थना की : "मैं अकेला मुक्त होना नहीं चाहता, सबको साथ लेकर मुक्त होना चाहता हूँ।" इसमें मुक्ति की गलत व्याख्या पर प्रहार किया गया है।

कहा गया है कि जंगल जाकर तपस्या करके विकारों को छोड़कर मुक्ति मिलती है। लेकिन प्रह्लाद ने समझाया कि जंगल में किसलिए जाते हैं ? एक को छोड़ दूसरे को पकड़ते हो, तो मुक्ति कैसे मिलेगी ? परमेश्वर तो सब दूर है। सारे समाज के लिए अपना अहंकार छोड़ना ही मुक्ति है, त्याग है, भक्ति है और है संन्यास। उसके बाद के सन्तों ने भी इसको बार-बार दुहराया है। "नत्वहम् कामये राज्यम् न स्वर्गम् न पुनर्भवम्" इसका मतलब यही है कि हम राज्य, स्वर्ग और अपनी व्यक्तिगत मुक्ति नहीं चाहते, बल्कि समाज की सेवा करना चाहते हैं। जब तक तू आनन्द भोगने की इच्छा करता है, और मुक्ति को भी आनन्द का रूप मानता है, तब तक वासना और अहंकार मिटता नहीं। मुक्ति का मतलब है, हम खुद मिट जायँ। हजारों वर्षों की तपस्या और आध्यात्मिक प्रयोग के बाद ऋषियों ने और सन्तों ने यह बात हमें सिखायी है।

मानव-जीवन का उद्देश्य : मुक्ति

हमारी समाज-रचना की बुनियाद क्या हो ? इस पर अब हमें सोचना है। हमारे लिए एक गहरी बुनियाद यहाँ के शास्त्रों ने बना रखी है। मानव-जीवन का उद्देश्य मुक्ति है और जब तक मुक्ति नहीं मिलती, तब तक उसका पूरा उद्देश्य हासिल नहीं होगा। मुक्ति के लिए मर मिटना होगा। हम मिट जायँ और समाज, विश्व, दुनिया रूप बन जायँ। चाहे गंगा-यमुना का पानी हो चाहे नाली का या लोटे का पानी हो, पानी तो यही चाहता है कि नीचे समुद्र की तरफ जाऊँ। नाले या लोटे का पानी छोटा होने के कारण बीच में ही सूख जा सकता है और समुद्र तक पहुँच भी नहीं सकता। फिर भी उसकी कोशिश तो यही रहती है कि समुद्र की तरफ जाय। किसको कितनी सफलता मिलती है, यह अलग बात है। लेकिन हम सबको समाज की सेवा में लग जाना है, याने समाज के सबसे नीचे के जो हैं, उनकी तरफ जाना है, हिमालय की तरफ नहीं। हमें नीचे झुककर भगवान् के चरण छूना है। जो दुःखी हैं, पीड़ित हैं, वे ही भगवान् के चरण हैं। उनकी सेवा में अपना अस्तित्व, व्यक्तित्व और हस्ती मिटानी है। हमारे सन्तों ने कई

तपस्याएँ की हैं। मेरा खयाल है कि यहाँ की भूमि में, आध्यात्मिक क्षेत्र में जितने प्रयोग हुए हैं, उतने और किसी भी देश में नहीं हुए।

तो, मेरी कोशिश यह है कि वही मुक्ति का ध्येय सामने रखकर हम समाज की रचना करें, जिससे हम समाज को परिपूर्ण बना सकें और व्यक्ति की शक्ति समाज की सेवा में लगा सकें। जैसे राम-राज्य में राजा राम, प्रजा राम, अधिकारी राम, सारे राममय थे, वैसा ही करना है। यह सब करने की शक्ति अब हमारे हाथ आयी है।

भारत जाग रहा है

हमें सबको समान भूमिका पर लाना और विषमता को मिटाना है। मेरा जो काम चल रहा है, उसमें सिर्फ जमीन माँगने की बात नहीं है, लेकिन मैं उससे एक दर्शन कराना चाहता हूँ। जो भगवान् की देन है, वह सबके लिए है। 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः', यह महान् मंत्र है। इसे समझना जरूरी है। मेरा विश्वास है कि हिन्दुस्तान की इस भूमि में ऐसे पुण्य के कण पड़े हैं और यहाँ की हवा में ऐसी पवित्रता है कि हम जो समझाते हैं, उसे लोग समझ लेते हैं।

कई लोग कहते हैं कि इससे तो थोड़ी-सी जमीन मिल सकती है, लेकिन सवाल कैसे हल हो सकता है? लेकिन इसी हिन्दुस्तान में एक व्यक्ति आया था और उसने सारे समाज को बदल दिया। बुद्ध भगवान् का इतिहास कह रहा है कि उनका समाज पर कितना असर हुआ था। अशोक तो बुद्ध के चरणों की रज था। उसने प्रेम की सत्ता बतायी। लेकिन उसे स्फूर्ति मिली थी भगवान् बुद्ध के चरणों से ही। बुद्ध भी एक व्यक्ति थे, जिन्होंने राज्य छोड़कर तपस्या की और यह सिद्ध कर दिया कि वैर से वैर शान्त नहीं होता, बल्कि प्रेम से होता है। हम उस बात को समझें, तभी हमारा उद्धार होगा। यह बात जब से भारत में चली, तब से समाज का रूप बदल गया। हिन्दुस्तान ने मांसाहार छोड़ दिया। अशोक के जमाने तक बुद्ध का संदेश एशियाभर में पहुँचा हुआ था। यहाँ के लोग बाहर देशों में हैं, तो शस्त्र लेकर नहीं, बल्कि शान्ति के दूत और सैनिक बनकर गये हैं। प्रेम से दुनिया का रूप बदल दिया।

हमने आज अशोक का चिह्न तो उठा लिया। उस पर जो चार सिंह हैं, वे क्या बताते हैं ? वे चार सिंह एक साथ जुड़े हैं, यद्यपि चार दिशाओं की ओर देखते हैं। चार सिंहों को इकट्ठे बैठा हुआ कभी किसीने देखा है ? सिंह तो हिंसा करनेवाला है। उसमें मिलन की शक्ति नहीं है, हिंसा की है। परन्तु उन चार सिंहों को यदि हम एकत्र रखें, तो देश को बलवान् बनायेंगे। फिर यह देश अकेला नहीं रहेगा। सबके सब गरीब और अमीर एक संघ में रहेंगे। बहादुरी तो सिंह की होगी, लेकिन मेल-मिलाप की वृत्ति गाय की होगी। यही अहिंसा का दर्शन है। तो, आप निराश क्यों होते हैं ? लोगों की सद्भावना बाहर आ सकती है।

जब मैंने इस काम को उठाया, तब कोई नहीं सोचता था कि इसमें सफलता मिलेगी। मैं तो पागल कहलाया जाता था। लेकिन आज लोग इस काम को समझ रहे हैं। दो हजार साल बाद आपको मौका मिला है, तो उतावली से काम नहीं करना चाहिए। अहिंसा और प्रेम से अधिक नजदीक का रास्ता दुनिया के लिए दूसरा कोई नहीं है। हमने इस बारे में प्रयोग किये हैं। दुनिया में दो महायुद्ध हुए, जिनमें असंख्य व्यक्तियों का संहार हुआ। लेकिन उससे कोई मसला हल नहीं हुआ, बल्कि नये मसले पैदा हुए। हिंसा से क्या हो सकता है, यह हमने देखा है। अब हमें लोक-संग्रह करना चाहिए। अध्ययन करके सबकी शक्ति जाग्रत करनी चाहिए। सबके हृदय में जो आंतरिक भगवान् हैं, वे जाग्रत हो सकते हैं, ऐसा विश्वास रखना चाहिए। इससे मेरा तो उत्साह बढ़ता है। हम जो आखिर की चीज चाहते हैं, वह होकर ही रहेगी, इसमें मुझे कोई संदेह नहीं है। हिन्दुस्तान की शक्ति जाग्रत हो रही है।

मुझे तो अंधों ने भी दान दिया है। यह प्रेरणा कहाँ से आयी ? उस समय मैं एक छोटे-से गाँव में था और शाम की प्रार्थना-सभा में अपने विचार समझाये। वहाँ से चार मील दूर से रामचरण नाम का एक अंधा आया, जिसने मुझे राम के चरणों का दर्शन कराया। वह रात को ११ बजे आया और दान देकर चला गया। उस अंधे को क्या दर्शन हुआ था, जिससे कि वह दान देने आ सका ? यह सब आपको बता रहा है कि हिन्दुस्तान जाग रहा है। यहाँ नया विचार, नयी भावना आ रही है।

परमेश्वर इस काम को चाहता है

अक्सर यह आक्षेप उठाया जाता है कि मेरे इस काम से गरीबों की शक्ति कैसे बढ़ेगी ? मैं उन गरीबों का प्रतिनिधि हूँ और उनका हक सबके सामने रख रहा हूँ। हवा और पानी के समान जमीन सबकी है, भूमि-माता पर सब संतानों का समान हक है। यदि आप किसी प्यासे को पानी नहीं पिलाते, तो वह अधर्म है, ऐसा मैं सबको समझाता हूँ। इससे गरीबों की शक्ति बढ़ती है या नहीं ? आज तक मुझे कोई भी शख्स ऐसा नहीं मिला, जिसने यह कहा हो कि भूमि-दान नहीं देना चाहिए। यदि विचार को मंजूर करते हुए भी कोई लाचारी से नहीं देता, तो वह अलग बात है। मेरा विश्वास है कि भारत में एक नयी क्रान्ति उठ रही है और देखते-देखते ही सारे लोग जाग जायँगे।

छांदोग्य उपनिषद् में गुरु शिष्य से कहता है कि छोटे बीज के टुकड़े करो, और फिर पूछता है कि तुम वहाँ क्या देखते हो ? शिष्य कहता है कि कुछ भी नहीं। फिर गुरु कहता है कि जो अत्यन्त सूक्ष्म है, जिसे हम देख नहीं सकते, वही परमेश्वर है, अणिमा है। वही तेरा स्वरूप है : तत्त्वमसि। उसीसे यह विशाल वृक्ष पैदा हुआ है। इस विशाल वट-वृक्ष के बीज में वही छिपा हुआ है। वैसे ही हरएक के हृदय में जो बीज है, उसे आज पानी मिल रहा है, इसीसे वह वृक्ष बढ़ेगा। मैं तो दुबला-पतला आदमी हूँ। लेकिन मैं अपने में ताकत पाता हूँ उसीकी शक्ति से। मेरी हड्डियों में ताकत नहीं। यदि कल खतम हो जाऊँ, तो भी कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी। फिर भी मैं हर रोज दस-पंद्रह मील न थकते हुए चल सकता हूँ। यह स्फूर्ति मैं कहाँ से पाता हूँ ? इसका मतलब यही है कि परमेश्वर जिस काम को चाहता है, उसे कराता है। आज वह मेरे जैसे कमजोर व्यक्ति के जरिये वह काम ले रहा है। वह चाहता है, तो यह काम होकर ही रहेगा।

लोग कहते हैं कि जमीन का मसला हल करने के लिए सत्याग्रह करने की जरूरत है। यदि वैसा मौका आ जाय, तो मैं सत्याग्रह भी करूँगा। भगवान् ने मुझे सत्याग्रह ही सिखाया है और आज भी मैं वही कर रहा हूँ। सत्याग्रह का मतलब है, सत्य को सामने रखना, उसीका आग्रह रखना, उसीके अनुकूल

वातावरण पैदा करना, सामनेवाले के हृदय में प्रवेश करने के लिए अत्यन्त प्रेम से प्रयत्न करना। यह पर-काया-प्रवेश है। इससे सत्याग्रह का वातावरण सब ओर फैलता है। सत्याग्रह की जरूरत हो, तो भगवान् मुझसे वह भी करायेगा। इस बारे में जिस भगवान् ने मुझे प्रेरणा दी है, वही दूसरों को क्यों न देगा? मन में अहंकार नहीं रखना चाहिए। सब मेरे समान हैं, आत्म-स्वरूप हैं, यही मानकर काम करना चाहिए। जो बुद्धि आज है, उसी बुद्धि से सबके हृदय में प्रवेश करना होगा। अब तो सारी भूमि मेरे पास आ चुकी है। अब सिर्फ बाहर से आने के लिए समय का सवाल है।

जमीन का सवाल हल होगा ही, क्योंकि वह कालपुरुष की माँग है। भगवान् अपना काम कर रहे हैं। तो हमें ऐसी रचना करनी है कि सबकी शक्तियाँ समाज-सेवा में लग जायँ और सब अहंकार छोड़ दें। यही सेवा-धर्म सिखाना है। यह समस्या हल करोगे, तो बाकी की सब समस्याएँ हल हो जायँगी। हमारे पूर्वजों ने मुक्ति की जो व्याख्या की थी, उसी अर्थ से हमें अपने देश को मुक्त करना है। स्वराज्य तो आ गया, लेकिन सामाजिक मुक्ति पाना है। हमें मुक्ति की हवा फैलानी चाहिए।

भूमि-वितरण कैसे होगा?

लोग पूछते हैं कि भूमि का वितरण कैसे होगा? छोटे टुकड़े होने पर एकॉनामिक होल्डिंग्स नहीं रहेंगे एकॉनामिक होल्डिंग का जो सवाल उठाया जाता है, उसके बारे में मेरा कहना यह है कि छोटे-छोटे टुकड़े होने पर भी किसान आपस में आवश्यकता के अनुसार सहयोग कर सकते हैं। उत्तर प्रदेश की सरकार कहती है कि सवा छह एकड़ एकॉनामिक होल्डिंग बन सकता है। और मैं तो हर परिवार को पाँच एकड़ देता हूँ। पार्शल को-आपरेशन किया जा सकता है। वितरण खानगी तौर से नहीं, बल्कि सार्वजनिक सभा में होगा। सबकी सलाह लेकर जो सबसे काबिल होंगे, उन्हीं भूमिहीनों को जमीन दी जायगी। दान का हर कोई हकदार है, यह मानकर उसे अपना हक दिया जायगा। कम-से-कम हरएक गाँव में एक सर्वोदय-परिवार बसाया जाना चाहिए। लोग पूछते हैं कि क्या हर गाँव से पाँच एकड़ लेने से क्रान्ति होगी? लेकिन

मैं कहता हूँ कि गाँव में एक घर से दूसरा घर जुड़ा रहता है। एक घर को आग लग जाने से सारा गाँव जल जाता है। एक परिवार में विचार-निर्माण होने से सारे गाँव में फैल जाता है। इससे समस्या नहीं हल हो सकती। लेकिन इसका मतलब यह है कि हमने एक कदम उठाया है। आगे भी बहुत कुछ करना है।

आप महान् हैं!

मैं आपको यह समझाने आया हूँ कि आप तुच्छ नहीं हैं, आप महान् हैं। हम सब महान् हैं। मैं किसीकी भी इज्जत घटाना नहीं चाहता, बल्कि सबकी इज्जत बढ़ाना चाहता हूँ। हिन्दुस्तान देश दस हजार साल का पुराना देश है। यहाँ कई सामाजिक परिवर्तन हो चुके हैं और कई महापुरुष पैदा हुए हैं। इसलिए मैं सबको बताना चाहता हूँ कि तुम सब महान् हो। तुम्हारी हालत दुनिया देख रही है। हम बच्चे-बच्चे को यह समझाना चाहते हैं कि तू महान् है। तू देह नहीं है, तू ब्रह्म है। देह तो चोला है, तू देह से भिन्न है। देह को कोई धमकाये, तो डरता नहीं। जुल्मी लोग शरीर को तकलीफ देकर अपनी सत्ता कायम करते हैं। परन्तु वे चाहे तुम्हें पीटें या मारें, फिर भी तुम उनकी चीज मत मानो। हम शरीर से भिन्न हैं। बच्चों को मारना, डराना, धमकाना बिलकुल गलत है। क्योंकि बच्चा भी महान् है, तुच्छ नहीं। वह पूर्ण है, यह पूर्ण है। कोई अपूर्ण नहीं है। मैं सबको प्रतिष्ठा देना चाहता हूँ और सिखाना चाहता हूँ, जिससे वे निर्भयता से आगे बढ़ सकें। यह तभी हो सकता है, जब हम सबको यह समझायेंगे कि हम सब परिपूर्ण हैं।

मैं मिसाल देना चाहता हूँ। छोटा बच्चा आधा लड्डू नहीं चाहता, वह तो पूरा लड्डू चाहता है, फिर चाहे उसे छोटा ही लड्डू दिया जाय। वह मन में सोच लेता है कि मैं छोटा हूँ, इसलिए मुझे छोटा लड्डू मिले, तो कोई हर्ज नहीं है। लेकिन वह आधा लड्डू कभी नहीं लेता। वह सोचता है कि मैं पूरा हूँ, अधूरा नहीं। वह अपूर्णता को सहन नहीं कर सकता। इसलिए हम छोटे-बड़े, सब पूर्ण हैं।

छोटे-बड़े, सभी काश्तकार और मजदूर सब अपना-अपना हिस्सा इस यज्ञ

में दें। सबको आत्मरूप मानो, तो जो माँगेगा उसे देना ही पड़ेगा। जब आप यह मानते हैं कि वह अलग है और आप अलग हो, तभी विरोध पैदा होता है। किन्तु दोनों एक रूप हैं, यह मानें, तो कोई कुछ भी माँगे, हम दिये बगैर नहीं रहेंगे।

कानपुर
१३-५-'५२

ऋषि-अनुशासन : ४१ :

आपको वोट का हक मिला याने आप मालिक हो गये! अब आप जिन नौकरों को चाहें, चुन सकते हैं। राज्य चलानेवाले आपके हुक्म के पाबंद रहेंगे। अब ज्यादा वोट पानेवाला—जिसे सौ में से साठ वोट मिल जायँगे वह—चुना जायगा। याने साठवालों की राय मानी जायगी और चालीसवालों की नहीं। अब राजा नहीं, उनकी जगह मन्त्री आये हैं। अब ज्यादा लोग जो चाहेंगे, वह कर सकते हैं।

राजा का जमाना गया, प्रजा का आया!

इसके पहले राजा थे, जो किसीसे कुछ पूछते नहीं थे; जैसा भी जी में आता, उसी तरह कारोबार चलाते थे। कोई एक राजा अच्छा रहा, तो उसके काल में जनता को सुख मिलता था। पर बाप के जैसा बेटा निकलेगा ही, यह संभव नहीं। इसलिए राजा के व्यक्तिगत गुणावगुण पर जनता का सुख-दुःख निर्भर था। किन्तु अब राजा चले गये और आप सब लोग राजा बन गये हैं। पहले राजा लोग लोगों को कोई सुनानेवाले नहीं होते थे। अगर होते भी, तो वे उनकी सुनते न थे; फौज के आधार पर ही राज्य चलाते थे। लेकिन अब राजा लोगों का नहीं, प्रजा लोगों का जमाना आया है।

तीन प्रकार के राज्य

बहुत प्राचीन काल में एक और बात थी। राजा थे, लोग उन्हें चुनते थे। पर वे ऋषियों की सलाह लेते थे। कोई भी बड़ी बात निकली, सवाल पैदा

हुआ कि वे ऋषि के पास जाते और उनकी सलाह से राज्य चलाते थे। उस समय ऋषि का राज्य था; पर वह गद्दी पर नहीं बैठता था, अपने आश्रम में ही रहता था। किन्तु राजा बार-बार दौड़कर उसके पास जाता था। ऋषि ध्यान एवं चिंतन कर राजा के सवालों का जवाब देता और राजा उसकी बात सुनता। राजा दशरथ वशिष्ठ ऋषि के कहने के अनुसार चलता था। जब विश्वामित्र ने दशरथ से लड़के माँगे, तो उसे देने का मन नहीं हुआ, क्योंकि उस समय लड़के छोटे थे। उसने देने से इनकार कर दिया। पर जब वशिष्ठ ने उससे कहा: 'तुम कैसे बेवकूफ हो, जब विश्वामित्र तुमसे लड़कों को माँगता है, तो तुम्हारे देने में ही उनका कल्याण है।' बस, ऋषि की आज्ञा होते ही राजा ने बात मान ली और लड़के सौंप दिये। वे ऋषि चुने नहीं जाते थे। वे आश्रम में ही बैठकर ध्यान, चिन्तन और दुनिया की भलाई सोचते थे। वे इंद्रिय-निग्रह, एकान्त-तपस्या, उपवास आदि करते, कन्द-मूल खाते और काम, क्रोध आदि को जीतने की कोशिश करते थे। ऐसे ऋषियों की बात राजा मानते और उनके कहे अनुसार राज्य चलाते थे।

राज्य तीन प्रकार के होते हैं: १. ऋषि का राज्य, २. राजा का राज्य और ३. ज्यादा लोगों का राज्य। बीच के जमाने में जब राजा का राज्य चलता था, तब राजा भला हो, तो जनता सुखी और भला न हो, तो दुःखी होती थी। याने वह तो नसीब का खेल था। पर अब लोगों की अक्ल से राज्य चलता है। लोग मूर्ख हों, तो चुने जानेवाले मूर्खों के सरदार होते हैं और लोग पढ़े-लिखे हों, तो चुने जानेवाले अक्लवालों के सरदार होते हैं। इसीलिए लोग पढ़े-लिखे होने चाहिए। पर यह जब होगा तब होगा, आज तो लोग मूर्ख ही हैं। तो, लोगों का राज्य, राजा का राज्य और ऋषि का राज्य—इनमें से आपको जो अच्छा लगे, उसे चुन लें।

आज की पद्धति का खतरा

अक्सर कहा जाता है कि ऋषि की अक्ल का राज्य अच्छा होता है। पर ऋषि कौन है, यह कैसे पहचाना जा सकता है? इसलिए ऋषि का राज्य अच्छा है, फिर भी चल नहीं सकता। राजा का राज्य तो खराब है ही। इसीलिए

आज लोगों का राज्य चलता है। इसमें लोग शराब चाहते हों, तो सरकार को शराब की दूकानें खोलनी पड़ती है और लोग नहीं चाहते, तो बंद करनी पड़ती हैं। लोग बाहर से अनाज मँगाना चाहें, तो सरकार को वह लाना पड़ता है। इसका मतलब यह है कि लोगों की मर्जी की बात है। याने ज्यादा लोग जिस बात को मानते हों, वह बात होती है। लेकिन ज्यादा लोग जिस बात को मानते हों, वह अच्छी ही होगी, यह हम नहीं कह सकते। इसीलिए ऋषि की तलाश में जाना पड़ता है और उनकी राय लेनी पड़ती है। कई बार सज्जनों की राय एक होती है, और लोगों की दूसरी। तो, इस समय किसकी राय मानें, यह सोचने की बात है। आज की राज्य-पद्धति में यही सबसे बड़ा खतरा है। यदि लोग यह न पहचानें कि किसे चुना जाय, तो सारा अंधों का क़ारोबार हो जायगा। फिर भी हमने एक पद्धति शुरू की है, उसमें खतरा होगा तो उठायेंगे। फिर लोगों की अक्ल बढ़ेगी और लोग अच्छे व्यक्तियों को चुनेंगे।

मनु की कहानी

एक जमाने में मनु महाराज तपस्या कर रहे थे। प्रजा राज्य-कारोबार चलाती थी। लेकिन अच्छा राज्य नहीं चलता था। इसलिए लोग मनु के पास गये और उससे उन्होंने प्रार्थना की कि आप राजा बन जायँ। मनु ने कहा कि 'मैं तो तपस्या कर रहा हूँ। यह छोड़कर राजा का काम करूँगा, तो आपको मेरी सब बातें माननी होंगी। फिर कभी यह मत कहना कि हम इस बात को नहीं मानते।' जब प्रजा ने यह कबूल किया, तब मनु महाराज राजा बने। समाज में ऐसे लोग होने चाहिए, जो चुनाव में न जायँ। मनु को यह साठ और चालीसवाला मामला मंजूर नहीं था। उन्होंने कहा कि सब लोग चाहते हों, तो हम आयेंगे; नहीं तो राम-नाम लेंगे। याने मुझे सौ में से सौ का मत मिलना चाहिए। केवल बहुमत से मैं राजा बनना नहीं चाहता।

अलिप्त सेवकों की आवश्यकता

जो चुनाव से अलग रहें और ठीक ढंग से चिंतन-मनन करें, वे ही लोग शासक होने चाहिए। दुनिया का खेल तो चलता ही है, पर वह ठीक से चलता है

या नहीं, यह देखनेवाला खिलाड़ी नहीं हो सकता। खेल से दूर रहनेवाला ही यह पहचान सकता है। जो खेल से अलग खड़ा हो, वही जान सकता है कि खेल में कहाँ कौन-सी गलतियाँ हो रही हैं। जो खेल में दाखिल हो जाता है, वह नहीं जान सकता। इसीलिए कुछ लोग ऐसे चाहिए, जो चुनाव के खेल से अलग रहें और शांति से चिंतन, मनन और भक्ति करें। वे लोगों की हालत देखें। जहाँ लोगों की गलती हो, वहाँ उन्हें बतायें और जहाँ राज्य चलानेवालों की गलती हो, वहाँ उन्हें बतायें। फिर वे मानें या न मानें, यह उनकी मर्जी की बात है। उनके कथनानुसार कोई चलता है या नहीं, इसकी उन्हें परवाह न होनी चाहिए। उनका काम तो केवल अध्ययन, चिंतन, मनन और दुनिया की सेवा ही होना चाहिए। राजा और प्रजा, दोनों की गलती वे ही बता सकते हैं, जो केवल सेवा करते हों।

इसी कल्पना को लेकर हमने गांधीजी के जाने के बाद सर्वोदय-समाज बनाया। हमने चाहा कि इसमें केवल सेवा करनेवाले हों, जो चुनाव में न पड़ें। भगवान् कृष्ण ने कहा था कि 'कौरव और पाण्डवों को लड़ना हो तो लड़ सकते हैं। मैं तो अर्जुन के रथ का सारथी बनूँगा, लेकिन लड़ाई में हिस्सा नहीं लूँगा।' फिर भी उन्हें एक बार शस्त्र हाथ में लेना पड़ा, पर व्यास-मुनि तो अलग ही रहे। जब अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र फेंका और फिर अर्जुन ने भी फेंका, तो दुनिया का संहार होने लगा। उस समय व्यास-मुनि बीच में आये और उन्होंने अर्जुन से कहा कि तुम ब्रह्मास्त्र रोको। अर्जुन ने उनका कहना मान लिया। इस तरह उन्होंने लड़ाई में तो हिस्सा नहीं लिया, पर दुनिया को संहार से बचाने के लिए बीच में आ गये। ऐसे ही कुछ लोग होने चाहिए।

सर्वोदयी शासक और प्रजा की कड़ी

सर्वोदयवाले वे होंगे, जो राजा और प्रजा, दोनों के बीच खड़े होंगे। इनका काम होगा : दोनों की गलतियाँ बताना, दोनों में प्रेम बढ़ाना, एक-दूसरे का संदेश एक-दूसरे के पास पहुँचाना और प्रजा का बल बढ़ाना। वे न सरकार में शामिल होंगे और न लोगों में। वे दोनों से अलग रहेंगे और उनके सच्चे

सेवक होंगे । वे दोनों के गुण-दोष जहाँ दीख पड़ेंगे, बतायेंगे, सबसे प्रेम करेंगे; पर किसी भी दल में दाखिल नहीं होंगे । पार्टियों के कारण गाँव के टुकड़े पड़ते हैं, उससे सारा गाँव बरबाद हो जाता है । इसलिए वे लोग तो मनुष्य के नाते ही सबकी सेवा करेंगे । हिन्दुस्तान में तो अनगिनत जातियाँ हैं, जैसे पेड़ के पत्ते । लेकिन सर्वोदय-समाज ने कहा है कि हम हजार प्रकार नहीं चाहते । क्या गंगा-जल कभी पूछता है कि तू गाय है या शेर या बकरी ? वह तो यही कहता है कि तू प्यासा है, तो तेरी प्यास बुझाना मेरा कर्तव्य है । जैसे गंगा-जल को भेद मालूम नहीं, वह सबके साथ समान व्यवहार करता है, वैसे ही बापू ने हमें यह तालीम दी है कि सब पर प्यार करो । पार्टी, जाति आदि मत देखो, सत्ता हाथ में मत लो । हम यही काम करने के लिए आये हैं ।

डीग
१७-५-'५२

महत्त्व के प्रश्नोत्तर : ४२ :

[यात्रा में एक जगह विनोबाजी से १४ प्रश्न पूछे गये और उन्होंने उन चौदहों के उत्तर दिये । ये १४ प्रश्नोत्तर नहीं; देदीप्यमान १४ रत्न हैं, जिनसे भूदान के अनेक रहस्यों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है ।]

मैं खतरा पैदा कर रहा हूँ

प्रश्न : आपकी बातों से कई खतरे पैदा होने की संभावना है ?

उत्तर : मैं तो आज के स्टेट (राज्य) के लिए इतना बड़ा खतरा पैदा कर रहा हूँ, जैसा कि आज तक किसी कम्युनिस्ट ने भी न किया होगा । क्योंकि मैं अहिंसक हूँ और सीधे लोगों के दिलों में पहुँचकर कहता हूँ कि जमीन तो ईश्वरीय देन है । मैंने यह विचार न चीन से लिया है, न रूस से, बल्कि ईश्वर से लिया है ।

हिमालय का दान दीजिये

प्रश्न : क्या आपको बहुत-सी जमीन झगड़े की और खराब मिली है ?

उत्तर : मैंने देखा कि कई दफा इस प्रकार की गलतफहमियाँ हुआ करती हैं। हैदराबाद में बँटवारे का कुछ काम हुआ है। इसलिए वहाँ के अनुभव से हम कुछ कह सकते हैं। वहाँ पर झगड़े की भी जमीन मिली, परंतु हमारे संपर्क से झगड़े मिट गये और उससे कुछ लाभ ही हुआ। साथ ही जिन्होंने खराब जमीन दी, उन्होंने जान-बूझकर नहीं दी थी। अक्सर ऐसा होता है कि बड़े जमींदार अपनी जमीन के बारे में कुछ भी नहीं जानते, इसलिए मुनीम के कहने से जमीन दे देते हैं। एक दफा बँटवारे के समय मालूम हुआ कि एक भाई की दी हुई ५०० एकड़ जमीन खराब है। हमने उससे पूछा कि क्या हम यह जाहिर कर दें कि आपकी जमीन खराब है या आप वह जमीन लेकर दूसरी जमीन देंगे? उस भाई ने दूसरी अच्छी जमीन देना कबूल कर लिया। अक्सर कोई भी अपनी बदनामी नहीं करा सकता। सात्त्विक, राजस और तामस, तीन प्रकार के दान होते हैं। सभी दान सात्त्विक नहीं होते। इसलिए कहीं अगर खराब जमीन मिली, तो कोई हर्ज नहीं है। मैंने तो कहा है कि मैं पहाड़ भी लेने को तैयार हूँ। कोई देनेवाला निकले, तो मैं हिमालय भी दान में ले लूँगा। मेरा मकसद तो यह है कि मैं जमीन की मालकियत ही मिटाना चाहता हूँ।

कृतं संपद्यते चरन्

प्रश्न : आप पैदल क्यों घूमते हैं?

उत्तर : यदि मैं हवाई-जहाज से घूमता, तो मेरा काम भी हवा में ही रह जाता। लेकिन मैं जमीन पर पैर रखकर घूम रहा हूँ। इसलिए मेरा काम भी जमीन में गहरा जा रहा है। यदि मैं हवाई-जहाज में घूमता, तो मुझे सिर्फ मान-पत्र मिलते, भूमि के दान-पत्र नहीं। अगर सत्य का संशोधन करना है, किस काम से अहिंसा चलेगी, इस पर चिंतन करना है, तो खुली हवा और मुक्त आकाश के नीचे घूमना चाहिए। वेदों ने तो आज्ञा दी है कि जो चलता है, वह कृतयुग में रहता है : "कृतं संपद्यते चरन्।"

मैं विचार लादूँगा नहीं

प्रश्न : आप कानून बनवाकर अपने विचार लोगों से क्यों नहीं मनवाते?

उत्तर : सरकार अपना काम करेगी, मैं अपना काम करूँगा। मेरा जन-शक्ति पर ही भरोसा है, इसलिए मैं जन-शक्ति को ही जाग्रत करने का काम कर रहा हूँ। लेकिन सरकार को गरीबों के हित में कानून बनाने से कौन रोकता है ? कानून बनाना तो उसीका काम है। लेकिन मेरा कानून पर विश्वास नहीं, जन-शक्ति पर है। मैं मानता हूँ कि कानून से कुछ ही मसले हल हो सकते हैं।

मैं प्रेम के मार्ग से दुनिया को एक विचार देकर अपना काम कर रहा हूँ। अगर मेरा विचार थोड़े लोगों को जँच जाय, तो थोड़ा काम होगा। सबको जँच जाय, तो पूरा काम होगा और किसीको भी न जँचे, तो कुछ भी काम नहीं होगा। लेकिन मैं तो केवल विचार ही देता रहूँगा, जबर्दस्ती विचार लादूँगा नहीं। मैं मानता हूँ कि हर किसीको अपने विचार का प्रचार करने का अधिकार होना चाहिए। मैं इस बात को बिलकुल गलत मानता हूँ कि अपने विचार को छोड़कर बाकी के सारे विचारों का प्रचार बन्द कर दिया जाय। कम्युनिस्ट अपने विचार जनता के सामने रखेंगे, मैं अपना विचार रखूँगा। दूसरे भी लोग अपना-अपना विचार रखेंगे। फिर जनता को जो विचार पसंद आयेगा, उसे वह स्वीकार कर लेगी। चुनाव करने का काम तो जनता का ही है। मेरे मन में कोई भी उलझन नहीं है; मेरा दिमाग बिलकुल साफ है। मैं जनता को एक विचार बता रहा हूँ। मैं मानता हूँ कि वह राह सबसे बेहतर है। फिर भी उस राह को पकड़ना या न पकड़ना, इसका फैसला तो जनता ही करेगी।

'बलिदान' : बलवानों का दान

प्रश्न : यह आप कैसा काम कर रहे हैं ? ऐसा काम तो कभी नहीं देखा गया। बिलकुल नया और अजीब मालूम पड़ रहा है।

उत्तर : आज की हालत न नयी है और न पुरानी, बल्कि बीच की है। यह नरसिंहावतार चल रहा है। सब अवतारों में यह अवतार भयानक होता है—न पूरा पशु और न पूरा मानव। इसके पहले के अवतारों के बारे में तो हम समझ लेते हैं कि वे पशु थे। लेकिन यह तो संक्रमण-काल चल रहा है।

मेरा काम नया नहीं है। यह तो वामनावतार चल रहा है। बलिदान का मतलब है, बलि राजा का दिया हुआ दान। याने बलवानों का दान, दुर्बलों का नहीं। बलि राजा तो चक्रवर्ती सम्राट् था। आज के वामनावतार में भी तीन कदम भूमि माँगी गयी है। पहला कदम है, अपनी भूमि का छठा हिस्सा दान दीजिये। दूसरा कदम, सालंकृत कन्यादान याने जमीन के साथ और साधनों का भी दान दो और गरीबों की सेवा में लग जाओ। तीसरा कदम, गरीबों की सेवा करते-करते खुद गरीब बन जाओ। 'शिवो भूत्वा शिवं यजेत् ।' यह तो पुराना ही काम है। लेकिन जैसे युग बदलता है, वैसे ही काम का रूप भी बदल जाता है।

वामनावतार, परशुरामावतार और रामावतार

प्रश्न : दूसरों की योजना में और अपनी योजना में क्या फर्क है ?

उत्तर : यही फर्क है कि हमारा वामनावतार है और दूसरों का परशुरामावतार या रामावतार। परशुराम ने शस्त्रों के जरिये निःक्षत्रिय पृथ्वी बनाने के लिए इक्कीस बार प्रयोग किये; लेकिन वे सारे प्रयोग असफल रहे। आज भी परशुराम के प्रयोग चल रहे हैं। वे लोग कहते हैं कि 'शुद्ध' (Purge) करो। जमींदार और पूँजीपतियों को कत्ल कर डालो। रामावतार में राजा रामचन्द्र की आज्ञा से काम चलता है। यही बात आज की भाषा में कहनी हो, तो कहेंगे कि कानून के जरिये बँटवारा किया जाय। लेकिन हमारा काम तो इन दोनों से भिन्न है, क्योंकि हमारा वामनावतार है। हम तो प्रेम से विचार समझाकर जमीन का दान लेते हैं; कोई इनकार नहीं करता, लोग दान देते हैं।

वामनावतार के बाद परशुरामावतार या रामावतार में से एक तो लाजिमी है। लेकिन वामनावतार में ही काम बन जाय, तो फिर इनमें से किसीकी भी जरूरत न पड़ेगी। हम रामावतार को पसंद करेंगे, लेकिन परशुरामावतार तो हर्गिज नहीं चाहिए, क्योंकि परशुराम के इक्कीस प्रयोगों से यह साबित हो चुका है कि वह असफल ही होगा। लेकिन सबसे बड़ी बात तो यह है कि वामनावतार में ही सब काम हो जाय।

धर्म-दृष्टि

प्रश्न : आज आप उन्हें जमीन दे रहे हैं, जो बिलकुल बेजमीन हैं। लेकिन बेहतर होता कि आज जिनके पास दो-तीन एकड़ जमीन है, उन्हें और दो-तीन एकड़ देकर एकोनॉमिक होल्डिंग्स (Economic holdings) बनाया जाय। हमारी बुद्धि को तो यही बात जँचती है।

उत्तर: सब काम बुद्धि से ही नहीं किये जाते, कुछ हृदय से भी करने पड़ते हैं। महाभारत की एक कहानी है। यक्ष के सामने धर्मराज खड़ा था। यक्ष के सवालों का जवाब दिये बगैर पानी पीने की कोशिश की, इसलिए उसके चारों भाई मर गये। यक्ष ने धर्मराज से भी सवाल पूछे। उसने अच्छे जवाब दिये। इसलिए यक्ष खुश हो गया और उसने धर्मराज से कहा कि 'मैं तुम्हारे एक भाई को जिंदा कर दूँगा, बताओ किसे जिलाऊँ?' वैसे सबसे उपयोगी तो अर्जुन था। अर्जुन 'आर्थिक इकाई' (Economic holding) था। किंतु धर्मराज ने कहा : 'हमारा जो सबसे छोटा भाई सहदेव है, उसे जिलाओ। हमारी दूसरी माता का वह सबसे लाडला बेटा है।' यह सुनकर यक्ष बहुत खुश हुआ और उसने धर्मराज के सब भाइयों को जिला दिया। उसे लगा कि धर्मराज उपयोगितावादी नहीं, धर्मनिष्ठ है। अर्जुन को जिलाना सबसे अधिक लाभदायी था, पर उसने लाभ छोड़ा और सबसे छोटे भाई को जिलाने के लिए कहा। इसीको 'धर्म-दृष्टि' कहते हैं। ऐसी धर्म-दृष्टि रखो और समाज में जो सबसे दुःखी गरीब हैं, उन्हें सुखी बनाने की कोशिश करो।

भूदान में हर कोई सहयोग दे सकता है

प्रश्न : हमें भूदान-यज्ञ का विचार अच्छा मालूम होता है, लेकिन गाँव-गाँव घूमकर जमीन माँगना हमारे लिए संभव नहीं। तब हम किस प्रकार काम कर सकते हैं?

उत्तर : दुनिया में ऐसा कोई नहीं है, जो भूदान का काम न कर सके। इसमें हर कोई, स्त्रियाँ, बच्चे, सब हिस्सा ले सकते हैं। यदि आप जमीन नहीं माँग सकते, तो विचार-प्रचार का, भूदान-साहित्य के प्रचार का काम कीजिये। सबसे पहले विचार आता है, उसके बाद आचार। अक्सर स्त्रियों को जमीन

देने का हक नहीं होता। इसलिए वे खुद तो जमीन नहीं दे सकतीं; लेकिन दिलाने का काम कर सकती हैं। गाजियाबाद में एक वकील भाई की पत्नी ने पति को समझाया कि 'आपकी वकालत तो अच्छी चलती है और हम खुद जमीन पर काश्त भी नहीं करते। फिर जमीन रखकर क्या करेंगे? सब जमीन दान में दे दीजिये।' उस भाई ने सारी जमीन, बारह एकड़ दान में दे दी।

अक्सर पुरुष कहते हैं कि 'हम लोग तो दान देना चाहते हैं, लेकिन स्त्री और बच्चों की आसक्ति के कारण नहीं दे सकते।' किंतु यदि स्त्रियाँ ही कहने लग जायँ कि दान दो, तो फिर पुरुषों को देना ही पड़ेगा। हमने पुराणों में पढ़ा है कि देवों की स्त्रियाँ तो अच्छी होती ही हैं, लेकिन राक्षसों की भी स्त्रियाँ सती-साध्वी होती थीं। रावण की पत्नी मंदोदरी साध्वी थी, उसने अपने पति को बुराई से बचाने की काफी कोशिश की। तो, इस यज्ञ में हिस्सा न लेनेवाले राक्षसों की स्त्रियाँ भी मंदोदरी जैसा काम कर सकती हैं। वे अपने दैवी गुणों से, पुरुषों की आसक्ति छुड़ाने और दान दिलाने का काम कर सकती हैं। हमने अक्सर देखा है कि देवों की स्त्रियाँ तो हमें अनुकूल होती ही हैं, लेकिन राक्षसों की स्त्रियाँ भी अनुकूल होती हैं।

बच्चे तो भूदान का काम कर ही सकते हैं। वे जोरों से भूदान के नारे लगा सकते और गीत गा सकते हैं। इससे तो वह त्रिभुवन में फैल सकता है।

जमीन दिल से जाने दो

एक जमींदार भाई : कानून से हमारी जमीन चली गयी है। हमारी हालत अच्छी नहीं है। फिर हम भूदान कैसे दे सकते हैं?

उत्तर : आपकी जमीन कानून से तो गयी, पर दिल से कितनी गयी, यह देखना है। मैं तो आपको स्वामित्व-निरसन का पाठ पढ़ाने आया हूँ। मैं जानता हूँ कि आज आपके पास पहले जैसी संपत्ति नहीं है, फिर भी मैं चाहता हूँ कि आप यदि अपने से छोटों की तरफ देखें, तो आपको मालूम हो जायगा कि उनसे आपकी हालत कई गुना अच्छी है। आपकी जमीन तो जानेवाली ही है। आज सारी दुनिया में जमीन के बँटवारे की हवा चल रही है। जहाँ हिंसक क्रांतियाँ होती हैं, वहाँ तो जमीनवालों को कत्ल किया जाता है। फिर जरा

सोचिये, इस क्रांति में आपको जो तकलीफ हो रही है, वह कितनी कम है। मैं भी मानता हूँ कि आपको कम-से-कम तकलीफ हो। इसीलिए आपसे भूदान माँग रहा हूँ। बच्चे को उठाने के लिए माँ को नीचे झुकना पड़ता ही है। हम चाहते हैं कि जमीनवाले अपने को माता-पिता की हैसियत में समझें।

लोग लायक दत्तक-पुत्र को क्यों न मानेंगे ?

प्रश्न : जब एक-एक इञ्च जमीन के लिए खून-खच्चर, सिर-फुड़ौवल होती है, तो आपको कोई कैसे माँगने पर अच्छी जमीन दे देगा ?

उत्तर : "मैं चाहता हूँ कि हरएक शख्स ऐसी जमीन दे, जैसी वह अपने लड़के को देता है। इस पर कोई सवाल पूछ सकता है कि 'यह कैसे संभव है ?' तो, मैं कहूँगा कि जब लोग नालायकों को दत्तक-पुत्र मान लेते हैं, तो फिर मुझ जैसे लायक को अपना पुत्र क्यों न मानेंगे ?

सरकार की जमीन क्यों नहीं लेते ?

प्रश्न : सरकार के पास जो हजारों एकड़ परती जमीन पड़ी है, उसे आप क्यों नहीं लेते ?

उत्तर : हमारा मकसद जमीन लेना नहीं, बल्कि जन-शक्ति जाग्रत कर समाज में परिवर्तन लाना है। हम चाहते हैं कि आज समाज में जो लेने की हवा चलती है, उसके बदले देने की हवा शुरू हो जाय। हर कोई यह महसूस करे कि अपने भूमिहीन, भूखे पड़ोसियों की चिंता करना, उन्हें जमीन देना हमारा कर्तव्य है। अगर सब लोग अपना कर्तव्य महसूस कर भूदान देंगे, तो फिर सरकार की परती जमीन हमें मिल ही जायगी। वह हमारी ही जमीन है, परंतु हम आज ही उसे नहीं लेना चाहते, क्योंकि हम जनशक्ति जाग्रत करना चाहते हैं।

जमींदारी और फारमदारी

प्रश्न : क्या बड़े-बड़े फारम बनाना लाभदायी नहीं होगा ?

उत्तर : हमने गाँव-गाँव जाकर देखा है कि अभी जमींदारी तो खतम हुई है, लेकिन फारमदारी शुरू हुई है। जहाँ पर बड़े-बड़े फारम बने हैं, वहाँ मजदूरों की हालत बैलों-की-सी होती है। वहाँ पर अच्छे-से-अच्छा गेहूँ मजदूरों के हाथ से

बोया जाता है; लेकिन जिस तरह बैल उस फसल को सिर्फ देख सकते हैं, उसे खा नहीं सकते, उसी तरह मजदूर भी उसे सिर्फ देख सकते हैं। कहा जाता है कि मजदूरों को ज्यादा तनख्वाह दी जाय और उनके लिए सस्ते अनाज की दूकानें खोली जायँ, तो काफी है। लेकिन सस्ते अनाज की दूकानें याने खराब अनाज की दूकानें होती हैं। मजदूर बढ़िया गेहूँ पैदा करे, लेकिन उसे खाने को खराब गेहूँ मिले—यह ठीक ऐसा ही है, जैसा बैल गेहूँ के खेत में मेहनत करता है, पर उसे खाने के लिए कड़बी दी जाती है। ऐसे फारमों में सारी सत्ता मैनेजरों के हाथ में रहती है, मजदूरों की अक्ल का कोई उपयोग नहीं लिया जाता। अगर मजदूरों के साथ साझा हो, तो ऐसे फारम भी रखे जा सकते हैं। हम चाहते हैं कि मजदूरों को न सिर्फ अच्छा खाना मिले, बल्कि उनकी बुद्धि का भी विकास हो।

शोषण कैसे मिटेगा ?

प्रश्न : शोषक-वर्ग को मिटाये बगैर क्रान्ति कैसे होगी ?

उत्तर : मैं नहीं मानता कि समाज में कोई एक शोषक-वर्ग है। दुनिया में शोषण चलता है और हममें से हर कोई एक का शोषक तथा दूसरे से शोषित है। सारा समाज जिसका शोषण करता है, वह भंगी भी अपनी औरत का शोषण करता ही है। शोषण मिटाने के लिए आज की समाज-रचना में आमूल परिवर्तन करना होगा। मैं एक क्षण के लिए शोषण बर्दाश्त नहीं कर सकता। इसीलिए तो पैदल घूम रहा हूँ। अहिंसक मार्ग से शोषणहीन समाज कायम करने के काम में भूदान-यज्ञ पहला कदम है।

मनुष्य-हृदय क्षण में बदल सकता है

प्रश्न : क्या आप जानते हैं कि आपको दान देनेवाले बड़े-बड़े जमींदारों में से बहुत-से स्वार्थ की दृष्टि से दान दे रहे हैं ?

उत्तर : मैं दूसरों की भावनाओं का विश्लेषण नहीं करता। मैं मानता हूँ कि जो भूदान देता है, वह विचार सुनकर देता है और प्रेम से देता है। कोई कल तक प्रेम नहीं करता था, तो क्या आज भी नहीं कर सकता ? मनुष्य का हृदय एक क्षण में बदल सकता है। मनुष्य के हृदय में प्रेम वास करता है।

आजकल दुनिया में जो आर्थिक विचार चल रहे हैं, समाज-रचना में परिवर्तन की जो बातें चल रही हैं, उनमें मुख्य विचार यही है कि उत्पादन के बड़े-बड़े साधन व्यक्ति की मालकियत के न रहें। उन पर समाज की ही मालकियत हो। इस विचार में जमीन का विचार आ जाता है और बड़े कारखाने आदि का भी।

हमारी सारी रचना अपरिग्रह पर आधृत

परन्तु ये विचार हमारे लिए कोई नये नहीं हैं। बल्कि मैं तो कहूँगा कि हमारी सारी रचना अपरिग्रह की नींव पर खड़ी है। यद्यपि कई कारणों से उन विचारों पर जैसा चाहिए, वैसा अमल नहीं हुआ; फिर भी यह तो स्पष्ट है कि हमारे चिंतनशील ऋषियों ने व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन में सदा अपरिग्रह पर जोर दिया है।

आश्रम-व्यवस्था में कांचन-मुक्ति का आदर्श

हमारी आश्रम-व्यवस्था और वर्ण-व्यवस्था को ही ले लीजिये। हमारे चार आश्रमों में से तीन आश्रमों का तो पैसे से सम्बन्ध ही नहीं आता। एकमात्र गृहस्थाश्रम में ही सम्पत्ति के साथ व्यक्ति के सम्बन्ध की कल्पना रखी गयी है। लेकिन गृहस्थाश्रम को भी कायम के लिए आदर्श नहीं माना गया है। उससे जल्द-से-जल्द छूटकर, अपने को ऊँचा उठाकर, वानप्रस्थ और संन्यास की ओर ले जाने की ही कल्पना मानी गयी है। संन्यास की बात को यदि हम अभी अलग रख दें—क्योंकि उसमें आत्ममय बनने और सेवा करने में अपने आपको भूल जाने की बड़ी बात है, जो शायद हर शख्स के लिए संभव न हो—तो भी रएक गृहस्थ की दृष्टि तो हमेशा वानप्रस्थ की ओर ही लगी रहती है और रहनी भी चाहिए।

जीवन के जो तीन आश्रम सबके लिए आवश्यक समझे गये हैं, उनमें आदि और अन्त में व्यक्ति के साथ सम्पत्ति का सम्बन्ध ही नहीं आता। बचपन में यही कल्पना है कि जो गुरु दे, सो खाय। वहाँ श्रीमान् और गरीब के बच्चों में भी

भेद नहीं किया जाता। राजा का लड़का गरीब के लड़के के साथ लकड़ी चीरता है, पानी भरता है, गौएँ चराता है, तभी बाद में विद्या पाता है। ब्रह्मचर्याश्रम की व्यवस्था में श्रीमान् के लड़के के लिए किसी किस्म की रिआयत या सहूलियत की कल्पना तक नहीं की गयी है। और गृहस्थ तो हमेशा यही सोचता है कि मैं सम्पत्ति के पाश से छूटकर कब वानप्रस्थ की ओर जा सकूँगा।

वर्ण-व्यवस्था में भी यही आदर्श

अब वर्ण-व्यवस्था को भी देखिये। वर्ण-व्यवस्था में जिसे मुखिया समझा गया यानी ब्राह्मण, उसके लिए तो ऐच्छिक दारिद्र्य ही दिया गया है। वह सम्पत्ति का मालिक बन ही नहीं सकता। हमारी वर्ण-व्यवस्था में भी सर्वोत्तम आदर्श तो अपरिग्रह का ही माना गया है। दरिद्र-से-दरिद्र ब्राह्मण को भी उसमें अपने लिए मांगने का अधिकार नहीं मिला है। इस आदर्श से हम क्यों च्युत हुए, इसके इतिहास में आज मैं नहीं पड़ूँगा। किंतु इतना यदि हम जान लें, तो काफी होगा कि हमारे आदर्शों में निरंतर अपरिग्रह की भावना रही है।

ब्राह्मण की तरह शूद्र भी अपरिग्रही माना गया है। उसके पास भी केवल सेवा का अधिकार है। इस तरह वर्ण-व्यवस्था में भी आदिम और अंतिम, दोनों को अपरिग्रही कर दिया गया। बीच में जो बच गये—क्षत्रिय और वैश्य, उनमें से एक के पास सत्ता और दूसरे के पास दौलत होती है, यह सही है। लेकिन वे भी अपने जीवन के तीन हिस्से अपरिग्रह में ही बिताते हैं। ब्राह्मण अपरिग्रह के अपने आदर्श के कारण ही पूज्य माना गया है। हमारा इतिहास त्याग की घटनाओं से भरा पड़ा है। हरएक आदमी यही सोचता है कि इस संग्रह को मैं कब छोड़ूँ। हमारा आदर्श अंतिम रूप में मुक्ति ही है। हमारे चिन्तक केवल चित्तशुद्धि तक ही नहीं रुके। चित्तशुद्धि से तो साधना के विशाल मैदान में चलने का आरंभमात्र होता है।

कम्युनिज्म से श्रेष्ठ आदर्श

आजकल के आर्थिक और सामाजिक सुधारसंबंधी पश्चिमी विचार हमारे जीवन-विचारों के सामने बच्चे जैसे हैं। उनमें तो सद्विचार का आरंभमात्र है। किंतु हमारे जीवन-विचारों में सम्पत्तिमात्र को ईश्वरीय वस्तु माना गया है।

'ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किंच जगत्यां जगत्' मंत्र—जिसकी महात्मा गांधीजी ने भी बड़ी प्रशंसा की थी, जो हमारा शिरोमणि-मंत्र है और वेदों के श्रेष्ठ ग्रंथ 'ईशोपनिषद्' में जिसे अग्रस्थान मिला है—हमें यही आदर्श सिखाता है। यह आदर्श कम्युनिज्म से किसी तरह कम नहीं, बल्कि ज्यादा है। हमने लक्ष्मी को ईश्वर ही माना है। इधर लक्ष्मी और उधर विष्णु, दोनों को माता-पिता के समान समझना और अपने को सेवक या बच्चा समझना ही हमारा आदर्श है।

भरत का आदर्श

भरत ने हमारे सामने क्या आदर्श रखा है? जब वह राम से मिलने जा रहा था, तो उसे अपने राज्य की व्यवस्था करने में थोड़ी देर हो गयी। उस समय उसके मुँह से तुलसीदासजी ने ये शब्द कहलवाये हैं : "संपति सब रघुपति कै आही।" आप सारी रामायण देख लीजिये कि भरत ने किस ढंग से राज्य किया। राजसिंहासन पर रामचन्द्र की पादुकाओं की स्थापना करके वह राज्य चलाता था। राज्य का कारोबार सँभालने में तो वह चन्द घण्टे ही देता था और रहता था देहात में। भरत का राज्य ही तो भारतवर्ष के लिए आदर्श है!

कर्ता हम नहीं, भगवान्

उधर 'भागवत' हमें क्या आदर्श सिखाता है? इस संसार में जो भी उत्पन्न होता है, वह सब ईश्वर की शक्ति से ही उत्पन्न होता है। यदि हम अपने हाथों से कुछ उत्पन्न करते हैं, तो उन हाथों को प्राण भी ईश्वर की शक्ति ही देती है। कर्म हम नहीं करते, वह करता है। 'तुम्हें फल का अधिकार ही नहीं है' यह विचार कितनी सूक्ष्म-बुद्धि से निकला है! उसने हरएक आदमी को केवल सेवकभर बना दिया है। सारांश, भक्ति-मार्ग हमें भगवन्-अर्पण का आदर्श देता है, कर्म-मार्ग फलत्याग और वर्ण एवं आश्रम-व्यवस्था अपरिग्रह सिखाती है।

हिम्मत और आत्म-विश्वास से आगे बढ़ो

यह सारी विचार-श्रेणी इतनी ऊँची है कि उसमें 'दान' को एक नित्य-कार्य समझ लिया गया है। कितने विशाल धर्म की भारी विरासत हमें मिली है! आप यदि यह विचार लोगों को समझायें, तो कल से उन्हें अपनी सम्पत्ति फेंक देने के लिए तैयार पायेंगे। इसी विश्वास से तो मुझे यह जमीन मिल

रही है। हमने तो शरीर तक को अपना नहीं माना है। जहाँ शरीर पर से ही स्वामित्व को हटा लिया, वहाँ और तुच्छ चीजों की कीमत ही क्या रही? हमारी विशाल कल्पना के आगे तो सम्पत्ति का परिवर्तन एक खेल है। आज हम दबी जबान से बोलते हैं। अगर हिम्मत से, समझ-बूझकर यह कहने लगें, तो एक मजदूर की लड़की भी अपनी सम्पत्ति फेंकने के लिए तैयार हो जायगी। किन्तु हम हिम्मत से नहीं बोल सकते, इसका कारण यही है कि हम पर पाश्चात्य विद्या का प्रभाव है। आइये, जरा हम अपना वैभव तो खोल देखें। इस प्रकार अगर हम देखेंगे, तो हिंदुस्तान सचमुच एक लक्ष्मीवान् देश बन जायगा। भला जहाँ लोग समाज के लिए ही पैदा करते हैं और खुद केवल प्रसादरूप से उसे लेते हैं, वहां लक्ष्मी क्यों न आयेगी?

काशी

२४-८-'५२

काम-नियमन के बाद अर्थ-नियमन : ४४ :

हमारा यह काम तभी पूरा होगा, जब हरएक गाँव की जमीन सब ग्रामवासियों की हो जायगी और जिस प्रकार आज लोग अपने पैसे बैंक में रखते हैं, उसी प्रकार वे अपनी सारी जमीन गाँवरूपी बैंक में रख देंगे। उसमें से कुटुम्ब की संख्या के अनुसार व्यक्तिगत तौर पर जो जमीन बाँटी जायगी, उस पर लोग खेती करेंगे। हिसाब करके प्रत्येक कुटुम्ब को उतनी-उतनी जमीन दी जायगी। फिर जो बचेगी, वह सामुदायिक तौर पर सबके लिए रखी जायगी। इस तरह गाँव की कुछ खेती व्यक्तिगत होगी और कुछ सामुदायिक। अगर किसी कुटुम्ब की जिम्मेवारी कुछ वर्षों के बाद बढ़ जाय, तो उसे सामुदायिक खेती में से कुछ जमीन और दी जायगी। और अगर जिम्मेवारी कम हुई, तो व्यक्तिगत जमीन कम कर दी जायगी। इस तरह जमीन सबकी चीज है, यह एक धर्म-विचार और अर्थ-विचार सब लोगों को मान्य हो जायगा, तभी मुझे समाधान होगा। अभी जहाँ दान की ही बात चल रही है, वहाँ तो मैं कहता

हूँ कि कम-से-कम एक गाँव में पाँच एकड़ तो प्राप्त कर लेंगे। उसमें से कई गाँव ऐसे निकलेंगे, जो अधिक जमीन देंगे। इस प्रकार जो हवा पैदा होगी, उसीसे यह धर्म-विचार फैलेगा, दुनिया में धर्म-विचार का विकास हमेशा इसी तरह हुआ है।

बहुपत्नीत्व का जमाना बीत गया

प्राचीन काल के महाभारत की ही बात लीजिये। उस जमाने में एक पुरुष के चार-पाँच स्त्रियाँ होना आम बात थी, लेकिन आज किसी साधारण आदमी से कहिये, तो वह भी इसे धर्म-विचार के तौर पर कबूल न करेगा। अब बहुपत्नीत्व का जमाना गुजर गया है। अवश्य ही आज भी कई लोगों के एक से अधिक स्त्रियाँ होती हैं, लेकिन यह विचार अब क्षीण हो गया है। उस जमाने में बहुपत्नीत्व में किसीको नीति-हीनता का आभास तक न होता था, बल्कि कौतुक से उसका वर्णन भी किया जाता था कि अनेक स्त्रियों के साथ लोग किस प्रकार समता से रहते थे। लेकिन आज के जमाने का रंग बदल गया है, आज का समाज एक कदम आगे बढ़ा है। व्यक्तिगत तौर पर उस जमाने के किसी एक व्यक्ति से इस जमाने का कोई एक व्यक्ति उन्नत हो गया है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। लेकिन समाज तो आगे बढ़ा ही है, धर्म-विचार में उत्तरोत्तर शुद्धि होने के कारण व्यवहार के नियम भी सुधरे हैं।

दूसरी मिसाल सजा की लीजिये, सजा के तौर पर अंग-भंग करना एक जमाने में आम बात थी। आँखें फोड़ना, नाक-कान काट लेना आदि दंड आम हुआ करते थे। लेकिन आज सभी देश इसे मानवताविरोधी और जंगलीपन समझते हैं।

विचार-प्रचार से अर्थ-नियमन

जिस प्रकार हमारे समाज ने काम-नियमन किया, शासन-सुधार किये, उसी प्रकार हमारे आर्थिक क्षेत्र में भी सुधार होने चाहिए। कुछ सुधार तो हुए भी हैं। उदाहरणार्थ, अपनी कमाई का ही खुद खाना मामूली बात बन गयी है। अब जमीन सबकी है, यह विचार भी आम करना होगा।

लोग पूछते हैं कि यह कैसे हो? मैं कहता हूँ कि आखिर बहुपत्नीत्व कैसे खतम हुआ? विचारों से ही तो हुआ। मानव वह है, जो मनन करता है। विचार उसका एक प्रतापी शस्त्र है। उससे वह ऐसे काम कर सकता है, जो दूसरे किसी शस्त्र से नहीं हो सकते। विचार से काम जल्द-से-जल्द होते हैं, इसकी मिसाल भी हम दे सकते हैं। मॉर्क्स का विचार आज दुनियाभर में हर जगह चलता है। कई उसे पसन्द करते हैं, तो कई नापसंद भी करते हैं। लेकिन हरएक ने उस पर सोचा है और सबने यह माना है कि मॉर्क्स के विचारों में कुछ सद्-अंश हैं। आखिर उसके पास क्या शक्ति थी? उसके विचार हिंसक शक्ति से नहीं फैले। वह विचार समझानेवाला ऋषि था।

गांधीजी का उदाहरण हमारे सामने प्रत्यक्ष ही है। उन्होंने जो विचार-प्रवर्तन का कार्य किया, उसमें सिवा विचार के कौन-सी शक्ति थी? शंकराचार्य, रामानुज, बुद्ध आदि के उदाहरण तो हम जानते ही हैं। उनके कार्य की प्रतिष्ठा क्या कम है? राजा-महाराजाओं के राज्य चले गये, लेकिन धर्मपुरुषों के शासन आज भी चल रहे हैं। यह सब किस शक्ति से हुआ? समझने की शक्ति से ही। विचार के अनुसार आचरण और आचरण के अनुसार समझाने के शास्त्र पर विश्वास रखनेवालों ने ही दुनिया में कुछ परिवर्तन किया है।

काशी
८-९-'५२

राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ विश्राम : ४५ :

'तम् एतम् ब्राह्मणा विविदिशंति यज्ञेन दानेन तपसा अनाशकेन।'

मेरे लिए आज का दिन (अपना जन्म-दिवस) अंतर्निरीक्षण का था, जो मैंने आज काफी कर लिया। मैंने सोचा कि भूमिदान-यज्ञ का यह कार्य अत्यंत सामयिक है, इस बात को तो सभी लोग समझ गये हैं। मानना पड़ेगा कि पहले यह काम कभी नहीं उठाया गया था। लेकिन मैंने उठाया, यह कहना भी गलत है। मेरी अनुभूति तो यही रही कि परमेश्वर ने यह काम मुझसे लेना

चाहा और आप लोगों से भी लेना चाहता है। तो, इतना कठिन काम करने की जिम्मेवारी जिस पर और जिन पर परमेश्वर ने रखी है, उसे और उन्हें इसके लायक भी बनना चाहिए। हम लोगों के सामने दान और यज्ञ की बात रखते और वे इसका जवाब भी देते हैं। मैं यह नहीं मानता कि साढ़े तीन लाख एकड़ जमीन, जो प्रेमशक्ति से मिली है, कोई छोटी बात है। किंतु जो बात सिद्ध करनी है, उस लिहाज से यह अंशमात्र है। इसलिए हम लोगों को और विशेषतः मुझे अधिक सामर्थ्य की माँग करनी चाहिए। पर माँग वही कर सकेगा, जो अपनी तपस्या नम्रतापूर्वक बढ़ायेगा।

आश्रम का आश्रय-त्याग

ऋषियों ने और भगवद्गीता ने यज्ञ, दान, तप, ये तीन बातें रखीं। मैं सोचता था कि इनमें से यज्ञ और दान शब्द तो मैंने चलाये, पर तप शब्द पर जोर दिये बगैर ये दोनों सिद्ध न होंगे। तीनों मिलकर ही पूर्ण वस्तु होगी। तप हम कार्यकर्ताओं को ही करना होगा। यज्ञ और दान जनता से अपेक्षित हैं, लेकिन तपस्या तो हम लोगों की बढ़नी चाहिए।

'जब तक राम का काज सिद्ध नहीं होता, तब तक मुझे विश्राम कहाँ?' इस दिशा में मैं सोचता रहा, तो इस निर्णय पर आया कि मुझे कुछ त्याग करना चाहिए। पर क्या त्याग करूँ? सोचकर निर्णय किया कि जब तक यह मसला हल नहीं होता, तब तक आश्रम का आश्रय छोड़ दूँ। यह विचार गत पाँच-सात दिनों से तीव्रता से मेरे मन में चल रहा था। आखिर मैंने जो आश्रम बनाया और जहाँ मैं निरंतर सेवा-कार्य करता रहा, जहाँ मैंने देश-सेवा के प्रयोग किये और आज भी जहाँ कांचन-मुक्ति का महान् प्रयोग चल रहा है, वह भूमि त्याग और तपस्या की है। फिर भी आश्रम का हमें एक प्रकार का आश्रय भी तो है। मैंने सोचा कि जब तक भूदान-यज्ञ का कार्य सिद्ध न होगा, तब तक आश्रम को आसक्तिरूप समझकर छोड़ ही देना चाहिए। मैंने यह निर्णय कर लिया और आप सबकी साक्षी में भगवान् के नाम पर मैं उसे प्रकट कर रहा हूँ।

रघुपति-कर-बाण

परसों हमारे पूज्य भाई श्री किशोरलालजी (मशरूवाला) देह छोड़कर चले गये, तो उससे मेरी यह भावना और भी बढ़ गयी, अधिक तीव्र हो गयी। मैंने सोचा, जो भी थोड़ा समय परमेश्वर ने हमारे हाथ में दिया है, उतने में उसका सौंपा हुआ कार्य हमें कर लेना चाहिए। वह चाहे पूरा हो या न हो, इसकी चिंता हमें न करनी चाहिए। वह तो परमेश्वर के जिम्मे छोड़ देना चाहिए। पर हम उसके लिए पूरी ताकत लगायें। इसी दृष्टि से मैं इस निर्णय पर पहुँचा। जब मैंने यह काम शुरू किया था, तब मेरे मन में यह कल्पना थी कि बीच-बीच में आश्रम जाया करूँगा। किन्तु अब वह विचार टूट गया। अब यह पूर्ण अर्थ में "रघुपति-कर-बाण" हो गया।

मैं आप लोगों से इस संकल्प में बल चाहता हूँ। भीतर से तो बल बहुत है, लेशमात्र भी कमजोरी अनुभव नहीं करता। पर यह काम महान् है, इसलिए सामुदायिक इच्छा-शक्ति का बल इसमें अवश्य चाहिए। आप मेरे लिए प्रार्थना करें कि परमेश्वर मेरा संकल्प पूर्ण करे।

हमारी कसौटी

मैंने विश्राम करने या आश्रम में न जाने का जो निश्चय किया है, वह विचारपूर्वक ही किया है। आप जानते ही हैं कि मैंने अपनी जवानी के ३० साल शांत उपासना, ध्यान-योग, कर्म-योग, भक्ति-योग और रचनात्मक काम में बिताये हैं। मैं कोई प्रचारक नहीं हूँ। जो प्रचारक-स्वभाव का होता है, वह अपनी जवानी इस प्रकार नहीं बिताता और न बुढ़ापे में इस प्रकार घूमने के लिए ही निकल पड़ता है। मैं तो रचनात्मक काम में विश्वास रखने-वाला एक नम्र साधक, सेवक और शोधक हूँ। मुझे रचनात्मक काम से ही संतोष और समाधान मिलता है। किन्तु अपने गाँवों की समस्याओं का निरी-क्षण करते हुए मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि हमारा बुनियादी सवाल भूमि का सवाल है। अहिंसात्मक तरीके से इसे हल करने की युक्ति खोजनी चाहिए। अगर यह मसला हल न कर सके, तो हमें अहिंसा का दावा छोड़ देना चाहिए। जहाँ अहिंसा का दावा गया, वहाँ रचनात्मक काम भी चला गया। हाँ, यंत्रीकरण द्वारा

आप रचना कर सकते हैं। लेकिन वह तो नाम-मात्र की रचना होगी। वह देश को फौजी बना देगी। मुझे उसमें श्रद्धा नहीं है। अगर भारतीय संस्कृति, अहिंसा, सर्वोदय आदि पर हमें श्रद्धा हो, तो भूदान-यज्ञ का काम उठाना होगा। तभी रचनात्मक काम बढ़ सकते हैं, नहीं तो सारे काम निस्तेज हो जायँगे। जब मेरी यह पूर्ण निष्ठा हो गयी, तभी मैंने निश्चय किया कि आश्रम में नहीं रहूँगा।

मैं चाहता हूँ कि अपने को गांधीजी के शिष्य माननेवाले सभी लोग इसे सोचें कि मैंने जो निश्चय किया, वह सही है या गलत। अगर गलत हो, तो मुझे समझायें। जैसा कि मैंने कहा, मैं तो रचनात्मक काम ही करना चाहता हूँ और वही मैंने तीस साल तक किया भी है, इसलिए मेरे इस निर्णय से रचनात्मक काम को कोई हानि पहुँचने का सम्भव नहीं है। यदि मेरे काम को वे ठीक समझें, तो वे मुझे इसमें पूरा सहयोग दें। बापू के सत्याग्रह में जिस प्रकार लोग अपने-अपने रचनात्मक काम छोड़ कूद पड़ते थे, जिस प्रकार युद्ध के समय कोई सिपाही उत्सुक हो उठता है, उसी प्रकार आप इस आंदोलन में सहयोग दें, ऐसी मेरी माँग है। औरों से भी मैं यही माँगता हूँ कि वे जितनी मदद दे सकें, इस काम के लिए दें।

काशी
११-९-'५२

विहार

[सितम्बर १९५२ से दिसम्बर १९५२]

आज सारी दुनिया दूसरे ही रास्ते जा रही है। धर्म से हो या अधर्म से, हर 'किसी तरीके से लेना, बटोरना और संग्रह करना ही दुनिया जानती है। लेकिन अब देने का समय आ गया है। लोग कहते हैं, 'देना उल्टी गंगा बहाना है।' लेकिन यह उल्टी गंगा बहाने का काम नहीं, सीधी गंगा बहाने का काम है। अगर हम एक-दूसरे से नफरत कर झगड़े से जीना चाहें, तो वह ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध होगा, उससे हमें दुःख मिलेगा।

भोग के साथ दान लाजिमी

आप अखबार पढ़ते होंगे कि कोरिया में युद्ध चल रहा है और सुलह की बातें भी चल रही हैं। दोनों साथ-साथ चल रहे हैं। वहाँ आग और पानी दोनों हैं। पर पानी के नाम पर मिट्टी का तेल, जो पानी के समान पतला रहता है, छिड़क रहे हैं। वे जितना यह पतला पानी छिड़क रहे हैं, उतनी ही आग भड़क रही है। सुलह की जो बातें चलीं, उनकी किताबों का ढेर सात फुट ऊँचा हो गया और उसका वजन पाँच सौ पौण्ड है; फिर भी युद्ध चल रहा है। शायद इस युद्ध से सारी दुनिया को आग भी लग जाय। यह सब इसीलिए हो रहा है कि हम सिर्फ लेने की बात करते हैं, देने की नहीं।

बचपन में हम अपने माता-पिता से लेते रहे हैं। भगवान् ने हमें यह तालीम दी है। इसका मतलब यह है कि अपने से जो अज्ञानी हैं, दुःखी हैं, छोटे हैं, उन्हें देना ज्ञानियों, सुखी लोगों और बड़ों का काम है। लेकिन कौन बड़ा है और कौन छोटा? अगर पाँच रुपये कमानेवाला दो रुपये कमानेवाले से बड़ा है और दस रुपया कमानेवाले से छोटा है, तो 'छोटा और बड़ा' यह कहने भर की बात है। हरएक को सोचना चाहिए कि मुझे कुछ-न-कुछ दिये बगैर खाने का अधिकार नहीं है। भोग के साथ दान लाजिमी है। भोग के साथ पथ्य न हो, तो वह रोग बन जाता है। सिर्फ शारीरिक और मानसिक

नहीं, बल्कि द्वेष, झगड़े, महायुद्ध आदि सारे रोग समाज-शरीर में पैदा होते हैं। निरन्तर दान देते रहना, यही भोग के लिए उपाय है। उसीसे भोग कल्याणकारी होता है, विनाशकारी नहीं।

आज दुनिया परेशान है

आज बड़े-बड़े कूटनीतिज्ञ और नेता, जो जनता द्वारा चुने गये हैं, सारा दिमाग लगा-लगाकर क्या कर रहे हैं? मसले पैदा होते हैं, लेकिन सुलझते नहीं। कोरिया में तो युद्ध चल ही रहा है। कश्मीर में धुआँ निकल रहा है। लंका के हिन्दुस्तानी सिर्फ वोट देने का अधिकार चाहते हैं, लेकिन वह भी उन्हें नहीं मिलता। उधर दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों को हरिजनों की तरह अलग रखा जाता है, जब कि आज हमारे देश में भी हरिजनों की हालत वैसी नहीं रही और हमारे संविधान ने सबको समान अधिकार दे दिया है। इसलिए अफ्रीका में हिन्दुस्तानी लोग सत्याग्रह कर रहे हैं। इस तरह आज दुनिया में ऐसा कोई देश नहीं, जहाँ असली स्वराज्य का सुख और आनंद हो।

लोग कहते हैं कि हिन्दुस्तान में स्वराज्य मिलने के बाद भी आनन्द नहीं है। लेकिन मैं पूछता हूँ कि किस देश में आनंद है? क्या अमेरिका में सुख है? नहीं। वहाँ के गरीब भी दुःखी हैं। रूस में स्वर्ग है, यह सोचना भी बिलकुल गलत है। सुख के लिए कोशिश तो सबकी है, पर उनका ढंग गलत है। इसलिए अब हमें केवल देने की बात करनी है।

दान में भी यह कंजूसी !

एक दिन सुबह एक व्यक्ति एक एकड़ भूमि भक्ति से देने आया था, जिसके पास तीन सौ एकड़ जमीन थी। मैंने उसे समझाया कि 'इतना कम देने से आपकी बदनामी होगी। मैं सबकी इज्जत बढ़ाना चाहता हूँ—श्रीमानों की और गरीबों की। यदि मुझे आश्रम के लिए जमीन की आवश्यकता होती, तो मैं यह ले लेता। लेकिन मैं तो आज दरिद्रनारायण का प्रतिनिधि बनकर माँगता हूँ।' मेरे समझाने पर उसने बिना किसी हिचकिचाहट से तीस एकड़ भूमि दी। फिर मैंने सोचा कि लोग ऐसा क्यों करते हैं? 'पत्रं पुष्पं फलं तोयम्' यह हमें जो सिखाया है, उसीका यह असर होगा। दो पैसे की

मिश्री देकर हम भगवान् से अपने को आपत्ति से छुड़ाने की प्रार्थना करते ही हैं। जहाँ दान की प्रेरणा है, वहाँ भी कंजूसी है, यह देख मैं सावधान हो गया। मैंने तय किया कि छोटा-सा दान नहीं लूँगा। जो दान अभिमानरहित होगा, वही लूँगा। मेरा विचार समझकर जो दान में मिलेगा, वही मुझे चाहिए, लौकिक रूप का दान नहीं चाहिए। एक बार एक दस हजार एकड़वाले ने मुनीम के द्वारा सौ एकड़ देना चाहा। लेकिन मैंने वह दान लेने से इनकार कर दिया, क्योंकि मेरा काम दूसरे ढंग का है।

त्याग की पृष्ठभूमि पर क्रांति

कम्युनिस्ट लोगों का कहना है कि इससे क्रांति रुक जायगी। लेकिन वे जानते ही नहीं कि क्रांति किस चिड़िया का नाम है। क्रांति हरएक देश में एक ही ढंग से नहीं होती। वे किताबें पढ़कर कहते हैं कि मार्क्स ने जो शास्त्र बनाया है, उसीके अनुसार क्रांति होगी। मैं उनसे कहना चाहता हूँ कि हिंदुस्तान में क्रांति किस ढंग से हो सकती है, यह मैं आपसे बेहतर जानता हूँ। मैं वेदों से लेकर गांधी तक के सारे विचार घोलकर पी गया हूँ। सब विचारों का मैंने अध्ययन किया है। इस देश का अपना ढंग है, अपना मिशन और अपना धर्म है। जैसे 'कुल-धर्म' होता है—एक-एक कुल में एक-एक गुण का विकास होता है और उसीके अनुसार चलना उसका धर्म होता है—वैसे ही देश का भी धर्म होता है। हिंदुस्तान में आत्मा का ज्ञान प्राचीन काल से चला आ रहा है। जब सारी दुनिया घोर अंधकार में सोयी हुई थी, तब यहाँ आत्मज्ञान का स्वच्छ प्रकाश फैला हुआ था। वेदांत समझे बिना यहाँ कोई भी क्रांतिनहीं हो सकती। यदि आप आत्मा के टुकड़े करेंगे, वर्ग बनायेंगे, कटुता और द्वेष फैलायेंगे, तो उससे क्रांति नहीं होगी। कम्युनिस्टों ने क्रांति को ढाँचे में ढाला है। इससे क्रांति ही मिट जाती है। वह तो रूढ़ मार्ग हो जाता है।

यह मेरा विचार समाज-रचना की क्रांति का है। कार्यकर्ता उदार-बुद्धि के और दयालु होने चाहिए—अपने पास का देनेवाले और क्रांतिकारी होने चाहिए। भूतदया से दिया हुआ दान मैं लेना नहीं चाहता। हमें विचार देना है और मिट्टी लेनी है। हम एक बड़ी चीज देते हैं और छोटी माँगते हैं।

कहाँ मिट्टी और कहाँ विचार! हम करोड़ की चीज देते हैं और आने की माँगते हैं। हम ऐसे उदार दाता हैं कि जितना आपसे लेते हैं, उससे हजार-गुना देते हैं, आपसे कुछ भी छीनते नहीं। अगर आपने विचार समझे बगैर दान दिया, तो यह काम लाख साल में भी न होगा। लेकिन एक बार विचार को समझ लिया, तो अपना सर्वस्व दे देंगे। हिंदुस्तान में सर्वस्व अर्पण करने वाले त्यागी कई निकले हैं। यहाँ त्याग का नाम सुनते ही लोगों के दिलों में उत्साह पैदा हो जाता है। इसलिए यहाँ जो क्रांति होगी, वह त्याग की पृष्ठभूमि पर और त्याग से ही होगी।

हम दुनिया के मार्गदर्शक हैं

आज सारी दुनिया ऐसे झमेले में पड़ी है कि वह कोल्हू के समान गोल-गोल घूम रही है, प्रगति नहीं कर रही है। सारे देश के नेता आज के प्रवाह में फँसे हैं। उन्हें बाहर निकलने की हिम्मत नहीं। अगर आज अमेरिकावाले ईसा के नाम पर २५ दिसम्बर की तारीख मुकर्रर कर यह ऐलान कर दें कि उस दिन से हम सेना नहीं रखेंगे, तो क्या उसके बाद रूस उस पर हमला करेगा? कभी नहीं, क्योंकि उससे नैतिक हवा पैदा होगी। उसका असर सारी दुनिया पर होगा। लेकिन अमेरिकावाले यह नहीं करते, क्योंकि वे इतनी हिम्मत ही नहीं कर सकते। रूसवाले भी ऐसी हिम्मत नहीं करते और न हिन्दुस्तान के लोग ही करते हैं। हिन्दुस्तान पाकिस्तान से डरता है और पाकिस्तान हिन्दुस्तान से। इसलिए दोनों सेनाएँ रखते हैं।

अमेरिकावाले कहते हैं कि हम न सिर्फ अपनी रक्षा के लिए, बल्कि सारी दुनिया की रक्षा के लिए और दुनिया में शान्ति प्रस्थापित करने के लिए सेना रखते हैं। वे बलवान् होने के कारण सेना छोड़ नहीं सकते और हम दुर्बल होने के कारण सेना छोड़ नहीं सकते। यह माया देवी का फेरा है। सब अपनी-अपनी बात चलाने की कोशिश करते हैं। सारी दुनिया में शांति कैसे रखी जा सकती है, यह वे सोचते नहीं, क्योंकि प्रवाह में फँसे हुए हैं। फिर भी परमेश्वर की कृपा से हम प्रवाह में उतने फँसे नहीं हैं। हमारी आजादी की लड़ाई दूसरे ढंग की थी। इसीलिए हिंदुस्तान आज इस हालत में है कि

वह अपना रास्ता चुन सकता है—हिंसा या अहिंसा का। दोनों का नियोजन कर सकता है। नये-नये तरीके, जो दूसरों को सूझते नहीं, हमें सूझ सकते हैं। इसलिए नहीं कि हमें अक्ल ज्यादा है। हम तो छोटे हैं, लेकिन हमारे यहाँ आत्मज्ञान की परंपरा चलती आ रही है।

मैं बुद्ध भगवान् के चरण-चिह्नों पर

अभी कवि ने गाया कि विनोबा बुद्ध भगवान् के चरण-चिह्नों पर चला है। यद्यपि तुलना करना गलत है, फिर भी उसने जो कहा, वह सही है। लेकिन बुद्ध भगवान् तो महान् थे और हम अत्यंत क्षुद्र हैं। उनकी तुलना में हम कुछ भी नहीं जानते, अगर वे एक रुपये का जानते हैं। तो हम एक पाई का। फिर भी हम ज्यादा जानते हैं। क्योंकि हम उनके कंधों पर बैठे हैं, जिस तरह बाप के कंधे पर बैठा हुआ बच्चा बाप से छोटा होने पर भी बाप से ज्यादा देखता है, इसी तरह हम उनसे बहुत छोटे होते हुए भी अधिक जानते हैं। उनकी तुलना में हमारी कोई हस्ती ही नहीं है। फिर भी बुद्ध के जमाने में जो काम नहीं बन सकता था, वह आज बन सकता है, क्योंकि उनका अनुभव हमारे पीछे है। हम छोटे हैं, पर हमारा कार्य बड़ा है।

दुर्गावती (बिहार)
१४-९-'५२

बने-बनाये शास्त्र से क्रान्ति न होगी : ४७ :

मैंने कम्युनिस्टों की आलोचना जरूर की और करता भी हूँ, क्योंकि मैं उनको अपना भाई समझता हूँ। वे गलत रास्ते पर जा रहे हैं, फिर भी मैं अपना कर्तव्य मानता हूँ कि उन्हें समझाऊँ। मैं चाहता हूँ कि वे भी मुझे ठीक तरह से समझें और फिर मुझ पर टीका करें। मैंने उन पर जो टीका की, वह कटु नहीं, स्पष्ट थी। उन्होंने क्रांति का एक शास्त्र बनाया है, लेकिन मेरा कहना है कि ऐसे बने-बनाये शास्त्र के अनुसार क्रांति नहीं होती। वे तो

कार्ल मार्क्स के वाक्य को ही वेद-वाक्य के समान मानते हैं; लेकिन अगर आज कार्ल मार्क्स खुद होता, तो उसे भी इस तरह की विचार-धारा पसन्द न आती। अगर वह आज होता, तो इस पर गौर करता और नयी बातें सुझाता। हम पुस्तकनिष्ठ या शब्दनिष्ठ बनेंगे, तो क्रांति नहीं हो सकती। एक देश में जिस ढंग से क्रांति हुई, उसी ढंग से दूसरे देश में नहीं होती। क्रांति तो देश, काल, परिस्थिति पर निर्भर रहती है।

यह जो नहीं समझते, उन्हें मैं समझाऊँगा। मेरा उन पर प्रेम है। उनमें से कई लोग मेरे मित्र हैं। उन्होंने एक-दो जगह मुझे मानपत्र और दानपत्र भी दिये हैं। फिर भी अगर वे मानते हैं कि मेरा रास्ता ठीक नहीं है, तो उन्हें यह मानने का पूरा हक है। लेकिन मैं उनसे कहता हूँ कि आप जरा सब्र रखो और देखो। जो आप चाहते हैं, वही मैं भी चाहता हूँ। वह है गरीबों का हित। इसलिए बाहर की चीजें यहाँ लाने से कुछ फायदा नहीं होगा।

बेदखल मत होना

कम्युनिस्टों ने मुझे बेदखलियों के बारे में सवाल पूछा है। मैंने तो बेदखलियों का अत्यन्त जोरदार विरोध किया है। लेकिन मैं नारे लगाना नहीं जानता। मैंने काशी में किसानों से कहा था कि आप बेदखल क्यों हो रहे हैं? आप अपनी जमीन पर शान्ति से डटे रहिये। अगर कोई आपको पीटना भी चाहे, तो पीटने दो। दुःशासन के हाथ के समान पीटनेवाले के हाथ पीटते-पीटते थक जायँगे। मेरे इस कथन से सब जाग्रत हो गये और फिर उत्तर प्रदेश की सरकार ने बेदखली बन्द कर दी। मैं चाहता हूँ कि बिहार में भी यह हो जाय। मैं तो बेदखल की हुई जमीन भी दान में माँगता हूँ। मैं वह जमीन उन्हींको दूँगा, जिन्हें बेदखल किया गया हो। इससे बेदखल करनेवाले के पाप भी मिट जायँगे, वे शुद्ध होंगे। मैं उन्हें दोष देना नहीं चाहता, उन्हें भी शुद्ध करना चाहता हूँ। लेकिन मैं तो काम ही करना जानता हूँ, नारे लगाना नहीं।

मैं ईश्वर का नाम नहीं छोड़ सकता !

कम्युनिस्ट लोग हृदय-परिवर्तन की हँसी उड़ाते हैं, लेकिन मैं कहता हूँ कि हृदय-परिवर्तन तो आपका (कम्युनिस्टों का) ही हुआ है। कार्ल मार्क्स की

एक किताब ने आपका हृदय-परिवर्तन किया है। क्या मार्क्स लाठी और पिस्तौल लेकर आप पर साम्यवाद लादने आया था ? आप तो पुस्तक के कारण ही साम्यवादी बने हैं। शंकराचार्य ने जिस तरह विचार-प्रचार का काम किया, उसी तरह हमें भी करना है। हमें सबको समझाना होगा। मेरी सभा में हजारों लोग आते हैं और मेरी बातें सुनकर घर जाकर कहते हैं कि 'सूरज की रोशनी, हवा और पानी की तरह जमीन भी परमेश्वर की देन है।' इससे बढ़कर कम्युनिस्ट और क्या चाहते हैं ? लेकिन अगर वे परमेश्वर के नाम का ही विरोध करते हैं, तो मैं उनसे कहूँगा कि उसका नाम न लेना मुझसे नहीं होगा। आप मुझे माफ करें।

भूदान की प्रेरणा कहाँ से ?

मुझसे पूछा गया है कि 'क्या यह सही है कि तेलंगाना से ही आपको भूदान-यज्ञ की प्रेरणा मिली ?' इस पर मेरा कहना है कि भूदान-यज्ञ की प्रेरणा मेरे मन में चार-पाँच साल से चल रही थी। गांधीजी के बाद जब मैं दिल्ली में मेवातों और शरणार्थियों में काम करता था, उसी समय यह समस्या मेरे सामने खड़ी हुई थी। पाकिस्तान से आनेवाले शरणार्थियों में हरिजनों को जमीन नहीं मिल रही थी। इसीलिए मैंने उसके लिए कोशिश की और पंजाब-सरकार से अपील की। फिर सरकार ने जाहिर किया कि हरिजनों के लिए पाँच लाख एकड़ जमीन रखी जायगी। मैंने सरकार के इस काम की प्रार्थना-सभा में प्रशंसा भी की थी। लेकिन उसके बाद कुछ परिस्थितियों के कारण वह ऐसा नहीं कर सकी। इस पर कितनों ने दुःख प्रकट किया। रामेश्वरीजी नेहरू को बहुत दुःख हुआ। लेकिन मैंने उन सबसे कहा कि सब्र करो। उसके बाद इस विषय पर सोचता रहा। जब मैं तेलंगाना में घूमता था, तब एक जगह हरिजनों ने जमीन की माँग की। मैंने सोचा कि जरा गाँववालों के दिलों को टटोलें। फिर मैंने हिम्मत करके जमीन माँगी। वहाँ मुझे जमीन मिली और फिर इस यज्ञ का आरम्भ हुआ।

इसका मतलब यह है कि भगवान् ही इस काम को चाहता है। मेरे इस यज्ञ का आरम्भ तेलंगाना में जरूर हुआ है, लेकिन कम्युनिस्टों के कारण नहीं

हुआ। मैं कम्युनिस्टों को विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मेरे मन में उनके प्रति बुरा भाव नहीं है, अच्छा ही भाव है। किसीके मन में क्या भाव है, यह जानने के लिए भगवान् ने हमारी छाती पर कोई खिड़की नहीं रखी, यह उसकी गलती हो गयी। अगर होती, तो आप देखते कि मेरे मन में आपके प्रति कितना प्रेम है।

बक्सर
२४-९-'५२

क्रान्ति संक्रान्ति बने

: ४८ :

आज से ढाई हजार साल पहले आपके इस प्रदेश में एक महान् पुरुष का आविर्भाव हुआ था। उसने विश्वविजय कैसे प्राप्त की जाय, इसका एक मंत्र हमें दिया है। उनके प्रेम और निर्वैरता के संदेश का परिणाम न केवल हिंदुस्तान पर, बल्कि दुनिया के दूसरे देशों पर भी हुआ। आज जब कि दुनिया में लड़ाई-झगड़े और कशमकश चल रही है, तो उनके विचारों का स्मरण दुनिया को अधिक हो रहा है। दुनिया के सारे विचारक आज उसी नतीजे पर आ रहे हैं, जिस पर भगवान् बुद्ध ढाई हजार साल पहले आये थे।

'अक्रोधेन जिने क्रोधम्'

उन्होंने कहा :

> अक्कोधेन जिने कोधं, असाधुं साधुना जिने।
> जिने कदरियं दानेन, सच्चेनालिकवादिनम्॥

अगर हमारे सामने गुस्सा नजर आता हो और हम उसे जीतना चाहते हों, उस पर फतह हासिल करना चाहते हों, तो हममें परम शान्ति चाहिए। सामने-वाले में जितनी मात्रा में क्रोध होगा, उतनी ही मात्रा में हममें शान्ति होनी चाहिए। शान्ति से ही हम क्रोध को जीत सकते हैं। भगवान् बुद्ध ने किसीको भी क्रोध के वश होने की बात नहीं कही। जो समझता है कि उन्होंने दुर्बलता सिखायी, वह गलत समझता है। तलवार देखकर जो भाग जाता या

कायरता से तलवार के वश होता है, उसकी अहिंसा का उन्होंने प्रचार नहीं किया। उन्होंने तो हमें विचार-मंत्र दिया कि अक्रोध से क्रोध को जीतना चाहिए। यदि हम दूसरे का शस्त्र लेकर उसी पर हमला करना चाहते हैं, तो दुनिया में शान्ति निर्मित नहीं हो सकती। अक्रोध से लड़नेवाला ही क्रोध को जीत सकता है।

परशुराम ने भी यह प्रयोग किया था। उन्मत्त क्षत्रियों को सबक सिखाने के लिए उन्होंने ब्राह्मण होते हुए भी शस्त्र धारण किया और एक बार निःक्षत्रिय पृथ्वी बनायी। लेकिन उससे क्षत्रिय नष्ट नहीं हुए। इसलिए फिर से उसने शस्त्र धारण किया। इसी तरह उसने इक्कीस बार क्षत्रियों को नष्ट करने की कोशिश की, फिर भी क्षत्रिय नामशेष नहीं हुए। वे कैसे नामशेष हो सकते थे, जब कि परशुराम ने खुद हाथ में शस्त्र लेकर क्षत्रियों की वृद्धि की? वह खुद क्षत्रिय बन गया। जैसा बीज बोया, वैसा फल पाया। उसने क्षत्रियत्व का बीज बोया, इसलिए उसमें से अनन्त गुणा क्षत्रिय ही निकल सकते थे। ये सारे पूर्वजों के अनुभव भगवान् बुद्ध के सामने थे। उन्होंने बिहार के लोगों को उनकी ही भाषा में यह सन्देश सुनाया कि इस दुर्जनता के वश मत होना, भागना नहीं। दुर्जनता पर सत्ता चलाना चाहते हो, तो उसे अपने हृदय में प्रवेश मत करने दो। अगर उसने प्रवेश पाया, तो वह हमारे हृदय को भी जीत लेगी। इसीलिए असाधुत्व को पराजित करने के लिए साधुत्व आवश्यक है। कंजूसपन को दूर करने के लिए उदारता ही चाहिए। सत्य से मिथ्या का लोप करना चाहिए। अंधकार से अंधकार मिट नहीं सकता, बल्कि गहरा और दुहरा हो सकता है। उसे मिटाने के लिए उसके विरुद्ध शक्ति याने प्रकाश चाहिए। बच्चे के अज्ञान को मिटाने के लिए उस्ताद में ज्ञान होना चाहिए। अज्ञान के सामने अज्ञान खड़ा करके हम उसे नहीं जीत सकते। इस तरह की मिसालें हम अपने जीवन में देखते हैं।

हिंसा और विज्ञान-युग

लेकिन जहाँ समाजव्यापी कार्य करना पड़ता है, राष्ट्रीय दृष्टि से काम करना पड़ता है, वहाँ मनुष्य अभी तक इस निर्णय पर नहीं आया कि अक्रोध से क्रोध

को जीता जा सकता है। उस क्षेत्र में अभी भी प्रयोग चल रहे हैं। अमेरिका और रूस ऐसे प्रयोग कर रहे हैं। दूसरे छोटे-छोटे देश भी उनके चरण-चिह्नों पर चलते हैं और छोटे-मोटे प्रयोग करते हैं। वे प्रयोग क्या हैं? एक देश के पास एटम बम है, तो दूसरा उससे भी बढ़कर एटम बम या हाइड्रोजन बम बनाने की कोशिश करता है। इस तरह उत्तरोत्तर संहारक शस्त्रों का संशोधन चलता है। वे समझते हैं कि इससे शान्ति निर्माण हो सकेगी, हम दुनिया को सुख दे सकेंगे और 'वन वर्ल्ड' बना सकेंगे। इसीलिए उत्तम-से-उत्तम शस्त्रों से वे अपने को सुसज्जित रखने की कोशिश करते हैं।

किन्तु इन प्रयोगों से शान्ति नहीं, अशान्ति ही बढ़ सकती है। विज्ञान के इस युग में जो शस्त्र बढ़ायेंगे, वे दुनिया का खातमा ही करेंगे। लेकिन वे ऐसा इसलिए कर रहे हैं कि वे इस बात को नहीं समझते। वे एक प्रवाह में बह रहे हैं। विश्वयुद्ध का सूत्र एक पुरुष के या थोड़े-से पुरुषों के हाथ में नहीं रहता। सारे एक प्रवाह में बह जाते हैं। 'प्रकृतिस्त्वाम् नियोक्षति' वे अपने प्रकृति के अनुसार काम करते हैं। इसीलिए वह कोई नियोजन या आयोजन नहीं होता, अनुवर्तन हो जाता है। गत महायुद्ध में चर्चिल से कितनों ने पूछा कि आप युद्ध के उद्देश्य बताइये। कुछ दिन तक उसने कुछ तो बताया, लेकिन एक दिन साफ कहा कि 'युद्ध का उद्देश्य विजय हासिल करने के सिवा और क्या हो सकता है?' इसका मतलब यह है कि हम युद्ध में फँस गये हैं और मरते दम तक लड़ने के सिवा हमारे हाथ में कुछ नहीं है। इस तरह सब लोग युद्ध में फँस जाते हैं। जो जीतता है, वह भी हारता है और जो हारता है, वह खतम हो जाता है। इस युद्ध में अब जीत भी हार बन गयी है।

युद्ध के बाद फिर शांति का जमाना आता है, लेकिन वह शांति नहीं होती। निद्रा या थकान की प्रतिक्रिया होती है। दिनभर उद्योग करने के बाद व्यक्ति के लिए रात को सोना लाजिमी है। लेकिन सोने के बाद दूसरे दिन वह फिर से उत्साहित होकर काम करता है। इसी तरह युद्ध और शांति का चलता है। अब लोग कबूल भी करते और कहते हैं कि शांति नहीं, ठंडी लड़ाई चल रही है। आज आप कोई भी अखबार खोलकर देखिये, तो किसीका खून

हुआ है, किसीको गद्दी पर से उतारा गया है, किसीको अर्धचन्द्र लगाया है—यही सारा किस्सा उसमें पढ़ने को मिलेगा।

भूमि-समस्या के निमित्त से धर्म-चक्र-प्रवर्तन

लेकिन इसके लिए क्या उपाय है? मानव को अब चिन्तन करने की जरूरत है। मानव का दिमाग अगर सोचने लायक किसी देश में है, तो वह भारतवर्ष में है, क्योंकि यहाँ संस्कारों का एक प्रवाह चला आया है। यहाँ पर कुछ गुणों का विकास हुआ है। हरएक देश के अपने-अपने गुण होते हैं। भारत के गुण भारतीयत्व याने अहिंसा, निर्वैर-वृत्ति ही है। वह तो विजय का साधन है। जो हार मानता है, डरपोक बनकर चुप बैठता और आलसी है, वह कभी निर्वैर-वृत्ति नहीं बन सकता। वह अहिंसा अन्दर से रखता है, लेकिन उससे तो बेहतर वह है, जो बाहर से लड़ लेता है। "मरणान्तानि वैराणि"—मरने के बाद उसका वैर खतम हो जाता है। मन के अन्दर वैर रखनेवाला अहिंसक नहीं है। वह तो बहुत ही भयानक है। जो बाहर से नहीं लड़ता, वह भयंकर हिंसक है। निर्वैरता निष्क्रियता नहीं है। वह कोई 'निगेटिव' (अभावरूप) अवस्था नहीं, बल्कि क्रियात्मक 'पाजिटिव' (भावरूप) अवस्था है। वह एक शक्ति है। उस शक्ति के सामने टिकनेवाला बल, जिसे आज तक दुनिया ने नहीं देखा, वह है आत्मतत्त्व। इसीलिए आज मेरा यह प्रयत्न चल रहा है कि उसको भूदान-यज्ञ द्वारा प्रकट करें।

भगवान् बुद्ध ने भी अहिंसा को फैलाने की चेष्टा एक मसला लेकर की थी। उस समय यज्ञ में पशु-हिंसा होती थी। उसे देखकर उनका हृदय व्यथित हो गया और उन्होंने यज्ञ की पशु-हिंसा का बाहरी मसला हाथ में लिया और उसे हल करते-करते अहिंसा-धर्म दुनिया को सिखाया। वह धर्म जीतने का धर्म है। इस विजय-धर्म का प्रवर्तन उन्होंने किया, केवल एक तत्त्व-विचार का प्रचार नहीं किया और न किया ही जा सकता है। तुलसीदासजी ने कहा है: 'सरसै ब्रह्मविचार प्रचारा।' भक्ति, कर्म और तत्त्व-विचार का त्रिवेणी-संगम जिनमें हो, वही सच्चा भक्त है। भक्ति को उन्होंने गंगा कहा, कर्म को यमुना और तत्त्व-विचार को सरस्वती। ब्रह्म-विचार का प्रचार याने गुप्त सरस्वती नदी!

इसीलिए केवल ब्रह्म का तत्त्व-विचार अव्यक्त है, व्यक्त नहीं। उसे व्यक्त करना है, तो कोई प्रत्यक्ष कार्य, व्यावहारिक मसला हाथ में लेना चाहिए। फिर उसके साथ-साथ तत्त्व-विचार का प्रचार हो जाता है। हम बुद्ध का अनुसरण कर रहे हैं। यह धर्म-चक्र-प्रवर्तन का काम है। मैं तो तुच्छ हूँ। लेकिन बुद्ध ने जो किया, वही हम भी कर रहे हैं। भूमिहीनों की समस्या इसीलिए हमने आज उठायी है।

प्रेम से ही मसला हल होगा

लोग मुझसे पूछते हैं कि क्या प्रेम के तरीके से यह मसला हल होगा? मुझे ताज्जुब होता है कि जिन्होंने सारा जीवन कुटुंब के प्रेम के आधार पर बिताया, प्रेम के अनुभव के बिना जिनका एक भी दिन नहीं जाता, वे ही मुझसे ऐसा सवाल कैसे पूछते हैं? मैं कहता हूँ कि मानव में प्रेम-शक्ति है या द्वेष-शक्ति, इसका फैसला एक कसौटी पर रखकर हम कर सकते हैं। मानो, किसीका खून हुआ, तो फौरन तार जाता है और अखबार में भी वह बात छप जाती है। लेकिन इससे उल्टा दृश्य अगर किसीने देखा कि कोई माता अपने बच्चे को प्यार से दूध पिला रही है, बीमार बच्चों के लिए रात को लगातार दस-दस दिन जाग रही है, तो क्या उस दृश्य का आप तार भेजेंगे और अखबारवाले भी छापेंगे? आखिर वह क्यों नहीं होता? इसीलिए कि प्रेम तो मनुष्य का स्वभाव है। लेकिन उसके विरुद्ध कोई चीज बनी, तो उसका रिकार्ड इतिहास में आता है और अखबार में छापा जाता है। मनुष्य का जीवन प्रेममय है। वह प्रेम से ही आदि से अन्त तक रहता है। उसका जन्म प्रेम से होता है, प्रेम से उसका पालन होता है और प्रेम से ही उसकी मृत्यु होती है। मरने-वाले के दर्शन के लिए उसके मित्र दौड़ जाते हैं और वह भी उनका दर्शन पाकर समाधान से मरता है और प्रेममय परमेश्वर के पास पहुँच जाता है। जिस तरह समुद्र की लहरें कहीं भी जायँ, जलमय ही होती हैं, उसी तरह मनुष्य-जीवन भी प्रेममय है। तब भी मनुष्य कैसे संदेह प्रकट करते हैं कि प्रेम से कभी भूमि का मसला हल हो सकता है?

वे कहते हैं कि जिन्होंने आज तक गरीबों को चूसा, वे क्या आज बदल जायँगे ? लेकिन वे अज्ञान के कारण चूसते हैं। बच्चा कभी-कभी दूध पीते हुए माता का स्तन चूसते-चूसते उसे दाँत लगा देता है, और फिर माता थोड़ी देर के लिए उसे दूर कर देती है। लेकिन वह अज्ञान के कारण ऐसा करता है। अगर श्रीमान् मनुष्य भी देखेगा और उसे भान कराया जायगा कि गरीब लोग उसीके कारण दुःखी हो रहे हैं, तो वह फिर ऐसा नहीं करेगा।

मानव मूलतः सज्जन है

कोई पूछते हैं कि क्या व्याघ्रों में और सिंहों में भी प्रेम होता है ? मैं कहता हूँ, "हाँ, दोनों में होता है। दोनों ही अपने बच्चों का प्रेम से पालन करते हैं। प्रेम तो सभी प्राणियों में होता है। लेकिन मनुष्य तो सदैव प्रेम से जीता है। सिंह जब अपने भक्ष्य पर हमला करता है, तो उसे भक्ष्य पर दया नहीं आती। वह भक्ष्य भागता है, इसलिए उसे गुस्सा आता है। लेकिन क्या मनुष्य भी वैसा करेगा ? अगर कोई संतरा हमारे मुँह में जाने के पहले भागने लगेगा, तो हम उस पर भी सिंह के जैसा हमला करेंगे; क्योंकि उसका संबंध क्षुधा से जोड़ा गया है। लेकिन गरीब लोग श्रीमानों के भक्ष्य नहीं हैं। गरीब को देखकर उनके मन में ऐसी वासना पैदा नहीं होती, जो सिंह में हिरण को देखकर होती है। हम एक-दूसरे का भक्षण करनेवाले नहीं हैं।

सुकरात ने कहा है कि सब दोष अज्ञान के कारण निर्माण होते हैं और ज्ञान से सब-के-सब दुराचार, बुराइयाँ आदि दूर हो सकते हैं। इन सबके पीछे मनुष्य की दुष्टता नहीं है, अज्ञान है। मनुष्य मूलतः सज्जन है। हमने देखा है कि चोर, डाकू भी साधु को प्रणाम करते हैं। अगर वह दिल से, उत्कटता से डाकू होते, तो उनको साधुओं को नमस्कार करने की जरूरत न पड़ती। वे इसीलिए प्रणाम करते हैं कि उनके हृदय में भी अन्दर से निर्मलता, पावनता है। गीता कहती है—कोई अत्यन्त दुराचारी भी क्यों न हो, लेकिन अगर वह मेरी भक्ति करता है, तो फौरन अनन्य भक्त बन सकता है।

दुर्जन भी सज्जन बन सकता है

लोग अक्सर पूछते हैं कि अत्यन्त दुराचारी फौरन कैसे भक्त बन सकता

है ? लेकिन वह दुर्जन तो परिस्थितिवश दुराचारी बनता है। वह दुराचारी के प्रभाव में ही बह जाता है। लेकिन जिस क्षण उसे उसका भान हो जाता है, उसे वस्तु का स्वच्छ दर्शन हो जाता है, उसी क्षण वह बदल जाता है। इसके लिए फिर कोई निमित्तमात्र बन जाता है, जो उसे इसका दर्शन कराता है। सच्चे दुर्जनों की एक खूबी है। इसीलिए मेरी उन पर अधिक श्रद्धा है। वे अज्ञान के कारण दुराचारी होते हैं। उनमें दंभ या ढोंग नहीं होता। अत्यन्त दुराचारी और सदाचारी, दोनों अत्यन्त निकट रहते हैं, जैसे एक वर्तुल के दो सिरे। इसीलिए उनमें परिवर्तन होना बिलकुल आसान होता है। दुर्जन अत्यन्त अल्पकाल में महान् सज्जन बन सकते हैं। मनुष्य की मानवता, मानव-हृदय की पावनता और सज्जनता में अगर हमारी श्रद्धा नहीं है, तो यह मानव का जीवन जीने लायक नहीं है। फिर हम सबको गंगाजी में जाकर डूब मरना चाहिए। भला सत्य का कभी नाश हो सकता है ? असत्य की कोई हस्ती ही नहीं। प्रकाश के सामने अंधकार टिक नहीं सकता। प्रकाश भावरूप है, अंधकार अभावरूप। दुर्गुण शरीर के होते हैं और सद्गुण आत्मा के। शरीर बदलता है, इसलिए दुर्गुण भी बदलते हैं। लेकिन आत्मा तो स्थिर है, इसलिए सद्गुण भी स्थिर है। हंस के समान हमें सद्गुणों को चुन लेना चाहिए। जो इसको पहचानता है, वह बड़ा भारी काम कर सकता है।

साध्य और साधन, दोनों में क्रांति

क्रांति तो संक्रांति होनी चाहिए और उसके लिए अच्छे साधन चाहिए। जो हाथ में तलवार लेगा, वह तो दकियानूस और पुराण-मतवादी साबित होगा। अगर मैं हाथ में तलवार लेता हूँ, तो जिसके खिलाफ लड़ना चाहता हूँ, उसीकी छाया बन जाता हूँ। लड़ाई में उसे खतम करने के बाद भी उसकी आत्मा मेरी आत्मा में प्रवेश करती है और वह हमेशा के लिए जिन्दा रहता है। फिर वह जितना दुर्जन था, उतना ही मैं बन जाता हूँ। इसलिए जहाँ साधन और साध्य, दोनों में ही परिवर्तन हुआ है, वहाँ सम्यक् क्रांति या संक्रांति होती है। सूर्यनारायण दक्षिण को छोड़कर बिलकुल ही दूसरी तरफ जाता है, तब हम उसे संक्रांति कहते हैं। अगर हम शस्त्र लेकर उल्टी बातें करते हैं, तो जिनके खिलाफ

लड़ना चाहते हैं, उन्हींका उद्देश्य लेते हैं। इसलिए हमारे उद्देश्यों का उल्टा परिणाम आ जाता है। काशी का जप होने पर भी अगर रास्ता कलकत्ते का लिया जाय, तो हमें कलकत्ता ही पहुँचना लाजिमी है, हम काशी नहीं जा सकते। इसी तरह अगर हम औजार और शस्त्र पुराने ही लेते हैं और अच्छे उद्देश्य रखकर दुर्जनों से लड़ते हैं, तो मैं कहता हूँ कि आपके उद्देश्य तो अच्छे हैं, लेकिन आप भोले हैं। इसलिए मुझे आप पर दया आती है, गुस्सा नहीं आता। जिन शस्त्रों से पूँजीवादी लड़ते हैं, उन्हींसे हम लड़ेंगे, तो उसमें उन्हींकी जीत होना लाजिमी है।

बिहार की पावन भूमि

बुद्ध के वंशजो, पावन बिहार के भाइयो, आपके इस प्रदेश में एक अहिंसक क्रान्ति होने जा रही है। इसलिए ऐसा मत कहो कि बाबा जो माँगता है, उतना त्याग हमसे कैसे होगा। जब आँधी आती है, तो परिन्दे की तरह पत्ते भी उड़ने लगते हैं। अचेतन में भी चेतन की शक्ति आती है। फिर आप तो चेतन हैं। बुद्ध ने जो प्रेरणा दी, वह आपके खून में है। उम्मीद रखो कि यह मसला प्रेम से हल करेंगे।

गांधीजी ने यद्यपि कई सालों से अहिंसा का प्रयोग चलाया था, फिर भी उन्होंने कहा कि चम्पारन में मुझे अहिंसा देवी का साक्षात्कार हुआ। बिहार की मिट्टी में ही वह गुण है। यह भूमि बुद्ध भगवान् की और जनक की भूमि है। महावीर ने जहाँ संचार किया था और चक्रवर्ती अशोक जहाँ उत्पन्न हुए थे, ऐसी यह भूमि है। उनके वचन यहाँ भी हैं। शब्द अमर है। वह हवा में होता है। हमें सिर्फ उसे रेडियो के समान पकड़ने का तरीका मालूम होना चाहिए। अगर शब्द इतना नित्य व्यापक है, जो मिटता नहीं, तो विचार कैसे मिट सकता है? क्योंकि वह तो अत्यन्त शक्तिशाली होता है। इस भूमि में बुद्ध का वह विचार फैला हुआ है कि दूसरों के दुःख में दुःखी और सुख में सुखी बनो। भगवान् बुद्ध की इस भाग्यवान् भूमि के निवासी क्या ऐसी दुर्बल शंका प्रकट करेंगे कि विनोबा को जमीन कैसे मिलेगी? मैं तो केवल छठा हिस्सा माँगता हूँ। जिस तरह भ्रमर पुष्प से सार लेता है, परन्तु

उसे ज़रा भी तकलीफ नहीं देता, उसी तरह मैं भी दान माँगता हूँ, जिससे किसीको कुछ तकलीफ नहीं होगी। छठा हिस्सा देना याने दुःख मिटाना है।

पानी बाढ़ो नाव में

कबीर ने लोगों से कहा था कि मैं आपको वैराग्य नहीं सिखा रहा हूँ, बल्कि व्यवहार की शिक्षा दे रहा हूँ। यह कहकर उसने कहा : "पानी बाढ़ो नाव में, घर में बाढ़ो दाम। दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम॥"

नाव में पानी बढ़ जाने से खतरा है, उसी तरह घर में सम्पत्ति बढ़ जाने से खतरा है। नाव के लिए पानी की जरूरत है। परन्तु पानी नाव के नीचे होना चाहिए, नाव में नहीं। इसी तरह सम्पत्ति की भी आवश्यकता है, परन्तु घरों में नहीं, समाज में। घर में सम्पत्ति बढ़ जाने से वही खतरा पैदा होता है और इसीलिए उसको भी दोनों हाथों से बाहर फेंक देना चाहिए। तभी नाव बचती है। उसने कहा, यही व्यवहार-शास्त्र है। जैसे फुटबॉल का खेल होता है, उसमें मेरे पास गेंद आया और मैंने उसको अपने पास ही रखा, तो खेल खतम हो जाता है, इसीलिए मेरे पास गेंद आते ही मेरा कर्तव्य हो जाता है कि फौरन उसे लात मारो और दूसरे के पास फेंक दो। फिर वह भी उसे तीसरे के पास फेंकेगा। इस तरह खेल चलता रहेगा।

इसी तरह हमारे पास सम्पत्ति आयी कि हमें उसे लात मारकर दूसरे के पास फेंक देनी होगी। फिर वह भी उसको तीसरे के पास फेंकेगा। और इससे समाज में जीवन का खेल अत्यन्त सुखमय होगा। यह व्यावहारिक बुद्धि है। संन्यास नहीं है। यह तो एक धर्म-कार्य है। मैं तो केवल एक प्राथमिक भूमिका समझा रहा हूँ। सारे समाज की संपत्ति बढ़ाओ, यह मूल धर्म हम समाज में प्रचारित कर रहे हैं। यह कोई कठिन बात नहीं है। दोगे दो हाथों से, पर पाओगे अनन्त हाथों से; क्योंकि आपको तो भगवान् ने दो ही हाथ दिये हैं, लेकिन समाज के अनन्त हाथ हैं। अगर आप दो हाथों से नहीं दोगे, तो कुछ भी नहीं पाओगे। अगर देश की सम्पत्ति बढ़ाना चाहते हो, देश को सुखी बनाना चाहते हो, तो कम-से-कम भूमि, जो परमेश्वर की देन है, गरीबों के पास पहुँचा दो।

मेरा विश्वास है कि लोग देनेवाले हैं। उनके लिए देना लाजिमी है। न देने की कोशिश करने पर भी उनके हाथ नहीं रुक सकते; क्योंकि इस काम के पीछे एक सत्य और बुनियादी धर्म-विचार है। यह विचार युग की पुकार के साथ मिल गया है।

आरा

२९-९-'५२

सारा समाज भक्त बने : ४९ :

गीता में भगवान् ने भक्त के लक्षण बताये हैं। भक्त कैसा होता है, इसकी तस्वीर खींची है। अक्सर लोग समझते हैं कि भक्त तो नाचनेवाला, गानेवाला, बजानेवाला होता है। लेकिन भगवान् ने ऐसे लक्षण नहीं बताये। हाँ, भक्त नाच भी सकता है, गा भी सकता है, और दूसरे काम भी कर सकता है। परंतु भक्त का वह लक्षण नहीं है। किसी नाचने-गानेवाले को हम भक्त नहीं कह सकते। भक्त की पहचान नाचने-गाने से नहीं होती।

भक्त के तीन लक्षण

गीता कहती है : 'अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।' भक्त के तीन लक्षण बताये हैं : (१) किसीका द्वेष या मत्सर या वैर न करना, (२) सबके साथ मैत्री करना और (३) करुणा और दया रखना। मैं चाहता हूँ कि सारा समाज भगवान् का भक्त बन जाय। हिन्दुस्तान के लोग भगवान् के प्रेम में पागल हो सकते हैं। इसी कारण आज मुझे जमीन मिल रही है। बाहरवाले तो सोचते ही रहते हैं कि सिर्फ माँगने से जमीन कैसे मिलती है! इस बाबा ने क्या कीमिया की है? लेकिन कीमिया हम नहीं कर रहे हैं, वह तो हमारे पूर्वजों ने की है, जिन्होंने सबके हृदय में श्रद्धा और भक्ति पैदा कर दी है। जिस तरह हमारा समाज भक्ति करना चाहता है, वैसे ही सचमुच हमारी जिन्दगी बन जाय और हमारे हृदय में प्रेम, दया, करुणा हो और द्वेष न हो। ये बातें आप जहाँ देखेंगे, वहाँ फौरन पहचान लें कि यह भक्त है। दाढ़ी से,

खुले बदन से, खाक लगाने से, अनाज छोड़कर दूध पीने से–जैसा कि मैं करता हूँ—कोई भक्त नहीं बनता। दूध तो गाय का बछड़ा भी पीता है, लेकिन वह भक्त नहीं है। पैदल घूमनेवाले भी भक्त नहीं होते। वैसे तो कई मुसाफिर, व्यापारी, भिखारी और ठग घूमते हैं, लेकिन इनमें से कोई भक्त नहीं होता। इसलिए भक्त की पहचान तो ऊपर दिये हुए तीन लक्षणों से ही हो सकती है।

भक्त द्वेष नहीं करता। हम किसका द्वेष करते हैं? जो हमसे आगे बढ़े हुए हैं, जो हमसे ज्यादा ज्ञानी हैं, ज्यादा ताकतवर हैं, ज्यादा पैसेवाले हैं, ज्यादा सुखी हैं, उनसे हम द्वेष करते हैं। परन्तु ऐसा नहीं होना चाहिए। जो हमसे बढ़े हुए हैं, उनका द्वेष नहीं करना चाहिए। समाज में कुछ तो हमसे बड़े होते हैं, कुछ हमारी बराबरी में होते हैं, और कुछ हमसे छोटे होते हैं। (१) जो हमसे बड़े होते हैं, उन्हें अक्सर लोग नीचे गिराने की कोशिश करते हैं। वे आगे न जायँ, ऐसा हम चाहते हैं। लेकिन आगे जानेवालों को गिराना नहीं चाहिए। समाज-रचना ही ऐसी होनी चाहिए कि जो आगे जाते हैं, उन्हें देखकर हमें संतोष हो। किसीके मन में द्वेष और ईर्ष्या न होनी चाहिए। (२) कुछ लोग, जो हमारी बराबरी के होते हैं, उनके साथ सहयोग से काम करना चाहिए। उनके लिए मन में मैत्री की भावना होनी चाहिए, सख्य-भाव होना चाहिए। लेकिन आज तो ऐसा होता है कि बराबरी के होते हुए भी उनकी एक-दूसरे से बनती नहीं, मिलकर काम करते नहीं। भाई-भाई की नहीं बनती, पड़ोसी-पड़ोसी के बीच अनबन हो जाती है। अतः सहयोग से काम करना—मिल जुलकर कंधे से कंधा लगाकर काम करना चाहिए। (३) जो अपने से छोटे होते हैं, दुःखी होते हैं, उनके लिए मन में करुणा और दया होनी चाहिए।

समाज भक्त कैसे बनेगा ?

हम चाहते हैं कि सारे समाज में भक्त के लक्षण प्रकट हों। इसके लिए पहला रास्ता यह है कि सबको प्रेम से समझाया जाय। हरएक व्यक्ति के पास पहुँचकर ज्ञान के साथ उसका उद्धार किया जाय। सन्तों ने आज तक यह किया है। सत्संगति से समाज में कई भक्त बने हैं। सज्जन अपना संघ बनाकर

लोगों को भजन सुनाते हैं, उनसे अच्छे काम करवाते हैं और इस तरह अपनी संगत से लोगों को भक्त बनाते हैं। इससे सत्संगति की महिमा प्रकट होती है।

समाज-रचना बदलने का दूसरा रास्ता है, समाज की उन बातों में फर्क कर दिया जाय, जिनके कारण समाज में बुराइयाँ आती हैं। इससे सारा समाज अच्छा बन जाता है। अच्छा रास्ता बनाने पर उस पर बैल आसानी से चलने लगते हैं, फिर बैलों को ज्यादा रोकने की जरूरत नहीं होती और गाड़ीवान आँख बन्द करके भी गाड़ी चला सकता है। किन्तु पहले रास्ता अच्छा बनाना और बैलों को काबू में रखना पड़ता है। जब तक रास्ता अच्छा नहीं बनता और अक्सर यह काम होने में देर होती है, तब तक बैलों को काबू में रखना पड़ता है। समाज में सज्जनों का कुछ दबाव और धाक होती है। उनके प्रति लोगों की भक्ति रहती है। समाज की रचना ऐसी बना देनी चाहिए, जिससे सब लोग ठीक से बर्ताव करें।

आज कई लोग कहते हैं कि समाज में सारे लोग बदमाश बन गये हैं। लाँच-रिश्वतखोरी चला रहे हैं। इस तरह कुल मिलाकर सब कोई सबकी शिकायत करते हैं। मैं मन में सोचता था कि इस तरह सारा-का-सारा समाज नहीं गिर सकता। इसलिए निश्चय ही अर्थ-रचना बिगड़ी है। समाज में ज्यादा पैसा पैदा किया गया है। पैसे का परिश्रम और पैदावार से कोई सम्बन्ध नहीं रहा है। सिर्फ कागज बढ़ाये हैं, याने कृत्रिम पैसा बढ़ाया गया है। इस तरह झूठ बढ़ने से झूठ का प्रचार हो गया है। झूठा, मिथ्या और कृत्रिम पैसा पैदा होने से उसने सबको झूठा बनाया। पैसा लफंगा है। ऐसा पैसा पैदा होने से सब लोग लोभी बन गये हैं। इस तरह समाज-रचना ठीक करें, तो रास्ता अच्छा बनेगा। फिर बैल को समझाने की जरूरत नहीं रहेगी। फिर भी कुछ बैल ऐसे रहेंगे ही कि उन पर अंकुश रखने की जरूरत होगी।

मैं चाहता हूँ कि समाज में अच्छाई हो। सब लोग भक्त और साधु बनें। हमारा रोजमर्रा का जीवन ऐसा बने कि लोगों को बुरा काम करने की जरूरत ही महसूस न हो। पहले विवाह-संस्था नहीं थी। जानवरों की तरह स्त्री-पुरुष में संबंध होता था। लेकिन जब से विवाह संस्था का इंतजाम हुआ, तब से

समाज में कुछ अच्छाई आयी। अभी भी कुछ बुराइयाँ तो हैं ही। लेकिन अगर विवाह-संस्था न बनी होती, तो इतनी बुराइयाँ होतीं कि जितनी आज नहीं हैं। अतः सिर्फ सत्संग से काम नहीं होता। विवाह-संस्था से लोगों की वासना का नियमन हुआ और उस पर कुछ अंकुश रखा गया। सत्पुरुष अंकुश रखने की शिक्षा देते रहते हैं। लेकिन विवाह-संस्था निर्माण करना और सत्संग की महिमा बढ़ाना याने तालीम देना—ये दो काम ऐसे हैं, जिनसे आज व्यभिचार काफी हद तक रोका गया।

सारांश, लोगों के जीवन का रूप ही ऐसा बदल देना चाहिए कि स्वाभाविक रूप से ही बैल अच्छी तरह से चल सकें।

अब जमीन की मालकियत नहीं रहेगी

मैं सत्संगति की महिमा बढ़ा रहा हूँ, सज्जनों का एक संघ पैदा कर रहा हूँ। आज तक हमें चौदह हजार लोगों ने दान दिया और उम्मीद है कि कुछ दिनों के बाद दस-पाँच लाख लोग हमें जमीन देंगे और करोड़ों लोग हमारी बात सुनेंगे। तो, सज्जनों का एक संघ बन जायगा। इस तरह मैंने संगठन की एक बड़ी भारी योजना बनायी है। इसके जरिये जो हवा पैदा होगी, उससे लोगों को यह बात समझायी जायगी कि जमीन का कोई मालिक नहीं। वह तो परमेश्वर की है। इसलिए हमें मालकियत छोड़ देनी चाहिए। आपके पूर्वजों ने चाहे पराक्रम से ही जमीन प्राप्त की हो, परन्तु आपने वह पैदा नहीं की है। अंग्रेजों ने भी हिन्दुस्तान का राज्य प्राप्त किया था, पर उन्हें चले ही जाना पड़ा। बड़े-बड़े राजा-महाराजा और जमींदार भी खतम हुए। इस तरह दुनिया कहाँ जा रही है, यह देखो। अब दुनिया में एक विचार फैल रहा है कि जमीन पर किसीकी मालकियत नहीं है। यह विचार भी अभी ही लोगों के ध्यान में आया है। पहले दुनिया में राजाओं का राज्य था। लेकिन आज तो कोई राजा नहीं है। सब सेवक, खिदमतगार हैं। राजा, मालकियत ये सब चीजें अब दुनिया में नहीं टिकेंगी।

एक घर में माँ-बाप और छोटे-छोटे बच्चे हैं। बच्चे माँ-बाप की आज्ञा मानते हैं। लेकिन जब वे बड़े हो जायँगे, तो माँ-बाप को बच्चों के हाथों कारोबार सौंपना पड़ेगा। इस तरह कुटुम्ब का स्वरूप बदल जायगा। तब माँ-बाप की आज्ञा

बच्चे नहीं मानेंगे। पालक और पाल्य का नाता नहीं रहेगा। इसी तरह आज राजा और प्रजा का नाता भी खतम हो गया है। अब बच्चों को बच्चे की तरह मानना होगा। आज दुनिया में सर्वत्र ज्ञान-प्रचार हो रहा है। तालीम, रेडियो आदि द्वारा बच्चा बड़ा बन गया है। हमारे शास्त्रों ने कहा है कि 'प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् ।' सोलह साल के बाद बेटा बाप का बेटा नहीं रहता, मित्र बन जाता है। इसलिए तब उसमे मित्र के नाते व्यवहार करना होगा। घर की चाभी उसे सौंपनी होगी। अब माँ-बाप सिर्फ सलाह-मशविरा करेंगे।

इतना ही नहीं, हिन्दू-धर्म का तो कहना है कि माँ-बाप को वानप्रस्थ लेना और घर छोड़कर समाज-सेवा के लिए जाना चाहिए। लेकिन आज तो मौत आने तक सब लोग गृहस्थ बने रहते हैं। यह अधर्म की बात है। घर छोड़ने का मतलब यह है कि घर का कारोबार बेटे को सौंप पति-पत्नी विषय-वासना को छोड़कर एक-दूसरे के साथ भाई-बहन की तरह व्यवहार करें। आज तो ऐसी कुटुम्ब-व्यवस्था है, जिससे छोटे लड़कों के साथ अलग व्यवहार होता है और बड़े लड़कों के साथ अलग।

सारांश, पहले लोग बच्चे थे, इसलिए राजा पिता के समान उनका पालन करता था। राजा अच्छा निकला, तो प्रजा का कल्याण होता था, बुरा निकला, तो अकल्याण। जैसे किसी घर में माँ-बाप शराबी निकलें, तो घर का सब कारोबार बिगड़ जाता है, वैसे ही राजा खराब निकलने से सबको तकलीफ होती थी। पर अब उस समय जैसी लाचारी नहीं है। अब सबको ज्ञान दिया जा रहा है, विज्ञान का फैलाव हो रहा है। राजा-महाराजा मिट गये हैं। इसी तरह जमीन का भी कोई मालिक नहीं रह सकता।

हमारा द्विविध कार्य

भूमि सबकी माता है। मैं दो चीजें करने जा रहा हूँ: (१) सत्संगति की महिमा बढ़ा रहा हूँ, जिससे हवा बनेगी और फिर विचार-प्रचार होगा। और (२) समाज में से जमीन की मालकियत मिटा रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि जमीन गाँव की बने। बिहार में कदम रखने के साथ ही मैंने दो काम

करना सीखे : पहला यह कि चन्द लोगों से जमीन प्राप्त करके हवा बनाना और दूसरा, सब लोगों को इसलिए राजी करना कि जमीन की मालकियत छोड़ दें। इस तरह यह रास्ता बनाने का काम बैल पर काबू करने का काम है।

मैं चाहता हूँ कि सब भक्त बनें, भक्तों के तीनों लक्षण प्रकट हों। याने बड़ों के लिए आदर, बराबरी के लिए मैत्री की भावना और छोटों के लिए करुणा, ऐसी समाज-रचना निर्माण करनी है। ऐसी योजना बनानी चाहिए, जिससे आदर, प्रेम और करुणा स्वाभाविक हो जाय। यह तालीम से ही सिखाना है। जब आप मुझे जमीन देते हैं, तो मेरे विचार को कबूल करते हैं। कोई मुझसे यह नहीं पूछता कि तू कौन माँगनेवाला है ? मैं यह विचार समझाता हूँ कि जमीन आपके पास है, पर आपकी नहीं है। वह सबके लिए आपके पास आयी है। आपको यह विचार कबूल है, इसकी कबूलियत का चिह्न है, आपका दान देना। इस तरह हजारों-लाखों लोग इस विचार को मानेंगे, तो फिर कानून आयेगा और समाज-रचना में बदल हो जायगा। यही हमारा भक्ति-मार्ग है।

शीतलपुर (बिहार)
२१-१०-'५२

सम्पत्ति-दान-यज्ञ की घोषणा : ५० :

आजादी के बाद देश की योजना बनाने के विषय में पचासों मत बन सकते हैं। हमारा देश बड़ा है, काम भी बड़ा है, अतः मतभेदों का होना लाजिमी है। इस बड़े देश के मसले भी बड़े हैं और अब सारी समाज-रचना नयी बनानी है। इसलिए इस विषय में कई मत होना स्वाभाविक है। किन्तु भिन्न-भिन्न विचारों के बावजूद अगर हम कोई ऐसी युक्ति खोज सकें, जिससे सबको एक ही काम में एकत्र किया जाय, तो अहिंसा चलेगी।

पैदल-यात्रा क्यों ?

मैं उस समय सबको बताता था कि अपने सारे पक्ष-मतभेद 'कोल्ड स्टोरेज' (ठंढे भंडार) में रखो और ठंढे दिमाग से सोचो। सोचते-सोचते मेरे ध्यान में

आया कि इतने से काम नहीं चल सकता, क्योंकि हम सिर्फ शहरों तक ही पहुँचते हैं, देश के हृदय तक नहीं पहुँच पाते। हिन्दुस्तान का बहुत-सा दिमाग शहरों में है, लेकिन उसका दिल तो देहातों में है। जब तक हम दिल तक नहीं पहुँच सकते, तब तक जनता के विचारों में प्रवेश ही नहीं हो सकता। इसीलिए मैंने यह मोटरकार का तरीका छोड़ दिया और पैदल-ही-पैदल घूम रहा हूँ। मुझे ऐसा लगा कि इससे मेरे हाथ में एक नया शस्त्र आया है। पुराने जमाने में भी लोग पैदल घूमते थे, परन्तु वह लाचारी का घूमना था। लेकिन आज का घूमना गतिमान् (डैनेमिक) है, अगतिक (स्टेटिक) नहीं।

पुराने लोग हाथ से सूत कातते थे, तो उसमें कोई बड़ी बात नहीं थी। कुछ लोग कहते हैं कि चरखों के रहते हुए भी हमने स्वराज्य गमाया। तब अब उसके बाद चरखा चलाने को क्यों कहते हो? लेकिन वह चरखा पुराना था, आज का चरखा दूसरा है। उस चरखे के सामने कोई खड़ा नहीं था। जिस तरह चंद्र अकेला प्रकाशित होता है, उसी तरह उस समय चरखे की हालत थी। उन दिनों का चरखा लाचारी का था। लेकिन अब हम सोचकर चरखे को अपनाते हैं। उसके पीछे चिंतन है, विचार है, समाज-रचना की एक नयी तसवीर हमारे सामने है। चरखा चलानेवाले के विचार बहुत गतिमान् होने चाहिए, यद्यपि चरखे की गति कम होती है।

आज हम मिल के विरुद्ध चरखा चलाते हैं, तो वह हिम्मत का काम है। इसी तरह मेरा पैदल घूमना भी एक नयी बात है। लोग समझते हैं कि मैं प्रचार के अत्यन्त गतिमान् साधनों का उपयोग नहीं करता, इसलिए पीछे जा रहा हूँ। लेकिन हम इस लॉउड-स्पीकर का तो उपयोग कर रहे हैं। मैं नये साधनों का उपयोग तो करूँगा, पर अपने-अपने स्थान पर। हरएक चीज का एक स्थान होता है। बात हृदय तक पहुँचानी है, तो एक खास रास्ता लेना चाहिए। तब मुझे बुद्ध भगवान् और शंकराचार्य की याद आयी, जिन्होंने पचासों साल तक पैदल घूमकर प्रचार किया था। तुलसीदास ने भी यही किया था। उन्होंने जब रामायण लिखी, तब प्रचार के कोई साधन नहीं थे। उनके

हाथ में प्रेस नहीं था। परन्तु बावजूद इसके रामायण का घर-घर में प्रचार हुआ। आज प्रेस होते हुए भी हिन्दुस्तान की किसी भी भाषा में कोई ऐसी किताब नहीं है, जो तुलसी-रामायण के समान घर-घर पहुँचे। आज प्रकाशन नाममात्र का हो रहा है। उन्हें मैं प्रकाशन-मन्दिर नहीं, अप्रकाशन-मन्दिर कहता हूँ। क्योंकि उनके द्वारा कोई किताब गाँव-गाँव नहीं जाती है। इसलिए चित्र की नौका से हम नदी पार नहीं कर सकते। किन्तु तुलसीदासजी ने जब गाँव-गाँव जाकर अपनी मधुर ध्वनि में रामायण-गान किया, तब उसका प्रचार हुआ।

जिस तरीके से बुद्ध और तुलसी ने काम किया, वह लाचारी का नहीं था। आज के जमाने की तुलना में वह लाचारी कही जा सकती है, पर वे भी ऊँट या रथ पर जा सकते थे। फिर भी वे पैदल घूमे। चिंतन करना है, तो खुले आकाश के नीचे चलना चाहिए, ऐसा वेदों ने कहा है। 'चरैवेति' यह वेदों का संदेश है। जो सोता है वह कलियुग में रहता है, जो उठता है वह त्रेतायुग में रहता है, जो बैठता है वह द्वापरयुग में रहता है और जो चलता है वह कृत-युग में रहता है : 'कृतं संपद्यते चरन्'। यह सब मुझे याद आया और मैंने सोचा कि मुझे पैदल घूमना चाहिए।

तेलंगाना में अहिंसा का साक्षात्कार

जब यह साधन मेरे हाथ आया, तब मैंने उस चिंतन पर अमल किया। अमल करने का पहला मौका मुझे शिवरामपल्ली के सर्वोदय-सम्मेलन के लिए जाते समय मिला। वहाँ से वापस आते समय बीच में तेलंगाना का रास्ता था और वहाँ की परिस्थिति के बारे में मैंने बहुत कुछ सुना भी था। इसलिए वहाँ का मसला देखने की मुझे स्फूर्ति हुई और मैं वहाँ गया। उसका नतीजा हुआ, मुझे वहाँ अहिंसा की शक्ति का साक्षात्कार हुआ। अहिंसा के प्रति विश्वास और श्रद्धा तो मेरे मन में पहले ही थी। लेकिन अब यह सिद्ध हुआ है कि हिन्दुस्तान में जहाँ पर इतने मतभेद हैं, वहाँ अहिंसा के जरिये ही काम हो सकता है। अपने मसले हल करते समय हम अहिंसा से काम लेते हैं, तो आजादी नहीं टिक सकती। हिंसा का आधार लेना है, तो छोटी जमात बनना होगा। जो हिंसा के तरीके सोचते हैं, वे बड़े देश की दृष्टि से सोचते

ही नहीं। अहिंसक तरीके से भूख का मसला हल हो सकता है, यह मुझमें श्रद्धा तो थी; परन्तु वहाँ जाने पर उसका साक्षात्कार हुआ। मेरे हाथ दुर्बल हैं, मेरा शरीर दुर्बल है, फिर भी मैंने कह दिया कि भूमि का मसला हल करना है, तो करुणा का ही तरीका लेना होगा। यों मसला हल करने के तीन तरीके हैं। लेकिन मैं तो करुणा का ही तरीका चलाना चाहता हूँ, क्योंकि यही चल सकता है।

फिर भी मैंने उस समय इस बारे में न चर्चा की, न मुझे चर्चा करने की फुर्सत मिली, न उसे मैंने आवश्यक ही समझा। अगर चर्चा करता, तो कोई मेरे साथ नहीं होते। कहते कि इस कलियुग में यह बात चल नहीं सकती, और आज तक इतिहास में ऐसा कभी नहीं हुआ है। इसलिए मुझे वे यह न करने की ही सलाह देते। इसीलिए मैंने सलाह नहीं ली। जो मुझे करना था, वह किया। तेलंगाना में मुझे अनुभव हुआ कि जिस भगवान् ने मुझे माँगने की प्रेरणा दी, वही कृपालु भगवान् लोगों को देने की प्रेरणा देगा। वह अधूरा काम नहीं करता। वहाँ जो चमत्कार हुआ, उसका असर हिन्दुस्तान पर पड़ा।

भगवत् प्रेरणा से आगे का काम

उसके बाद मुझे पंडित नेहरू का निमंत्रण मिला। मैंने उनसे कहा कि मैं आऊँगा, पर अपने ढंग से। दो महीने के बाद मैं दिल्ली पहुँचा। दो अक्तूबर को हम सागर में थे, उस समय मुझे सिर्फ बीस हजार एकड़ जमीन मिली थी। फिर भी मैंने जाहिर कर दिया कि मुझे पाँच करोड़ चाहिए। मैंने गणित किया कि अपने देश में करीब पाँच करोड़ भूमिहीन हैं, और साधारणतः फी आदमी एक एकड़ के हिसाब से पाँच करोड़ एकड़ भूमि की जरूरत होगी। पाँच करोड़ एकड़ याने हिन्दुस्तान की कुल जेरकाश्त जमीन का—३० करोड़ एकड़ का—छठा हिस्सा हो जाता है। इसलिए मैं छठे हिस्से की माँग कर रहा हूँ। अगर जिसकी थोड़ी भी अक्ल कायम है, वह इस तरह नहीं बोल सकता। किन्तु दुनिया में कुछ पगले होते हैं और वे बोल उठते हैं। भगवान् की प्रेरणा से अत्यंत दुर्बल भी काम कर सकता है। भगवान् की कृपा जड़ में भी चेतना प्रकट करती है।

उस दिन जो मैंने जाहिर किया, उसीको रटता हुआ आगे बढ़ा। बीच में मैं उत्तर प्रदेश में गया। मथुरा के सम्मेलन में एक करोड़ की माँग की और पहली किस्त के तौर पर पाँच लाख की माँग की। वे चुनाव के दिन थे, और जिस तरह कोई श्रीमान् अचानक गरीब हो जाय, तो सब उसे छोड़कर चले जाते हैं, उसी तरह उस समय सब लोग मुझे छोड़कर चले गये। फिर भी मैं एकाकी काम करता रहा। वेदों ने कहा है कि सूर्य एकाकी काम करता है। इसलिए मैंने सोचा कि सूर्य अगर अकेला चलता है, तो मैं क्यों न घूमूँ!

बिहार में नया प्रयोग

उत्तर प्रदेश में मुझे तीन लाख, पाँच हजार एकड़ भूमि मिली और बाकी की जमीन हासिल करने का उन्होंने संकल्प कायम रखा। उसमें उन्हें सिर्फ देहात में जाकर माँगने की जरूरत है। वहाँ जाने पर तो जमीन मिलना लाजिमी है।

मैं काशी में वर्षा-काल के लिए दो महीने रहा, उस समय गहरा चिंतन करता रहा कि किस तरह आगे बढ़ना है। सर्वोदय-सम्मेलन में बिहारवाले आये थे और उन्होंने चार लाख का संकल्प किया था। मैं उस समय इस नतीजे पर आया कि बिहार का मसला ही हल करना चाहिए। 'अब तो बात फैल गयी, जाने सब कोई।' न सिर्फ हिन्दुस्तान में, लेकिन बाहर के देशों में भी यह आशा निर्माण हुई कि एक नया रास्ता खुल गया है। इसी खयाल से वे इस काम की ओर देख रहे हैं। इसलिए थोड़ी-सी जमीन प्राप्त करने से काम न चलेगा। अब मुझे अपनी सारी शक्ति मसला हल करने में लगानी चाहिए और कार्यकर्ताओं को भी ऐसा ही करना चाहिए। मैंने सोचा कि जिस भूमि पर भगवान् बुद्ध ने विहार किया और जहाँ महात्मा गांधी को अहिंसा का साक्षात्कार हुआ, उसमें यह काम भी हो सकता है। उससे हिन्दुस्तान पर इसका मधुर परिणाम होगा और पृथ्वी पर भी असर होगा। यही भाषा और विचार लेकर मैंने इस भूमि में प्रवेश किया।

आरंभ में जितनी कम जमीन मुझे यहाँ मिलती गयी, उतनी और कहीं नहीं मिली। इस काम का जहाँ उद्गम ही हुआ, उस प्रदेश तेलंगाना में भी इतनी कम जमीन कभी नहीं मिली। इतनी कंजूसी से यहाँ के लोगों ने काम

किया। लेकिन मुझे इसका आश्चर्य नहीं होता। इससे तो मेरा उत्साह ही बढ़ गया है। कुआँ खोदते समय मिट्टी भी लगती है और पत्थर भी। लेकिन पत्थर लगने पर मेरा उत्साह बढ़ता है। मैं सोचता हूँ कि अब तो डाइनामाइट बनाऊँगा और पत्थर को फोड़ूँगा। उसके नीचे पानी होना ही चाहिए। सिर्फ पत्थर फोड़ने की जरूरत है, तो पानी का स्रोत दिखाई पड़ेगा।

आर्य-भूमि का विचार

यहाँ तो मुझे एक अजीब अनुभव आया। लाखों लोगों ने मेरा संदेश सुना। उनमें बहुत उत्सुकता और एकाग्रता दीखी। लेकिन कार्यकर्ताओं में उतनी उत्सुकता और आशा दिखाई नहीं दे रही थी। इसलिए मुझे ऐसा लगा कि अगर यहाँ मैं मजबूत बनता हूँ, तो सभी मेरा साथ देंगे। अभी-अभी सारन जिले में मैंने देखा कि वहाँ की भूमि प्रेम से भरी है। लोगों के मन में आशा निर्माण हुई है कि भूमिवाला बाबा आया है, वह भूमि दिलायेगा, अब हमारे लिए अच्छे दिन आये हैं। लोग इस तरह से बोलते हैं, तो मैं खुश हो जाता हूँ। मैं चाहता हूँ कि सब लोग उठ खड़े हो जायँ और कहें कि हमें भूमि मिलनी चाहिए।

मैंने यह बात न चीन से लायी, न रूस से, बल्कि इसी आर्य-भूमि से लायी है। परमेश्वर ने मुझे सुनाया है कि यह (भूमि) परमेश्वर की देन है। यह सबके लिए होती है। भूमि हमारी माता है और हम उसके पुत्र हैं। इसलिए भूमि-पति होने का दावा करना बहुत बुरी बात है। यह बात आज तक हमारे ध्यान में नहीं आयी थी, लेकिन अब आयी है। तो, मैं चाहता हूँ कि सब भूमिहीन उठ खड़े हो जायँ और अपनी माँग पेश करें। वे कहें कि हमारा हक दो, तो हम कृतज्ञ रहेंगे। गाँव-गाँव लोग इस तरह की माँग पेश करेंगे, तो मुझे उत्साह होगा। इस तरह प्रेम की ताकत से एक फौज निर्माण करनी चाहिए। इन गरीबों ने आज तक बहुत सहा है। हिन्दुस्तान की हड्डियों में प्रेम भरा है। मैं इनकी तरफ से आज छठा हिस्सा माँग रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप मुझे अपना भाई समझें। मथुरा में एक भाई ने

मेरे समझाने पर मुझे अपना हिस्सा याने पाँच सौ एकड़ दान दिया था। काम करने का यही तरीका है।

गरीबों के दान से अहिंसक सेना का निर्माण

मैंने बड़ों से ज्यादा आशा रखी है, बीचवालों से मैं छठा माँगता हूँ और छोटे लोग जो भी कुछ देंगे, उसे मैं कृपा या प्रसाद समझूँगा। मैं चाहता हूँ कि छोटे लोग भी समझें कि हमसे भी गरीब कोई हैं और इसीलिए उन्हें हमें **'पत्रं पुष्पं फलं तोयम्'** कुछ तो देना चाहिए। क्या सुदामा के लिए यह लाजिमी था कि वह इतना गरीब होते हुए भी भगवान् के पास जाते समय कुछ ले जाय? लेकिन उसने समझा कि मुझसे भी कोई गरीब है। जब सुदामा और शबरी का देना लाजिमी था, तो भगवान् कुछ दिये बिना आप गरीबों के प्रेम का चिह्न कैसे पहचानेंगे? फिर गरीबों का उद्धार तो स्वावलंबन से ही होगा। गरीब की चिंता पहले गरीबों को ही करनी चाहिए।

मुझे कई गरीबों ने बहुत उदार दिल से दान दिया। ये ही लोग आर्थिक क्रांति की लड़ाई लड़ेंगे। मैं तो एक सेना बनाना चाहता हूँ। जो अहिंसक सेना के सैनिक बनना चाहते हों, उन्हें अपने पास जितना भी है, उसमें से कुछ तो त्याग करना पड़ता ही है। उनकी अन्न परीक्षा करनी है। अंग्रेजों से लड़ाई करते समय भी इस तरह का त्याग करना पड़ा। इसीमें से शक्ति पैदा होती है। क्रांतिकारी शक्ति पैदा करना ही मेरा उद्देश्य है। मैं एक तरह की क्रांति को रोकना और दूसरे तरह की क्रांति को लाना चाहता हूँ। मैं स्थितिस्थापक नहीं बनना चाहता। इसलिए जो स्थितिस्थापक हैं, उनसे मुझे लड़ना है। लेकिन वे समझ लें कि यह प्रेम की लड़ाई है। मैं आज की हालत एक क्षण के लिए भी नहीं सहन कर सकता। इसीलिए मुझे अहिंसक सेना बनानी है। गरीब देते हैं, तो उससे बड़ों को भी प्रेरणा मिलती है और वे ज्यादा देते हैं।

मैं बड़ों का मित्र हूँ

मैं चाहता हूँ कि मेरा विचार समझ जाने पर प्रेम से दिया जाय। मैं गणित से नहीं माँगता, मैं चाहता हूँ कि कोई इतना कम न दे, जिससे उसकी बेइज्जती हो। यह बड़ा भारी क्रांति का काम है, इसलिए सबको चाहिए कि

अपने भेद भूलकर इसमें योग दें। एक ऐसा समय आया है कि हिन्दुस्तान के इतिहास में १९५७ के पहले आर्थिक क्रांति हम कर सकते हैं। आज हम भेद भूलकर काम करेंगे, तो उस चुनाव में हमें वह दृश्य देखने को नहीं मिलेगा कि सज्जन लोग अनेक पक्षों में बँटे हैं। उस समय तो सब सज्जन एक ही पक्ष में हो जायँगे और सज्जन और दुर्जनों के बीच मुकाबला होगा। इसलिए मैं पक्ष-भेद मिटाना चाहता हूँ, ताकि सब मिलकर एक मसला हल करें।

जिनके पास जमीन है, उन्हें मैं समझाता हूँ कि आपका मुझसे बढ़कर कोई मित्र नहीं है। मैं आपका भला चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि आपको दुःख न पहुँचे। भ्रमर के समान मैं आपसे लेकर गरीबों को देना चाहता हूँ। देने से आप कुछ खोयेंगे नहीं, बल्कि भर-भरकर पायेंगे। हिन्दुस्तान को बचायेंगे और दुनिया को राह दिखायेंगे। अभी तक बड़ों ने कंजूसी से दिया है, क्योंकि उनके घरों में मेरा अभी तक प्रवेश नहीं हुआ है। मैंने सोचा कि मेरी अहिंसा उनके हृदय में प्रवेश करने में अभी तक समर्थ नहीं हुई है, लेकिन मैं उम्मीद करता हूँ कि पटने के बाद उनसे मेरा अधिक परिचय होगा और वे मुझे मित्र के नाते पहचानेंगे।

सूर्य को हम मित्र कहते हैं। बावजूद इसके कि हिन्दुस्तान गरम मुल्क है और सूर्य से हमें ताप होता है। दुनिया की कोई भी भाषा में सूर्य के लिए ऐसा शब्द नहीं है। इसका कारण यही है कि हम मानते हैं कि उसकी प्रखरता लाभदायक है, हानिकारक नहीं। इसलिए मैं अगर किसीके दान का इनकार करता हूँ, तो मुझे माफ करें। अगर मैं किसी आश्रम के लिए जमीन माँगता, तो आप जो कुछ देते, वह मैं ले लेता। लेकिन आज तो मैं दरिद्र-नारायण का प्रतिनिधि बनकर माँग रहा हूँ। आपका कम दान मैं स्वीकार करूँ, तो आपकी बेइज्जती होगी। इसलिए मेरे इनकार करने से आपको जो दुःख होगा, उससे आपको समझना चाहिए कि वह तपन है, फिर भी मित्र की ओर से ही हुआ है।

संपत्ति-दान-यज्ञ

आज तक मैं सिर्फ भूमि का दान लेता था। लेकिन अब मैं संपत्ति का भी

दान लूँगा। उसमें मैं पैसा नहीं लूँगा, पैसा तो दाता के पास ही रहेगा। संपत्तिदान में दाता अपनी संपत्ति का एक हिस्सा हर साल समाज को देता रहेगा। मैं सिर्फ वचन-पत्र लूँगा। दाता अपनी आत्मा को साक्षी रखकर उसका विनियोग करेंगे। यह मेरा अजीब ढंग है। अगर मैं फंड इकट्ठा करता, तो मुझे हिसाब रखना पड़ता और उसीमें मेरा सारा समय जाता। पर मुझे तो क्रांति करनी है। मैं चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान का हरएक व्यक्ति अपना छठा हिस्सा दे। फिर मैं कहाँ तक हिसाब रखूँ? इसलिए वही उसका साक्षी होगा। इस तरह की बात कहकर मैं उनको समाधान देना चाहता हूँ, जिनके पास भूमि नहीं है और फिर भी जो कुछ दान देना चाहते हैं। इसमें मेरी यह दृष्टि है कि मैं दान देनेवालों से कहना चाहता हूँ कि हम आपका पैसा ही नहीं चाहते, बल्कि टेलेन्ट और अक्ल भी चाहते हैं। आप मुझे पैसा दोगे और बँध जाओगे। मुझे कोई फंड देता है, तो मैं बँध जाता हूँ। पर मैं तो मुक्त रहना और आपको बाँधना चाहता हूँ। उसमें हम आपको हिदायत दे सकते हैं। और हिदायत नहीं देंगे, तो यही कहेंगे कि अपनी-अपनी अक्ल से यह दान किसी पवित्र काम में खर्च करो और साल के बाद मुझे हिसाब दे दो। इस तरह संपत्तिदान की घोषणा के बाद आज से मेरा काम पूर्ण होगा। अब मैं भूमि और संपत्ति, दोनों का हिस्सा माँगूँगा।

कुछ लोग मानते हैं, मेरा काम कम्युनिस्टों के खिलाफ है। परन्तु मेरी वृत्ति तो 'सर्वेषाम् अविरोधेन' है। मैं समुद्र हूँ, सब नदियों और नालों को स्वीकार करूँगा। समुद्र किसी भी नाले से नहीं कहता कि तू गंदा है। वह तो सबको कहता है, 'तू मेरी तरफ आ।'

पटना
२३-१०-'५२

भूमिदान-यज्ञ के साथ-साथ अब मैंने यह विचार शुरू किया है कि संपत्ति का भी पष्ठांश लेना चाहिए। यह बहुत गहरी बात है। हम हरएक से भूमि माँगते और दान-पत्र लेते हैं, तो उस पर उसका हस्ताक्षर कराते हैं, दो गवाह रखते हैं और फिर मेरा दस्तखत होता है। तब सरकार उसे मंजूर करती है और वह अमल में आता है। इस तरह की पूरी योजना इसमें नहीं है। इसमें तो जो व्यक्ति वचन-पत्र लिखकर देगा, वही अपने अन्तर्यामी भगवान् को साक्षी रखकर अपना वचन पालन करेगा और हिसाब भी रखेगा। उस दान का पूर्ण उपयोग हमारे कहने के अनुसार करने की जिम्मेवारी उसीकी है। भूमि-दान जैसी यह एक साल के लिए दान देने की बात नहीं है, बल्कि हर साल हिस्सा देना पड़ेगा। इसलिए यह सम्पत्ति-दान कोई विनोद में ही नहीं दे सकता। उसके लिए जीवन को निष्ठावान् बनाने का काम होना चाहिए। अन्दर की निष्ठा जगनी चाहिए।

त्यक्तेन भुंजीथाः

जब भरत रामजी से मिलने गये थे, तो उनके मन में तो यह भाव था कि कब मैं राम से मिलता हूँ। फिर भी वे थोड़ी देर के लिए रुक गये। उन्होंने राज्य सँभालनेवालों को बुलाया और कहा कि मैं राम से मिलने जा रहा हूँ, इसलिए आप उतनी देर राज्य ठीक तरह से सँभालें। तुलसीदासजी लिखते हैं कि इतना व्यापक चित्त होते हुए भी उन्होंने यह काम किया, क्योंकि 'सम्पति सब रघुपति कै आही'—सब सम्पत्ति राम की थी, इसलिए उसे ठीक से सँभालना भरत का कर्तव्य था। जैसे महात्माजी कहते थे कि हम अपने सम्पत्ति के ट्रस्टी बनें। यह अर्वाचीन भाषा है। परन्तु इसका बहुत दुरुपयोग हुआ है। इसलिए मैंने इसका उपयोग नहीं किया। लेकिन बापू करते थे, क्योंकि वे कानून जाननेवाले थे। इसलिए उन्हें इस 'ट्रस्टी' शब्द का आकर्षण था। उतना आकर्षण मुझे नहीं है।

मैं तो यह विचार उपनिषदों की भाषा में रखना चाहता हूँ : तेन त्यक्तेन

भुंजीथाः। जो भी भोग करना हो, वह त्याग करके भोगो। तुलसीदासजी ने यही कहा है। सभी सम्पत्ति ईश्वर की है, तब छठा हिस्सा देने की बात तो गौण है। होना तो यह चाहिए कि अपना सारा-का-सारा समाज को देना चाहिए और फिर अपने शरीर के लिए उसमें से थोड़ा-सा लेना चाहिए। परन्तु अभी समाज में इस तरह का इन्तजाम नहीं है और न तुरन्त होनेवाला ही है। इसलिए अभी छठा हिस्सा दे दिया जाय और बाकी जो बचेगा, उसमें से और देने की सोची जाय। छठा हिस्सा देने का मतलब है कि जीवन के लिए एक निश्चय करके देना चाहिए। उतना हिस्सा नहीं देते, तो हम भी पापी बनते हैं और हमारा जीवन भी पापी बनता है। इसलिए देना कर्तव्य मानना चाहिए। दूसरा कितना देता है, इसकी चिंता हमें न करनी चाहिए, बल्कि खुद ने कितना दिया है, इसकी ओर ध्यान देना चाहिए। यह बात दूसरे की परीक्षा करने की नहीं है। निज की शुद्धि की ओर अपना कर्तव्य करने की बात है। इसलिए इसका आरम्भ मैं बहुत गम्भीरता से करना चाहता हूँ।

जिनको लगता है कि सारी सम्पत्ति समाज को अर्पण करनी चाहिए और आज अगर वह नहीं होता, तो व्यक्ति का जीवन निस्सत्त्व और असार बनता है। ऐसे लोग हमारे परिचय में आयेंगे, तो उन्हींसे हम प्रथम दानपत्र लेंगे। जब जमीन में बीज बोया जाता है, तो वह बहुत चिंता और सावधानी के साथ बोया जाता है। बीज को खुला नहीं रखते, ढाँक देते हैं; नहीं तो पक्षी उसे खा जाते हैं। इसी तरह अभी जो वचन-पत्र मिलेंगे, हम उन्हें प्रकाशित नहीं करेंगे। मैं तो उनका अभी संगोपन करना चाहता हूँ। जब पाँच-पचास के जीवन में यह बात आ जायगी, तभी मैं नाम प्रकाशित करूँगा। फिर मैं बाकी लोगों से माँग करूँगा। जिस तरह दीपक से दीपक लग जाता है, वैसे ही एक की निष्ठा से दूसरे की निष्ठा बढ़ जायगी। इस तरह मैं बहुत गम्भीरता से सोच रहा हूँ। इस विचार को मैंने अपने मित्रों से कहा था। लेकिन अब इसको मैं देशव्यापी रूप देना चाहता हूँ।

सम्पत्ति-दान एक धर्म-विचार

अभी यहाँ जो भाई बैठे हैं, उनके दिलों में धर्म-भावना होगी, तो वे अपने

घरवालों से—माता, पत्नी और बच्चों से—बात करके संपत्ति का दान दे सकते हैं। इससे उनके कुटुम्बियों को अत्यन्त आनन्द महसूस होना चाहिए। उन्हें ऐसा लगना चाहिए कि आज हमने मीठा आम खाया है, उसकी लज्जत चखी है। संपत्ति का षष्ठांश देने से सबको बहुत प्रसन्नता होनी चाहिए। उनके हृदय नाचने लगेंगे। इसमें किसी भी तरह का दबाव या लज्जा की बात या डर न लगना चाहिए। ये तीनों बातें भूमि में आ सकती हैं। भूमि लज्जा से या प्रेम और दबाव से भी दी जाती है। लेकिन संपत्ति के षष्ठांश में ऐसी बात न आनी चाहिए, क्योंकि इसमें तो जीवनभर के लिए छठा हिस्सा छोड़ना पड़ेगा। इसलिए जिसके अन्दर यह चीज न उगे और जिसके कुटुम्बियों को यह न जँचे, वह न दे। इसलिए आरम्भ में प्रदर्शन के तौर पर सैकड़ों व्यक्तियों ने विनोबा को संपत्तिदान दिया, ऐसी बात न होनी चाहिए। अन्दर में वह विचार परिपक्व बनेगा, तभी यह चीज बनेगी। यहाँ जो मेरे मित्र बने हैं, वे अपने कुटुम्बियों से सलाह-मशविरा करके इसमें योग देंगे, तो बहुत अच्छा होगा, मैं इसका एकान्त वृत्ति से प्रचार करूँगा। अभी जाहिर नहीं करूँगा। ऐसे ढंग से काम करूँगा कि मनुष्य की वृत्तियों का संगोपन हो जाय। वृत्ति-विकास के लिए मौका मिल जाय, यह आध्यात्मिक काम है, आत्मसंतोष का काम है, ऐसा भान होने के बाद ही इसे करना चाहिए।

इसमें से नतीजा यह निकलेगा कि हमारी सरकार अगर इसमें योग देना चाहती है, तो उसे ऋण ही लेने की जरूरत नहीं पड़ेगी। जो चीज वह माँगे, फौरन मिल जायगी। इसके लिए सरकार भी पुण्यशील होनी चाहिए और ऐसी सरकार बनाना हमारा ध्येय है। ऐसी सरकार जो इशारा करेगी, उसके अनुसार लोग देंगे। यह हालत लाने के लिए मैं एक आध्यात्मिक बुनियाद पक्की कर रहा हूँ। मुझे पूरी उम्मीद है कि यह बीज फैलेगा। जैसे भूमिदान-यज्ञ का हुआ, इस सद्विचार को भी सब लोग समझेंगे। जैसे हम भगवान् को 'भूपति' मानने लगे, वैसे ही अब यह कहेंगे कि 'लक्ष्मीपति' भी भगवान् ही हो सकते हैं। किन्तु जब लोग इस बात को समझेंगे, तभी यह काम होगा। लोग मुझे पूछते हैं कि सत्ता या कानून के बगैर यह कैसे होगा ? यह सारी दीनता देख-

कर मुझे उन लोगों की दया आती है, जो सत्ता का ही जप करना जानते हैं। लेकिन क्या वे प्रेम की सत्ता चाहते हैं या हिंसा की? हिन्दुस्तान हिंसा से नहीं, नैतिक शक्ति से ही बलवान् बन सकता है। इसलिए सत्ता से काम हो सकता है, यह विचार हमें नुकसान पहुँचा रहा है और हमारी आध्यात्मिक शक्ति क्षीण कर रहा है।

संपत्तिदान का विनियोग

हमें जो संपत्ति दान में मिलेगी, उसका विनियोग दान देनेवाला ही करेगा। उसकी इच्छा और उसका झुकाव देखकर हम उसे सलाह देंगे। क्योंकि हम जो काम करना चाहते हैं, केवल आत्मविकास के लिए ही करना चाहते हैं। मैं अपनी इच्छा उस पर नहीं लादूँगा। उस संपत्ति का विनियोग दरिद्रनारायण के लिए या दरिद्रनारायण की सेवा करनेवाले जो सेवक खड़े होंगे, उनके लिए होगा। सेवक तो त्यागी होते हैं, पर उनके शरीर के पोषण के लिए भी तो कुछ चाहिए ही। इसके लिए फंड इकट्ठा करने की बात निकम्मी है। लेकिन अगर दो-चार मित्र मिलकर अपना छठा हिस्सा देते हैं और उससे दस-पाँच कार्यकर्ता निश्चित होकर काम करते हैं, तो बहुत अच्छा होगा। इस तरह मैं संपत्ति का विनियोग दो तरह से करना चाहता हूँ: एक, दरिद्रनारायण को सीधी मदद पहुँचाना, जैसे बैल, कुआँ, हल आदि देना और दूसरा, सेवक-वर्ग की निश्चित होकर सेवा हो सके, इसलिए उनके निमित्त उस संपत्ति का विनियोग करना।

आश्रम-धर्म की पुनःस्थापना

आप इस बात को ध्यान में रखिये कि मैं प्रचारक नहीं हूँ। जो प्रचारक होता है, वह यौवन का काल एकान्त में नहीं बिताता। जब शरीर में उत्साह और ताकत होती है, उसी समय घूमता है। लेकिन मैं तो वृद्धावस्था में बाहर निकल पड़ा हूँ। इसका कारण यह है कि मुझे अन्दर से एक ऐसी प्रेरणा हुई और मुझे ऐसा लगा कि जो बात मैं कह सकता हूँ वह दूसरा नहीं कह सकता। इसलिए जो मैं कह सकता हूँ, उसे मुझे ही कहना चाहिए। इसी तीव्र प्रेरणा

से मैं घूम रहा हूँ। इसीलिए चाहता हूँ कि आप भी उतनी ही एकाग्रता से चिंतन कीजिये।

हम अपने देश में एक सेवक-वर्ग निर्माण करना चाहते हैं। आज तो ऐसा वर्ग नहीं है। एक जमाना था, जब लोगों ने सेवक-वर्ग बनाया था, जिसे 'वानप्रस्थ' कहते हैं। आज वह प्रथा मिट गयी है। बचपन में शादी हो जाती है और शादी के पहले हम मानते हैं कि ब्रह्मचर्याश्रम होता है। परन्तु आज वह भी नहीं है। उसके बाद हम मानते हैं कि गृहस्थाश्रम चलता है। वे घर में रहते हैं, इसलिए उन्हें 'गृहस्थ' कहा जाता है। परन्तु वे नाममात्र के ही गृहस्थ होते हैं। और वानप्रस्थ तो मुश्किल से ही कोई दीखता है। संन्यासी तो दीखते हैं, लेकिन बाहर से। अंदर से संन्यासी बिलकुल ही नहीं हैं, यह मैं नहीं कह सकता। परमेश्वर की इच्छा से ऐसे भी कुछ लोग होंगे, पर अधिक तादाद में नहीं। सारांश, आश्रम-धर्म के जरिये हमारे पूर्वजों ने सेवा-कार्य की जो योजना बनायी थी, वह मुझे फिर से निर्माण करनी है। मैंने उसके लिए बहुत प्रयत्न किये हैं। कुछ लोगों को मैंने अपनी साक्षी में वानप्रस्थ का व्रत दिया है और उन्होंने उसका अच्छा पालन किया है। जब शरीर में भोग भोगने की थोड़ी भी शक्ति न रहे, तब तक भोग भोगते रहने में कोई पुरुषार्थ नहीं है और न उससे देश का भला ही होगा। जब तक शरीर में कुछ ताकत बची है, तभी इंद्रियों से मुक्त होकर पत्नी के साथ बहन जैसा व्यवहार करना चाहिए। गृहस्थाश्रम शुरू भी देरी से हो और समाप्त भी जल्दी होना चाहिए। मैं तो चाहता हूँ कि २५ साल के नीचे वह शुरू न हो। कम-से-कम २० साल की तो मर्यादा रखनी ही चाहिए। और फिर चालीस के बाद वह न चले। अधिक-से-अधिक पैंतालीस साल तक चले। उसकी उत्तम मर्यादा तो पचीस से चालीस होगी और अधिक-से-अधिक बीस से पैंतालीस। यह एक नया स्मृति-विचार मैं दे रहा हूँ। वैसी स्मृति तो पुरानी है। लेकिन मैंने आज की परिस्थिति के अनुसार वयोमान घटाया है और इस जमाने की दृष्टि से चिंतन किया है। आज तो १५ साल की उम्र में ही शादी हो जाती है और १७-१८ साल की उम्र में माँ-बाप बन जाते हैं। वहाँ से लेकर ३० साल तक गृहस्थाश्रम

चलता है। कभी-कभी ४० साल तक भी चलता है। मेरी योजना में वह २० या २५ साल का ही हो सकता है। उससे व्यक्ति को लाभ होगा, शक्ति बचेगी और समाज पर अच्छा असर होगा। इसलिए हरएक पति-पत्नी को चाहिए कि ४० साल के बाद अपने बच्चों पर घर का भार सौंपकर जन-सेवा में लग जायँ। इसके लिए वे समाज से कुछ नहीं लेंगे। सिर्फ अपने पेट के लिए जितना चाहिए, उतना ही लेंगे और निरंतर दूसरों की सेवा का काम करेंगे। विषय-वासना से मुक्त होकर ऐसे नये जीवन का जब आरंभ करेंगे, तभी उन्नति होगी, तब तक उन्नति नहीं हो सकती है।

पृथ्वी को पाप का भार, संख्या का नहीं

आज अक्सर कहा जाता है कि जनसंख्या बढ़ी है। इसलिए उसे कृत्रिम उपायों से कैसे रोका जाय, यह सोचा जाता है। मुझे इस बात का बहुत अफसोस होता है। इससे मुझे तीव्र वेदना होती है। मैंने कई बार कहा है कि पृथ्वी को संख्या का भार नहीं होता, पाप का भार होता है। अगर पाप से संख्या बढ़ती है, तो उस बढ़ी हुई संख्या का पृथ्वी को भार होगा। परन्तु पुण्य से संख्या बढ़ती है, तो उसका भार कभी नहीं होगा। महापुरुषों की संख्या का पृथ्वी को कभी भार नहीं होगा। पृथ्वी पर पैदा हुए प्राणी पुरुषार्थी हों, तो पृथ्वी उनके पालन के लिए असमर्थ नहीं हो सकती। लेकिन पाप की संतति का पालन करने में वह असमर्थ हो सकती है। पाप से संतति-नियमन होगा, तो उसका भी पृथ्वी को भार होगा। उससे जो भी संतति बचेगी, वह निर्वीर्य, निस्सत्त्व होगी। जो माँ-बाप संतान की इच्छा नहीं रखते, संतान की सेवा का जिन्हें भान नहीं होता, उनके बच्चे शक्तिहीन, वीर्यहीन और पुरुषार्थहीन होंगे। वे जितनी भी संतान होने देंगे, सब धर्मजन्य नहीं, कामजन्य होंगी। उनमें से कभी भी कोई महात्मा गांधी, राणा प्रताप, रामकृष्ण परमहंस निर्माण नहीं होंगे।

यह सारा आध्यात्मिक विषय है। जिस तरह प्राणियों की संतति का विचार किया जाता है, उस तरह मनुष्य की संख्या के बारे में कभी नहीं करना चाहिए। एक मनुष्य भी सारी दुनिया का रंग बदल सकता है। जो मनुष्य पैदा

होता है, वह समर्थ और धर्मनिष्ठ हो, यही हमारी इच्छा होनी चाहिए। संतान-निर्मिति भी एक कर्तव्य हो जाना चाहिए और बाकी का सारा जीवन संयम से बिताना चाहिए। जब मनुष्य विज्ञान का सहारा लेकर अपना जीवन बनायेगा, तब जिस शक्ति से महापुरुष निर्माण हुए हैं, उसका वह दुरुपयोग नहीं करेगा।

इसलिए वानप्रस्थाश्रम की स्थापना, ब्रह्मचर्याश्रम को लम्बा करना और गृहस्थाश्रम को छोटा बनाना, यह सब हमें करना है। इसके लिए चंद लोग भी तैयार हो जायँ और आरंभ करें, तो उनकी खुशबू फैलेगी, लोकमत बनेगा। तब वह चीज आ सकती है।

सृष्टि के साथ अपने पर काबू पाओ

एक जमाना था, जब संन्यास के लिए लोकमत था। तब शंकराचार्य और बुद्ध ने असंख्य संन्यासी खड़े किये, जिन्होंने इस देश में और विदेश में धर्म-प्रचार किया। वह कितना गौरवशाली इतिहास है! हम कितने भाग्यशाली हैं कि हम ऐसे देश में पैदा हुए हैं। इसी दृष्टि से हमें सीखना चाहिए। हमें संयम का अध्ययन करना, वानप्रस्थाश्रम की स्थापना करनी है। संन्यास की बात मैं अभी छोड़ ही देता हूँ। परन्तु कम-से-कम वानप्रस्थाश्रम हो, ऐसा लोकमत बने, यह मैं चाहता हूँ। इसलिए आरंभ तो व्यक्तियों से ही होता है।

जब से मैं बिहार आया हूँ और भूमि की समस्या को हल ही करने का निश्चय किया है, तब से मुझे लगता है कि हमें जीवन की सभी बुनियादी चीजें समझनी चाहिए। दशरथ से कहा गया था कि अब तुझे सारा कारोबार राम के ऊपर सौंपकर वन में जाना चाहिए। बुढ़ापे में अगर वासना नहीं मिटी और वासना मिटने की राह देखते रहो, तो वह तो मिटेगी नहीं और शरीर भी खतम हो जायगा। इसलिए वासना को जबरदस्ती मिटाकर दशरथ जंगल गये। एक युग होने के बाद वासना कमजोर हो जाती है। फिर भी मनुष्य को अपने पर निग्रह करना पड़ता है। जहाँ मैं भूदान-यज्ञ की और संपत्ति के विभाजन की जैसी बुनियादी बात करता हूँ और आप संकल्प भी

करते हैं, वहीं मुझे लगता है कि आपके सामने जीवन की और भी गहरी बातें रखूँ।

मैंने अभी जो वानप्रस्थाश्रम की बात कही, उसमें कोई राजनैतिक प्रचार नहीं था। यह एक गहरा सवाल है। किसी भी देश का उद्धार आध्यात्मिक गहराई में गाये बिना नहीं होता। जैसे-जैसे विज्ञान बढ़ेगा और सृष्टि पर मनुष्य काबू पायेगा, उतनी ही मात्रा में अगर वह अपने पर काबू नहीं पाता, तो वह राक्षस बनेगा और खुद का और दुनिया का संहार करेगा। किन्तु उतनी सत्ता हम अपने पर पायेंगे, तो आत्मज्ञान और विज्ञान एक होगा। हम पृथ्वी पर स्वर्ग निर्माण कर सकेंगे। अपरिग्रह का विचार और इन्द्रिय और विषयों से निवृत्त होने की बात, यह दो विचार हम आपके सामने रखते हैं। वानप्रस्थ का विचार सिर्फ हिन्दू-धर्म ने ही नहीं, बल्कि दूसरे धर्मों ने भी किया है। कुरान में लिखा हुआ है कि ४० साल की उम्र के बाद मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति विषय-वासना से दूर होने की होती है।

मजदूर काम को पूजा समझें

अभी मुझसे एक सवाल पूछा गया है। प्रश्नकर्ता कहते हैं कि हम कारखाने के मजदूर हैं, तो हम भूदान-यज्ञ में किस तरह सहयोग दे सकते हैं? मेरे मन में भूदान-यज्ञ का जो स्वरूप है, उसमें एक स्वरूप यह भी है कि मैंने भूमिहीन मजदूरों का आन्दोलन उठाया है। यह आन्दोलन बुनियादी है, ऊपर का नहीं। देहात के भूमिहीन मजदूरों की हालत सबसे खराब है। उनकी तरफ से बोलनेवाला कोई नहीं है। शहर के मजदूरों की तरफ से बोलनेवाले कई हैं। इसीलिए मेरा आन्दोलन भी मजदूर-आन्दोलन है। जब मेरा यह काम समाप्त होगा, तब मैं दूसरे मजदूरों का सवाल उठाऊँगा। लेकिन अभी मैं इन मजदूरों को यह कहना चाहता हूँ कि आखिर यह भूदान-यज्ञ देश का उत्पादन बढ़ाने के लिए है। उत्पादन किये बगैर कोई खाये नहीं, यह बात मैं कहना चाहता हूँ। रवि ठाकुर ने एक बार कहा था कि हम सारे विभाजन (divide) तो करते हैं, पर गुणन (multiply) नहीं। इस पर हर कोई गंभीरता से सोचे। मैंने जेल में भी सबके लिए उत्पादक काम माँगा था, जिससे सबको काम की तालीम मिली थी।

मेरा मजदूरों से कहना है कि हमारा आन्दोलन शरीर-परिश्रम की निष्ठा बढ़ानेवाला और उत्पादन बढ़ानेवाला है। इसलिए मैं उनसे प्रार्थना करूँगा कि आप उत्तम-से-उत्तम निष्ठा रखकर अधिक-से-अधिक उत्पादन कीजिये। काम कम करने की बात मत कीजिये। आजकल ८ घंटे के बदले ७ घंटे काम करने की और ७ दिन के बदले ६ दिन काम करने की जो बात चली है, वह सब गलत है। परमेश्वर ने हमें यह शरीर और यह वाणी निरन्तर कर्म के लिए दिये हैं। मैं मानता हूँ कि एक ही प्रकार का काम लगातार नहीं करना चाहिए। अलग-अलग प्रकार के काम करने चाहिए। परन्तु आठ-दस घंटे तो काम करना ही चाहिए। मैंने दस घंटे शरीर-परिश्रम किया और देखा है कि उससे बुद्धि का विकास होता है। थोड़े-से चिंतन से अधिक काम होता और उत्पादन भी बढ़ता है।

इसलिए मैं मजदूरों से कहता हूँ कि तुम्हारा अपने मालिक के साथ विरोध है, इस बात को भूल जाओ। मालिक का विरोध करना है, तो दूसरी बातों में करो, लेकिन उत्पादन में कमी मत करो। मजदूर प्रामाणिक और निष्ठावान् होंगे, तो मालिक के खिलाफ अच्छा सत्याग्रह कर सकते हैं। मालिक भी उनकी बात मानेंगे और खुद मजदूरी करने लग जायँगे। एक भाई कहते थे कि हमें कर्तव्य पर जोर देना चाहिए। परन्तु आज यह कोई नहीं करता और सब हक की बात करते हैं। यह बहुत सोचने की बात है। मजदूर अगर कर्तव्य-निष्ठ बनेंगे, तो उनमें ऐसी नैतिक शक्ति निर्माण होगी, जिसका असर मालिकों पर, सरकार पर और समाज पर भी होगा।

आज यह माना जाता है कि धन्धे के लिए सिर्फ मालिक ही जिम्मेवार हैं, लेकिन यह गलत है। मजदूर इस तरह से सोचें कि काम हमारी पूजा है, उसे खंडित नहीं होने देंगे। यह जीवन का अत्यन्त पवित्र काम है। इसमें खलल नहीं होने देंगे। अगर वे यह करें, तो मैं समझूँगा कि उन्होंने भूदान-यज्ञ में उत्तम-से-उत्तम सहयोग दिया।

पटना
२५-१०-'५२

हमारे काम का बुनियादी या मूलभूत विचार यह है कि हमें समाज में परिवर्तन लाना है। वह मूलभूत विचार, जिसे तत्त्वज्ञान कहते हैं, जो हरएक धर्म की प्रतिष्ठा है और जिसके आधार पर धर्म गहराई में जाता है, मैं आपके सामने रखूँगा। जिस धर्म का विचार गहराई में नहीं जाता, वह टिकता नहीं। वह जीवननिष्ठा के तौर पर नहीं रह सकता और समाज के जीवन में बदल भी नहीं ला सकता।

तत्त्वज्ञान की गहराई में जाने की आवश्यकता

हमारी भारतीय परंपरा ऐसी है कि जो भी परिवर्तन करना चाहिए, उसके लिए गहराई में पहुँचकर तत्त्वज्ञान में उसका मूल पकड़ना पड़ता है। इस तरह जिन्होंने किया है, उन्हींके मूल स्थिर हैं और जिन्होंने इस तरह नहीं किया, उनके कुछ सुधार तो समाज ने ले लिये; पर वे स्थिर नहीं रह सके। मैं जो भी कदम उठाता हूँ, उसकी गहराई में जाकर मूल पकड़े वगैर नहीं रहता। मैंने अपनी जिंदगी के तीस साल एकांत चिन्तन में बिताये हैं। उसीमें जो सेवा बन सकी, वह मैं निरंतर करता रहा। लेकिन मेरा जीवन निरंतर चिन्तन-शील था, यद्यपि मैं उसे सेवामय बनाना चाहता था। अभी किसीने कहा कि विनोबा विरक्त पुरुष थे और अनुरक्त बनकर आये हैं। ठीक है, कोई भी विचार भाषा में ठीक तरह से तो नहीं आ सकता। मेरी वह विरक्ति थी, लेकिन उसका रूप चिन्तन का था। समाज में जो परिवर्तन लाना चाहिए, उसके मूल के शोधन के लिए वह चिन्तन था। अब मैंने काम हाथ में लिया है। परंतु बुनियादी विचारों में मैं अब निश्चिंत होकर घूमता हूँ। कोई समस्या मुझे डराती नहीं। कोई भी समस्या चाहे जितनी बडी हो, मेरे सामने छोटी बनकर आती है। मैं उससे बड़ा बन जाता हूँ और आप भी उससे बड़े नजर आते हैं। कोई भी समस्या बड़ी हो, लेकिन वह मानवीय है, तो मानवीय बुद्धि से हल हो सकती है। हरएक समस्या को हल होना ही है।

अपहरण और अपरिग्रह

मेरे विचार का विरोधी जो विचार आज दुनिया में है, उसका नाम है, अपहरण-प्रक्रिया। यह भी एक तत्त्व-विचार है। इसके अनुसार यह माना जाता है कि आखिर व्यक्ति समाज के लिए होता है। तो समाज के लिए व्यक्ति की सम्पत्ति का अपहरण करना दोषयुक्त नहीं, बल्कि अपहरण न करने में ही नीति-दोष है। व्यक्ति के पास सम्पत्ति रखने में और सम्पत्ति के अपहरण को रोकनेवाला विचार भी अधर्म है, ऐसा उन्होंने माना है। इस विचार में कुछ अच्छी और कुछ बुरी बातें हैं। इसमें जो अच्छाई है, उसका दुनिया को आकर्षण हुआ और कुछ देशों में उसके अनुसार समाज बना है। इतने थोड़े समय में उसका परिणाम हम नहीं जान सकते। परंतु उसमें जो वादे हैं, उनका आकर्षण आज तो दुनिया को होता है। हिन्दुस्तान में भी अपहरण के तत्त्व के प्रति आकर्षण रखनेवाले कुछ लोग हैं। मैं उनसे भिन्न विचार कहना चाहता हूँ। अपरिग्रह का विचार अपहरण के विरुद्ध है।

संन्यासी को अपरिग्रह, गृहस्थ को परिग्रह

आज का समाज कहता है कि अपरिग्रह बहुत ऊँची बात है और यह गांधीजी और विनोबा जैसे लोगों के लिए पैदा हुआ है। अपरिग्रह का विचार उन्हींकी खास 'इस्टेट' है। इस पर उन्हींका अधिकार है। उनकी हम पूजा करेंगे, परन्तु हमारे गृहस्थ-जीवन में परिग्रह ही रहेगा, अपरिग्रह नहीं। पुराने जमाने में कुछ मेल निकला था। आप संन्यासी अपना काम अपरिग्रह से चलायें, पर हम तो परिग्रह मानेंगे। हम आपको भिक्षा देंगे। अन्तिम आदर्श के तौर पर हम आपका आदर करेंगे। पर हमारा आदर्श तो परिग्रह ही है। इस तरह से लोग कहते थे।

पहले परिग्रह की कुछ मर्यादा थी। उनके बीच परिग्रह का राज्य था। व्यक्तिगत संपत्ति मान ली थी, लेकिन उस विचार को संन्यास के अंकुश में रहकर फकीरों को आदरणीय मानकर चलना पड़ता था। पर एक विचार के तौर पर कुछ का अन्तिम आदर्श वह था और कुछ का नहीं। इस तरह धर्म-विचार के टुकड़े हो जाते हैं, तो सीमित लाभ होता है। तत्त्वज्ञान

में मजबूती नहीं आती। परिग्रह की मर्यादा का पालन करने और अपरिग्रह को आदर्श मानने में कुछ अच्छाई तो थी, पर बुराइयाँ भी थीं। परिग्रह को अधिकतर लोग मानते थे। अपरिग्रह का तो फिर नाम भी नहीं रहा। जब लोभी लोगों का मुकाबला करने का समय आया, तो भले-भले भी कहते थे कि परिग्रह की जरूरत है। सामनेवाले के पास इतनी-इतनी फौज है, तो हमारे पास भी इतनी होनी चाहिए। नहीं तो हम नहीं टिकेंगे। दुनिया में टिकने के लिए हमारे पास इतना ऐश्वर्य होना आवश्यक है। इस तरह लोभी का मुकाबला करते समय परिग्रह की मर्यादा छोड़ दी गयी। लोभी मिटनेवाले नहीं थे। इससे तो उनमें होड़ चली। देखते-देखते निर्लोभी भी लोभी बन गये और लोभियों की एक बड़ी जमात हो गयी।

परशुराम की मिसाल हमारे सामने है। खुद ब्राह्मण होते हुए भी उसने शस्त्र लिया, तो वह क्षत्रियों को कैसे मिटा सकता है? क्योंकि उसमें क्षत्रियत्व का बीज बोया था। क्षत्रिय का लोभ होने से क्षत्रियत्व नहीं मिट सकता था। अगर ब्राह्मण के समान रहता, तो उसका काम हो जाता। लेकिन उसने ब्राह्मणत्व को समाप्त किया, इसलिए उसका अवतार भी समाप्त हो गया और मर्यादा पुरुषोत्तम राम आये। उसे तो ब्राह्मण की शक्ति पैदा करनी चाहिए थी। जिसको मिटाना हो, उसीके शस्त्र हम लेते हैं, तो उसीके स्थूल स्वरूप को ही मिटा सकते हैं। बाहर के जुल्मी मनुष्य को हम खतम करते हैं, पर अन्दर से उसे जिलाते हैं। इसी तरह निर्लोभी ने लोभी को मिटा दिया, पर खुद लोभी बन गया।

कंजूस और चोर

आज दुनिया में परिग्रह का राज्य चल रहा है। परिग्रह के लिए ऐसे कानून खड़े किये, जिससे वह गलत नहीं, बल्कि कानूनी माना गया। कानून चोरी को गुनाह मानता है, पर जिस किसीने संग्रह करके उस चोर को प्रेरणा दी, उसे समाज चोर नहीं मानता। वह कोई गैर कानूनी बात कह रहा है, समाज यह नहीं मानता। लेकिन उपनिषदों ने तो कहा है कि मेरे राज्य में कोई चोर न हो और कोई कंजूस न हो, क्योंकि जहाँ कंजूस होते है, वहाँ चोरों का होना लाजिमी है। कंजूस ने चोरों को पैदा किया है। कंजूस चोरों के बाप हैं। उनके

औरस पुत्रों को हम जेल भेजते और पिता को खुले छोड़ते हैं। वे शिष्ट बनकर समाज में घूमते और गद्दी पर बैठते हैं, यह कहाँ का न्याय है? 'स्तेन एव सः।' हम उन्हें पहचानते नहीं कि वे चोर हैं, पर वे चोर ही हैं, यह गीता ने समझाया है।

किंतु हम लोगों ने मान लिया कि गीता तो संन्यासियों की किताब है। वह गृहस्थों के लिए नहीं है। इस तरह हमने गीता को भी संन्यास दे दिया। पहले संन्यासियों का इतना आदर किया गया कि घर में उनको स्थान नहीं दिया, यह सोचकर कि हमारा घर पापी है। पर आज हम संन्यासी को मंदिर में इसलिए रखते हैं कि घर में रखने से कहीं हमारा पुत्र संन्यासी न बन जाय। आज दुनिया में जो अधिक परिग्रह करता है, वही कामयाब होता है। परिग्रह सबके सिर पर बैठा है। लेकिन आज के लिए तो अपरिग्रह का ही तत्त्व है। वह संन्यासियों के लिए ही नहीं, बल्कि सामान्य नागरिकों के लिए भी है।

समाजाय इदम् न मम

हमें सब कुछ समाज को अर्पण करना चाहिए और जितना अपने लिए आवश्यक हो, उतना ही लेना चाहिए। जिस तरह यज्ञ में आहुति देते समय हम कहते है कि 'इंद्राय इदम् न मम, अग्नये इदम् न मम'—यह इंद्र के लिए है, यह अग्नि के लिए है, मेरे लिए नहीं—इसी तरह अब कहना चाहिए कि 'समाजाय इदम् न मम, राष्ट्राय इदम् न मम' यह समाज के लिए है, राष्ट्र के लिए है, मेरे लिए नहीं। तू जो पैदा करेगा, वह सब समाज को अर्पण कर और फिर समाज की तरफ से तुझे जो मिलेगा, वह अमृत होगा।

अपरिग्रह के आधार पर नयी रचना

आज की हालत को हमें बदलना है और सच्चे सेवकों की सेवकाई का गौरव करना है। यह कैसे होगा? अगर आप जो कुछ आपके पास हो, उसे सब समाज को अर्पण नहीं करते और भूमि के मालिक बनते हैं, तो यह नहीं हो सकता। मैं चाहता हूँ कि कारखाने में मजदूर-मालिक, यह भेद न रहे, सारे सेवक बनें। अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार काम करके सब समाज को अर्पण करें। फिर समाज से अपने जीवन-निर्वाह के लिए जो मिले, उसीसे

सन्तुष्ट रहें। इतना ही नहीं, बल्कि हरएक व्यक्ति को सोचना चाहिए कि मेरी संतान मेरे लिए नहीं, समाज के लिए है। जो अक्ल मुझे मिली है, वह स्वयं-भू नहीं, समाज के लिए है। मैं इस तरह का अपरिग्रह समाज में लाकर वैभव और संपत्ति बढ़ाना चाहता हूँ। पर अगर समाज नारायणस्वरूप है, तो लक्ष्मी उसके पास जानेवाली ही है। इसमें किसीको डरने की जरूरत नहीं है। हम एक सुन्दर समाज बनानेवाले हैं और इसीकी बुनियाद जमीन का मसला है। मै यही समझा रहा हूँ कि जमीन सबके लिए है। यह समझना कठिन नहीं है। आज हिंदुस्तान में सब उद्योग टूट गये हैं और जमीन की माँग बढ़ रही है। अतः आज जमीन का मसला लेकर अपरिग्रह की तालीम का आरंभ करें, तो वह विचार समाज के मन में अच्छी तरह से प्रविष्ट होगा। अपरिग्रह के आधार पर एक भव्य समाज-रचना निर्माण करना मेरा उद्देश्य है।

मेरा अपरिग्रह शंकर जैसा नहीं है। चमड़ा पहनकर भभूत लगानेवाला कोई भी हो सकता है, पर उसके हाथ में कुबेर रहेगा। विष्णु के पास लक्ष्मी पड़ी है, लेकिन वह उसके लिए अत्यन्त उदासीन है। समाज में सब पड़ा होना चाहिए, परन्तु व्यक्ति को उतना ही लेना चाहिए, जितना आज के लिए जरूरी हो। कल की चिंता भी नहीं करनी चाहिए। जो जवानी में समाज की चिंता करता है, समाज बुढ़ापे में उसकी चिंता करता है। अपरिग्रह करनेवाले की बुद्धि बुढ़ापे में तेज हो जाती है। ऐसे बूढ़े भार नहीं बनते, बल्कि उनका आभार माना जाता है। ऐसे ज्ञानी वृद्ध शरीर से कुछ कम काम करें, तो भी बुद्धि से अधिक काम करते हैं। जवानी में समाज की सेवा का काम किया, तो बुद्धि का विकास हो जाता है।

आज गरीब-अमीर, दोनों दुःखी हैं

आज तो लोग जवानी में ही दुनिया को लूटते हैं, इसलिए बुढ़ापे में सब उन्हें तुच्छ मानते हैं। शरीर क्षीण हो जाता है, तो पुत्र, मित्र, पड़ोसी का प्रेम नहीं मिलता। प्रेम गमाकर लक्ष्मी प्राप्त की और उसके साथ रोग भी लाये! उसने क्या कमाया, जिसने रोग, चिंता और धन कमाया? क्या उसकी कमाई अच्छी है? क्या उससे समाज सुखी बन सकता है? अगर सुखी बनता, तो ये

लोग रोते क्यों और फिर मुझे घूमना क्यों पड़ता? सब लोग मेरे पास आकर रोते हैं। गरीबों को पेट की चिंता होती है और श्रीमानों को दूसरी चिंता। उनके घर में एक-दूसरे की बनती नहीं। मैं उनसे कहता हूँ कि जहाँ आपने संपत्ति को अंदर लाया और प्रेम को बाहर कर दिया, घर में आग लगायी, वहाँ सुख कैसे हो सकता है? प्रेम और पैसा साथ-साथ कैसे रह सकते हैं?

गरीब के घर में देखो। बाप-बेटे में कितना प्रेम होगा। बेटा बाप की कितनी सेवा करता है। वह उसके लिए चाहे जितनी कीमती दवाइयाँ खरीदता है। लेकिन श्रीमान् के घर में तो बेटा बाप की ओर देखता तक नहीं। बाप बीमार पड़ने पर वे डॉक्टर और नर्स को बुला देते हैं। माँ, बहन, बेटा कोई सेवा करनेवाला नहीं होता। यह वर्णन अतिशयोक्ति नहीं है। मैंने बड़े लोगों का जीवन अंदर से देखा है। सारांश, आज गरीब और श्रीमान् दोनों दुःखी हैं। दोनों के दो प्रकार के दुःख हैं। दुःख का बँटवारा जिस समाज-रचना ने किया, वह समाज-रचना किस काम की?

हर घर सरकार की बैंक बने

यह मत समझिये कि जो बड़े-बड़े परिग्रही हैं, उन्हींको यह समझना आवश्यक है। एक छोटी-सी लँगोटी में भी आसक्ति रह सकती है। इसलिए सबको समझाना है। जिसके पास जो भी कुछ हो, वह उसके घर में हो, तो भी समाज के लिए है। जितने घर हैं, वे सब हिन्दुस्तान सरकार के बैंक होने चाहिए। आज तो सरकार को ऋण लेना पड़ता है, कर बिठाना पड़ता है, अमेरिका का आधार लेना पड़ता है या नासिक के छापेखाने की शरण लेनी पड़ती है। लेकिन मैं पाँचवाँ प्रकार बता रहा हूँ। सरकार की माँग हो जाय, तो सारे देने लगेंगे। अगर ऐसी लोकप्रिय सरकार बने—और वह बन भी सकती है—तो हर घरवाला सरकार से कहेगा कि 'यह तो आपकी चीज है। चाहे जितना लो, मैं चिंता नहीं करूँगा कि कल क्या खाऊँ। आप जो खिलाओगे, वही खाऊँगा।'

ऐसी सरकार और ऐसा समाज बन सकता है, यह महान् विचार हमें दुनिया में फैलाना है। इसलिए सिर्फ श्रीमानों से नहीं, बल्कि गरीबों से भी जमीन माँगनी है। हरएक से कहना है कि तुमसे भी नीचे कोई है, उसकी

ओर देखो। तुम्हारे पास शाम की रोटी नहीं है, तो उसके लिए एक टुकड़ा ही निकालना तुम्हारा धर्म है। होना तो यह चाहिए कि सारा-का-सारा समाज को अर्पण कर दिया जाय। परन्तु आज वह नहीं बन सकता और समाज भी इसके लिए तैयार नहीं है। तो, आज कम-से-कम एक टुकड़ा याने छठा हिस्सा तो देना ही चाहिए।

वामन के तीन कदम

अक्सर कहा जाता है कि अब बड़े जमींदार नहीं रहे। लेकिन मुझे सिर्फ बड़ों से ही नहीं, हरएक से दान चाहिए। इसीसे धर्म-विचार फैलेगा। 'दान-पत्र' मेरे विचार की मान्यता की रसीद है। फिर मैं इन उसूलों पर नयी समाज-रचना बनाऊँगा। हमने अभी संपत्तिदान की योजना बनायी है। कुछ कहते हैं कि आप उसमें ठगे जायँगे। मेरा मानना है कि इस तरह जो अविश्वास रखते हैं, वे समाज के अवयव होने लायक नहीं हैं। क्या माँ-बाप पर सन्तान का इतना अविश्वास हो सकता है? यह सब कानून से नहीं, प्रेम से हो रहा है। फिर मैं अविश्वास कैसे रखूँ?

मुसलमान पाँच बार नमाज पढ़ता है, तो क्या उसे देखने के लिए कोई चौकीदार रहते हैं? हिंदू लोग भी धर्म-कार्य इसी तरह से करते हैं। वैसे ही यह धर्म-विचार भी माना जायगा। मुझे जरा भी डर नहीं है कि मैं ठगा जाऊँगा, क्योंकि मैं सबकी अंतरात्मा में जाता हूँ। संपत्ति-दान की योजना मेरा दूसरा कदम है। पहला कदम तो भूमिदान का है। मैंने डेढ़ साल पहले ही कहा था कि मैं वामन बनकर आया हूँ। अब तीसरे कदम के लिए सिर झुकाना होगा और तीसरा पवित्र पाद मस्तक पर आयेगा। तब सब गरीब बन जायँगे और हिंदुस्तान का अनुकरण सारी दुनिया करेगी। हिंदुस्तान को आदर्श मानकर दुनिया चलेगी।

टिकारी
३१-१०-'५२

कुछ लोग कहते हैं कि 'संपत्ति के बँटवारे की बात अभी क्यों उठाते हो, अभी तो पैदावार कम है। इसलिए पहले पैदावार बढ़ाने की बात करो। आज हमने बँटवारे की बात की, तो उससे भूख की तकसीम हो जायगी और अनेक को भूखा रहना पड़ेगा।' लेकिन यह खयाल गलत है। बँटवारा और उपज, दोनों साथ-साथ चलने चाहिए। जिन्दगी में हम इस तरह का फर्क या विभाग नहीं कर सकते। पहले यह काम और पीछे वह काम, ऐसा कुछ कामों में नहीं हो सकता। पहले श्वासोच्छ्वास करेंगे और फिर उसके बाद खेती, यह नहीं कहा जा सकता। खेती जैसे दूसरे कामों के साथ-साँस लेना भी निरन्तर चलता है, उसीसे जिन्दगी बनी रहती है, वैसे ही उपज के साथ साथ समता का खयाल भी चलना चाहिए।

कुटुम्ब का न्याय

हम कुटुम्ब में यह नहीं सोचते कि अभी उपज बढ़ायेंगे और फिर सबको खिलायेंगे। यह भी नहीं सोचते कि अभी कुछ लोगों को खिलायेंगे और कुछ को नहीं। फिर कुटुम्ब के लिए सोचने का एक ढंग और समाज के लिए सोचने का दूसरा ढंग, यह क्यों? वास्तव में इस तरह की दलील करनेवाले वे हैं, जो पूँजीवादी विचार रखते या जिनके दिलों पर पूँजीवादियों द्वारा पैदा किये विचारों का असर होकर भ्रम निर्माण हुआ है।

हमने भूदान-यज्ञ का जो आन्दोलन उठाया, उसमें उपज और बँटवारा, दोनों साथ-साथ चलेंगे। बँटवारा होगा, तो भेद मिटेंगे। जो काश्त करता है, उसको थोड़ी जमीन मिल जायगी। समाज में गणित को देखकर बँटवारा नहीं किया जा सकता। पूरा नहीं, परन्तु कुछ तो बँटवारा होना ही चाहिए और उसीके साथ-साथ उपज बढ़ेगी, यह मेरा मानना है। बँटवारा पहले होता है, तो उसके साथ ही उपज बढ़ाने की युक्ति निर्माण होती है। आज खेती में किसान की अक्ल और प्रेम का उपयोग नहीं हो रहा है, क्योंकि वह उसका मालिक नहीं है। परन्तु बँटवारा होने के बाद उसका उपयोग होगा।

शेरघाटी
९-११-'५२

हमारे चारों ओर अनंत सृष्टि फैली है और उस अनंत के बीच हम एक तुच्छ शरीर धारण किये खड़े हैं। सारी सृष्टि हमें निरंतर देती ही आयी है।

सृष्टि से दान का सबक

सूर्यनारायण सुबह आते और अपनी सहस्र-किरणों से हमें आलिंगन करते हैं। हमारे घर में वे इस तरह प्रवेश करते हैं, जिस तरह कोई सेवक स्वामी के घर दाखिल होता है। उसकी कितनी मर्यादा है! हमने दरवाज़े बंद किये, तो वह धक्का देकर नहीं खोलता, वहीं खड़ा रहता है। अपनी सारी किरणों के साथ वह यह सोचता प्रतीक्षा करता है कि मालिक कब किवाड खोलता है और कब मैं सेवा के लिए अंदर जाता हूँ। हम आधा किवाड़ खोलते हैं, तो भी वह अंदर आता है और पूरा खोलते हैं, तो भी आता है। हमारे जैसे अत्यंत तुच्छ लोगों की सेवा में वह जीवन दे देता है।

यह वायु, हवा निरंतर बहती रहती है। यह कहाँ से आती है और कहाँ जाती है, कोई नहीं जानता। प्राचीनकाल से एक हवा हिमालय की ओर से और एक समुद्र की तरफ से आती है और हमारी छाती को मधुर स्पर्श करती, हम पर प्रेम बरसाती है। उसीके कारण हमारे श्वासोच्छ्वास चल रहे हैं। हमारा तुच्छ जीवन परिपूर्ण बनाने के लिए वह निरंतर काम करती है। अगर वह यह न करे, तो हम खतम हो जायँ।

यह गंगा हमारी सेवा के लिए निरंतर बहती है। हम पेड़ लगायें, तो उसकी सेवा के लिए वह फौरन दौड़ती है। अगर हम आम का पेड़ लगायें, तो वह आम पैदा करेगी और बबूल का पेड़ लगायें, तो बबूल पैदा करेगी। आप चाहे जैसा करो, उसका काम तो आपकी इच्छा पूर्ण करना ही है। हम बच्चों की सेवा का उस मैया ने व्रत ही ले लिया है।

और यह बादल हमें निरंतर देते ही रहते हैं। हमसे कुछ भी नहीं लेते।

इस तरह सारी सृष्टि हमारे लिए निरंतर दान का काम करती है। पेड़ फलते-फूलते हैं। हम उन्हें पानी देंगे, तो वे फलेंगे और नहीं देंगे, तो दुःखित तो होंगे; परन्तु जितनी अपनी रसशक्ति है, उतना फलेंगे। हम उन्हींकी छाया में बैठकर उनकी शाखाएँ काटें, तो भी वे कुछ नहीं कहते। इस तरह सारी सृष्टि हमें दान का शिक्षण दे रही है।

यही शिक्षण हमारी माता ने हमें बचपन में दिया है। तब हम छोटे थे। हमारी रक्षा करनेवाला दूसरा कौन था? लेकिन जहाँ हम पैदा हुए, वहाँ उसके स्तन दूध से भर गये और उसने हमें दूध पिलाया। हमें दूध पीने की जितनी तमन्ना थी, उससे भी अधिक तमन्ना उसे हमें दूध पिलाने की थी। इस तरह देने का सबक भगवान् ने हमें बचपन से ही सिखाया है।

कुटुम्ब-प्रेम को व्यापक बनाइये

लोग कहते हैं कि हम उल्टी गंगा बहा रहे हैं, जो एक हद तक सही भी है। किन्तु उल्टी और सीधी क्या है, उस पर सोचना चाहिए। सृष्टि हमें क्या सिखा रही है? यह सीधी गंगा है या उल्टी? वह तो हमें देते रहने का ही काम सिखाती है। अगर हम सारे-के-सारे लेना ही चाहेंगे और कोई देना नहीं चाहेगा, तो वह कैसे होगा? कारण लेने का काम भी देने पर ही निर्भर है। हमारा काम सृष्टि के साथ एकरूप होने का है। यह कार्यक्रम उस सृष्टि के अनुकूल है। इसलिए हमारा काम सीधी गंगा बहाने का ही कहा जायगा। आज जो चल रहा है, वह अत्यन्त कृत्रिम और सृष्टि के विपरीत है। लेकिन फिर लोग पूछते हैं कि यह सब कैसे चल रहा है? वह चलता नहीं, चलने का आभास-मात्र हो रहा है।

वास्तव में परिस्थिति के कारण हम सब स्वार्थी नजर आते हैं। किन्तु अपने कुटुम्ब के अन्दर देखें, जिसे हम स्वार्थी कहते हैं, वह वहाँ क्या करता है? जहाँ उसने दीवाल के अन्दर प्रवेश किया, वहीं वह बच्चों से कितना प्यार करता है? बच्चों के लिए वह कोशिश नहीं करता, तो क्या बच्चे अपना कानूनी अधिकार बता सकते कि हमारा पालन-पोषण करो? उनकी भूख तो माता-पिता को लगती है। वे ही बच्चों को देने के लिए अधिक उत्सुक रहते हैं।

वे कहते हैं कि घर में हम अपने बच्चों के लिए, भाई-बहनों के लिए, माता-पिता के लिए कुछ करते हैं, तो हमें अत्यन्त आनन्द होता है। एक छोटे-से घर में छोटा-सा काम चलाने पर इतना आनन्द होता है, तो वही प्रेम का प्रवाह अगर हम सारे समाज के लिए बहायें, तो कितना महान् आनन्द होगा, इसका गणित कीजिये। सारांश, मेरा यह कार्यक्रम महान् आनन्द का कार्यक्रम है। इसीलिए तो वह समाज के हृदय में प्रवेश करता है

आनन्द की प्राप्ति नहीं

कुछ लोग कहते हैं कि 'जमीन माँगकर नहीं मिलती, मारकर मिलती है। संघर्ष के बगैर कोई भी चीज हासिल नहीं होती। संघर्ष जीवन का आधार और बुनियाद है।' लेकिन क्या माता जब बच्चे को दूध पिलाती है, तब उसके स्तन के साथ बच्चे का कोई संघर्ष हुआ था? हाँ, अगर आप उसे प्रेम का संघर्ष कहें, तो मैं मंजूर करूँगा। सारी दुनिया प्रेम पर चलती है। मरनेवाले व्यक्ति को अपने प्रेमीजनों को देखकर खुशी होती है, हृदय को तसल्ली होती है। तो क्या वहाँ उसकी आँखों का उन लोगों के साथ संघर्ष होता है? लेकिन इन लोगों की गलती यही है कि ये ढंग से सोचते नहीं। अगर ये लोग ढंग से न सोचेंगे, तो इनके सारे काम निकम्मे साबित हो जायँगे।

उपनिषदों ने गाया है कि यह सारी सृष्टि आनंद से पैदा हुई है और आनंद में लीन होती है। आज भी हरएक को कुछ-न-कुछ आनंद हासिल ही है। लोग कहते हैं कि सुख की प्राप्ति के लिए कोशिश करनी चाहिए। लेकिन सुख के लिए आप क्यों कोशिश करते हैं? वह तो आपका स्वरूप है। आप खुद सुख राशि, सुख-निधान और सुख-समूह हैं। इसलिए आप खुद सुख हैं। शक्कर मुँह में डालने से सुख निर्माण नहीं होता। चैतन्य-रस तो आपके ही मुँह में है। वही सुख पैदा करता है। आनंद आप खुद हैं। इसलिए आनंद की प्राप्ति के लिए कोई कोशिश करना नहीं है। अगर कुछ करना है, तो दुःख की प्राप्ति के लिए करो और वही आप आज कर रहे हैं। आपने खुद दुःख की प्राप्ति के लिए आज तक कितनी मेहनत की है! यह करना छोड़ दें, तो अपने मूल स्वरूप को प्राप्त कर लेंगे।

आप आनंदमय हैं। आनंद की प्राप्ति के लिए नहीं, आनंद की शुद्धि के लिए आपको कोशिश करनी है। किसीको शराब पीने में आनंद आता है, किसीको पढ़ने में, किसीको दान देने में, तो किसीको सेवा में। इस तरह आनंद अलग-अलग प्रकार का होता है। किन्तु जिसका आनंद शुद्ध है, उसीका जीवन उन्नत होता है। विष्ठा और मूत्र में पड़े हुए कीड़े को वहीं रहने में आनंद होता है। हरएक को अंदर से आनंद की अनुभूति होती है। बावजूद सब दुःखों के मनुष्य और सब प्राणी जिन्दा रहने की कोशिश करते रहते हैं। वैसे आनंद तो हरएक के जीवन में है ही, फिर भी कुछ करना है। जैसा आनंद का स्वरूप होगा, उसके अनुसार वह प्राप्त होगा। अपने आनंद के स्वरूप को शुद्ध करने का काम हमें करना है। अगर शराब पीने में आनंद होता हो, तो मिठाई खाने का अभ्यास करना चाहिए और मिठाई खाने से आनंद आता हो, तो आम खाने से आनंद कैसे आता है, इसका अनुभव करने का अभ्यास करना चाहिए। आम खाना कुछ शुद्ध रूप आनंद है, परन्तु उससे भी बेहतर दूसरे को खिलाने में है। इस तरह अपने आनंद का स्वरूप अधिकाधिक शुद्ध करने की कोशिश करनी चाहिए। सारांश, मनुष्य के लिए अगर कुछ करने का काम है, तो वह आनंद की प्राप्ति का नहीं, शुद्धि का है।

श्रावस्ती का किस्सा

सब लोग कहते हैं कि यह कलियुग में कैसे होगा? सब लोग दुःखी हैं। फिर भी आप देख रहे हैं कि लाखों लोग दान दे रहे हैं और आप खुद दिला रहे हैं। यह बुद्ध की भूमि है, वे महापुरुष यहाँ की हवा में सूक्ष्म रूप में मौजूद हैं। हरएक हृदय में उनकी स्फूर्ति का अंश पड़ा हुआ है। वे कारुण्यावतार ढाई हजार साल पहले लोगों को ज्ञान-दान देते हुए यहाँ घूमे थे। मैं भी तुच्छ व्यक्ति उन्हींके चरण-चिह्नों पर चलने की कोशिश कर रहा हूँ। मैं आपको श्रावस्ती का एक किस्सा सुनाता हूँ।

श्रावस्ती में लोगों ने भगवान् बुद्ध को वर्षा-निवास के लिए बुलाया। उन्होंने शांत-एकान्त ध्यान करने के निमित्त जमीन देने के लिए जमीनवालों से कहा। लेकिन जमीन के मालिकों ने मुहरें बिछवाकर जमीन दी। यह तो

भगवान् बुद्ध के जमाने की घटना है। और उसी श्रावस्ती में मेरे जैसे एक नाचीज मनुष्य को, जिसकी भगवान् बुद्ध के सामने कोई कीमत ही नहीं है, सौ एकड़ जमीन मिली, तो क्या सत्ययुग आया है या कलियुग ? आप जरा सोचिये। जहाँ बुद्ध भगवान् के लिए उनके भक्तों को मोहरें बिछाकर जमीन खरीदनी पड़ी, इतनी कीमती जमीन मुझे दान में आज मिली है।

युग आपके हाथ में

इसलिए युग की बात मत कीजिये। जिस युग में रहना चाहते हैं, वही आपके लिए युग है। युग हमें स्वरूप ही देता है। युग को स्वरूप देनेवाले कालपुरुष हम ही हैं। हमारे हाथ में यह सारी सृष्टि पडी है। गीता ने कहा है : 'यह जड़ सृष्टि जो दीख रही है, उसका धारण हम जीव कर रहे हैं।' सारी सृष्टि हमारे हाथ में है। हम चेतन हैं। हम उसे चाहे जैसा आकार दे सकते हैं। हम मिट्टी से घड़ा बनाते हैं, तो वह चुपचाप बनाने देती है। वह शिकायत नहीं करती कि मुझे ऐसा आकार दो। आप जो चाहें, वह आकार उसे दे सकते हैं। इसी तरह युग को भी आप चाहे जो आकार दे सकते हैं। यह युग आपके हाथ में मिट्टी है।

लोग मुझसे कहते हैं कि आपका चरखा इस यंत्र-युग में—जंतर-मंतर के युग में—नहीं चल सकता। लेकिन मैंने दिल्ली में चक्की पीसी और उससे आटा निकला। बावजूद इसके कि वह दिल्ली थी और यह युग यंत्र-युग था। इसलिए युग आपके हाथ में है।

सत्ययुग आ रहा है

आज जितना उन्नत समय आया है, उतना अब तक कभी नहीं आया था। क्या इतिहास में कभी आजादी की लड़ाई अहिंसा से लड़ी गयी थी ? लेकिन इस युग में लड़ी गयी और हमने अपनी आँखों से वह चमत्कार देखा। इतनी बड़ी भारी सल्तनत को, जिसे जर्मनी भी मिटा न सका और जिस पर सूर्य-नारायण कभी अस्त ही नहीं होता था, हमने मिटा दिया! और गांधीजी ने हमें उसके लिए साधन भी क्या बताया ? चरखा बताया, प्रेम और अहिंसा का निःशस्त्र कार्यक्रम बताया। यह सब हमने अपनी आँखों से देख लिया। किन्तु

लोग कहते हैं कि हमारी करतूत से स्वराज्य नहीं मिला, उसके लिए दुनिया की परिस्थिति भी जिम्मेदार थी। हम यह दावा तो नहीं करते कि यहाँ पर अहिंसा का जो टूटा-फूटा आन्दोलन चला, सिर्फ उसीसे हमें स्वराज्य मिला। गीता के अनुसार हम मानते हैं कि कोई भी काम केवल एक ही कारण से नहीं होता। फिर भी इतिहासकार लिखेगा कि अहिंसक आन्दोलन हिन्दुस्तान की आजादी का एक बहुत बड़ा कारण था।

आपने यह भी देखा कि लडाई के बाद जो कटुता रहती है, वह भी यहाँ नहीं बची। आज हिन्दुस्तान और इंग्लैण्ड के बीच मैत्री की भावना है। यह कोई साधारण चमत्कार नहीं है। यह सब आपके सामने हुआ है। इसलिए इस गलतफहमी में मत रहिये कि यह कलियुग है। यह तो सत्ययुग आ रहा है। हमारी आँखों के सामने आ रहा है, अत्यंत तेज रफ्तार से आ रहा है। विज्ञान के कारण आज गति बढ़ गयी है।

महायुद्धों का स्वागत

कुछ लोग कहते हैं कि सत्ययुग नहीं, महायुद्ध आ रहा है। मैं कहता हूँ कि जितने महायुद्ध आना चाहें, आयें। क्योंकि महायुद्ध मानव को सिखाते हैं कि युद्ध से कोई भी मसले हल नहीं होते। इसलिए मैं महायुद्धों का स्वागत करता हूँ। कारण उनके परिणामस्वरूप सारी दुनिया सीधी मेरे पास आयेगी और मेरे सामने सिर पटककर कहेगी कि हम हार गये हैं, अब हमें अहिंसा का रास्ता बताओ। इसलिए मैं कहता हूँ कि अगर आप विज्ञान को रोकना चाहते हैं, तो महायुद्ध करें। पुराने जमाने में जिस तरह भीम और जरासंध की कुश्ती होती थी, वैसी आज हिटलर और स्टालिन की कुश्ती हो जाय, तो हमें कोई हर्ज नहीं, क्योंकि उस हिंसा की सीमा होती है। वह दुनिया को स्पर्श नहीं करती। लेकिन आज विज्ञान के कारण हिंसा का स्वरूप ऐसा हो गया है कि आप विज्ञान को बढ़ाना चाहते हैं, तो हिंसा को छोडना ही पड़ेगा, मैं विज्ञान को बढ़ाना चाहता हूँ, इसलिए उसके साथ हिंसा हरगिज नहीं चल सकती। अगर हिंसा आयी, तो उसका मतलब यह होगा कि मनुष्य ने अपने नाश की तैयारी कर रखी है।

विज्ञान और अहिंसा का योग

यह युग विज्ञान का है और अहिंसा का आह्वान कर रहा है। इसलिए मैं कहता हूँ कि विज्ञान को बढ़ाओ, जोरों से बढ़ाओ। लोग कहते हैं कि विनोबा विज्ञान के खिलाफ है। लेकिन मैं विज्ञान के नहीं, यंत्र के खिलाफ हूँ। लोगों की समझ में यह नहीं आता कि विज्ञान यंत्र से अलग है। सृष्टि के ज्ञान को विज्ञान कहते हैं। मैं उसे बढ़ाना चाहता हूँ। मैं विज्ञान का प्रेमी हूँ। परन्तु विज्ञान तो हमारा नौकर है। हम जो चाहेंगे, उसके अनुसार वह करेगा। अगर हम चाहेंगे, तो वह हमारे लिए ऐटम बम बनाकर देगा और अगर चाहेंगे, तो वह पारमाणविक शक्ति निर्माण करेगा।

मनुष्य-जीवन को उन्नत, व्यापक और विशाल बनाने के लिए विज्ञान को खूब बढ़ाना चाहिए, किन्तु उसके साथ अहिंसा को भी जोड़ना चाहिए। अगर इन दोनों का मेल हुआ, तो जिस स्वर्ग की कहानियाँ हम पुराणों में पढ़ते हैं, वह स्वर्ग इसी पृथ्वी पर ला सकेंगे। दुनिया में आज अहिंसा की वृत्ति जितनी है, उतनी इतिहास में पहले कभी नहीं थी। प्राचीन काल से लेकर आज तक का इतिहास देखने पर आपको मालूम होगा कि आज बच्चा-बच्चा हिंसा-अहिंसा की बात करता है। जीवन के सारे मसले अहिंसा के जरिये हल हो सकते हैं या नहीं, इसकी चर्चा आज हो रही है। इसके पहले कभी भी ऐसी चर्चा नहीं हुई थी। उन लोगों ने माना था कि हिंसा का जीवन में कुछ-न-कुछ स्थान है ही। किन्तु आज यह युग आ रहा है, जब विज्ञान और अहिंसा एकत्र आ सकती है।

जमीन की कीमत नहीं हो सकती

मैं मिट्टी पाने आया हूँ, पर देता हूँ उससे भी कीमती चीज। लोग कहते हैं कि यहाँ की जमीन कीमती है, चार-पाँच हजार रुपये एकड़ की है। परन्तु अपने वे पांच हजार रुपये एक ढेर में रखो और उस पर चार महीने बारिश का पानी गिरने दो। फिर देखो कि उसमें से कितनी फसल उपजती है! जमीन की कीमत पैसे में नहीं है। जमीन अनमोल है, लेकिन इन बाजारवालों ने उसकी कीमत लगायी। माँ की कभी कीमत हो सकती है? माँ-बच्चे, भाई-बहनों

की भी कभी कीमत हो सकती है? जमीन तो हमारी माता है। क्या हवा की कीमत हो सकती है? वह परमेश्वर की अमूल्य वस्तु है। उसे पैसे से क्या नापते हैं? इसलिए जमीन कहीं भी सस्ती नहीं है, बहुत महँगी है। जमीन बेचनी नहीं होती, प्रेम से लेनी-देनी होती है। क्या कभी पानी बेचा जाता है? आपके घर पर कोई प्यासा आया, तो उसे पानी पिलाना आपका धर्म है। न पिलाने से आप शरमिंदा हो जाते हैं। इसी तरह जो मेहनत करते हैं, उन्हें जमीन देना आपका धर्म है। पैसे की मोहमयी भावना में पड़कर जमीन की कीमत मत लगाओ और दिल खोलकर दो, तो गया से पुनः एक बार दुनिया को नयी प्रेरणा मिलेगी।

जो कोई यह काम करता है, उसकी इज्जत बढ़ती है। दूसरे की इज्जत बढ़ती है, तो आपको दुःख क्यों होता है? मैं सबकी इज्जत बढ़ाना चाहता हूँ। इसलिए मेरा सबको निमन्त्रण है। किसीकी इज्जत घटती है, तो मुझे अत्यन्त वेदना होती है, मरणप्राय दुःख होता है। जब मैं सुनता हूँ कि किसीकी इज्जत घटी, तो मुझे लगता है कि यह जमीन फटकर मैं उसमें क्यों नहीं समा जाता। इसलिए मेरा नम्र निवेदन है कि आप सब इस काम में लग जाइये।

औरंगाबाद, गया
१०-११-'५२

सरकार 'शून्य' और जनता 'एक' है

: ६६ :

वैज्ञानिक कहते हैं कि इस दुनिया में आठ-दस लाख साल से मनुष्य का जीवन चल रहा है। उसके पहले क्या था, मानव का पूर्वरूप क्या था, इस बारे में हम जानते नहीं। लेकिन आज मानव को जिस रूप में पाते हैं, उस रूप में वैज्ञानिकों का खयाल है कि आठ-दस लाख साल से वह काम करता आ रहा है। वैसे देह के लिए खाना-पीना आदि जानवर को भी करना पड़ता है, और मानव-देह को भी इसकी जरूरत है। उसके लिए मानव को भी प्रयत्न करना पड़ता है। मानव अपने-अपने ढंग से वह प्रयत्न सारे देशों में करता भी है। लेकिन मनुष्य का समाधान केवल खाने-पीने से नहीं होता। उसे कुछ-न-कुछ विचार की भूख होती है।

भगवान् बुद्ध का विचार-प्रवर्तन

आज तक जितने विचार-प्रवाह आये, विचारों में सुधार और विचारों में प्रवर्तन हुए, उन सबने मनुष्य को प्रेरणा दी है। कुछ-न-कुछ मौलिक विचार निरंतर उसे सूझते रहे हैं। भगवान् बुद्ध ने पशुहिंसा के विरुद्ध आवाज उठायी और लोगों को समझाया कि पशुओं से हम जो मदद ले सकते हैं, वह लेनी चाहिए और उन्हें जो मदद दे सकते हैं, वह देनी चाहिए; पर उनकी हिंसा मनुष्य के लिए शोभादायक नहीं है। किन्तु यह कोई बाहरी चीज नहीं है। पशु हिंसा का तो निमित्त था, उसके पीछे करुणा का विचार था। मनुष्य को आसपास की सृष्टि के साथ कारुण्य-भाव से व्यवहार करना चाहिए, इस विचार का प्रवर्तन वे करना चाहते थे। उसका निमित्तमात्र पशु-हिंसा का विरोध था। इससे समाज में एक क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। उसका परिणाम हिन्दुस्तान पर एक हजार साल तक हुआ और आज भी हम उस विचार की कीमत करते हैं, हमारे समाज ने उनको मान लिया है। यद्यपि पशुहिंसा बिलकुल रुकी नहीं, तथापि समाज ने विचार को मान लिया है।

इस तरह का क्रांतिकारी परिवर्तन होने के बाद फिर सम्राट् अशोक ने, जिनके चक्र-चिह्न का हमने उपयोग किया है, बुद्ध के विचार का प्रचार किया। जब हिन्दुस्तान के जीवन में उस विचार को मान्यता मिली, तब उसे राज्य-कर्ताओं ने ग्रहण किया। फिर वह हिन्दुस्तान के बाहर फैला और उसने दूसरे देशों को हिम्मत दी। आज भी बौद्ध-धर्म के अनुयायी चीन, जापान, मलाया, ब्रह्मदेश, लंका आदि देशों में पाये जाते हैं। इस तरह जो विचार बिहार में प्रकट हुआ था, वह एशियाभर में फैल गया।

विचार मानव-जीवन की बुनियाद

इस तरह विचार की प्रेरणा मनुष्य को उत्स्फूर्त करती है। मनुष्य का शारीरिक जीवन तो चलता ही है, परन्तु उसका जो उत्थान होता है, उसके पीछे भी विचार रहता है। विचार के कारण आन्दोलन होते हैं, जोश निर्माण होता है और नया जीवन बनता है। तब समाज-रचना बदलती है, जीवन का ढाँचा बदलता है। फ्रान्स में जो राज्यक्रांति हुई, वह भी एक विचार के

कारण ही। मार्क्स निकला और उसीके विचार पर रूस में एक बात बनी। इस तरह विचार की शक्ति को हम महसूस करते हैं। मनुष्य को विचार ही ताकत देता है। वह खायेगा-पीयेगा, परन्तु इन सबके साथ, इन सबके पीछे, इन सबकी पूर्ति में और इनकी बुनियाद के रूप में एक विचार होता है। उसीको हम 'धर्म' या 'नीति' कहते हैं। बुनियाद विचार की होती है और उसी पर जीवन की इमारत खड़ी होती है।

निराकार के प्रकाशन का साकार साधन

अभी जो काम कर रहा हूँ, उसका बाहरी रूप तो दीख पड़ता है, जमीन का मसला हल करने का; परन्तु उसके पीछे एक विचार है, जिसके प्रवर्तन के लिए मैंने एक बाहरी काम लिया है। बाहरी काम लिये बिना विचार निर्गुण और निराकार रहता है। विचार-प्रचार के और विचार-प्रकाशन के लिए बाह्य काम लेना जरूरी है। यही कारण है कि मैंने आज के हिन्दुस्तान के लिए जो आवश्यक सवाल था, उसे उठा लिया और अपने विचार का प्रचार करने के लिए निकल पड़ा हूँ। मैंने कई बार कहा है कि भगवान् बुद्ध ने जो धर्म-चक्र-प्रवर्तन चलाया था, वैसा ही मैं उनके चरण-चिह्नों पर चलकर कर रहा हूँ। इस विचार का नाम है, 'सर्वोदय'।

हितों में विरोध नहीं

सर्वोदय के माने एक के भले में सबका भला है। किसी एक के हित के विरुद्ध दूसरे का हित हो नहीं सकता। किसी कौम, वर्ग या देश के हितों के विरुद्ध दूसरी कौम, वर्ग या देश का हित नहीं हो सकता। इनके हितों में विरोध है, यह खयाल ही गलत है। एक के हित में दूसरे का हित है। हितों में विरोध नहीं हो सकता, लेकिन अगर हम अहित को ही हित मान लें और अकल्याण में ही भलाई समझें, तो हितों में विरोध हो सकता है। मैं अगर बुद्धिमान् हूँ, मेरी अगर सेहत सुधरती है, तो उससे आपका भला होने ही वाला है। मुझे प्यास लगने पर पानी मिलता है, तो उससे आपका भी भला होता है और मेरा भी भला है। अगर हम हितों में विरोध की कल्पना करें, तो हित की कल्पना मिथ्या हो जायगी।

हम पड़ोसी को दुःखी बनाकर सुखी नहीं हो सकते। उससे हजार प्रकार की हानि होगी। जो दूसरों को लूटकर या तकलीफ देकर सुखी बनना चाहेगा, वह चैन से खाना भी नहीं खा सकेगा। उसके शरीर में रोग प्रवेश करेंगे और उसे डॉक्टरों की शरण लेनी पड़ेगी। घर में पैसा आया कि उसके साथ अशांति आयी। उसे खाया हुआ पचेगा नहीं, उसे रोग सतायेंगे। जो घर में पैसे लूटकर लाता और सुख निर्माण करने की कोशिश करता है, वह कभी सुखी नहीं हो सकता। बटोरकर घर में जो पैसा आता है, वह घर को आग लगा देता है।

लोग कहते हैं कि मैं गरीबों का मित्र हूँ। उसे तो हाँ इसलिए कहता हूँ कि मैं खुद गरीब हूँ। कुछ लोग मुझ पर इलजाम लगाते हैं कि मैं श्रीमानों को बचानेवाला हूँ। जी हाँ, परन्तु मैं उन्हें किसी भी तरीके से नहीं, बल्कि सही तरीके से बचानेवाला हूँ। मैं जिस धर्म की शिक्षा दे रहा हूँ, उसमें यह विचार है कि हमारे घर में हम जितने लोग दिखाई पड़ते हैं, उतने नहीं हैं, बल्कि और भी एक है। उसका नाम है, दरिद्रनारायण।

कुरान में एक कहानी है। एक दफा पैगम्बर अपने दो साथियों के साथ कहीं जा रहे थे। पीछे से दुश्मनों की बड़ी फौज आ रही थी। उनके साथी ने कहा : 'वह बड़ी भारी फौज है और हम तीन ही हैं, तो क्या करें?' इस पर पैगम्बर ने कहा : 'हम तीन नहीं हैं, हम चार हैं, और वह जो चौथा है, वह दीखता नहीं है, लेकिन वह है और जबर्दस्त है।' इसी तरह मैं भी उस न दीखनेवाले छोटे भाई का हिस्सा माँग रहा हूँ।

मैं न श्रीमानों को घमण्डी और न गरीबों को दीन बनाना चाहता हूँ, बल्कि एक धर्म-विचार समझाना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि देनेवाला और लेनेवाला इस धर्म-विचार को समझे। देनेवाला समझे कि माँगनेवाले ने मुझ पर उपकार किया है और मुझे मोह से छुड़ाने या मुक्त होने का मौका दिया है। यही सोचकर जमीन देने पर मैं लेता हूँ। जो ऐसा नहीं देते, उनके दान का मैं त्याग करता हूँ। इसलिए मैंने दान-पत्रों के साथ त्याग-पत्र भी लिये हैं। मैं शास्त्रों के शब्दों का अर्थ शास्त्रकारों से ही समझता हूँ। लेकिन दुनिया का यह धन्धा है कि अच्छे-अच्छे शब्दों को बिगाड़ा जाय। संन्यास,

दान, वैराग्य आदि अच्छे-अच्छे शब्दों को दुनिया ने बिगाड़ दिया। इसलिए मैंने 'दान' शब्द की शंकराचार्य की व्याख्या चलायी है। निरभिमान होकर दान देना चाहिए और कर्तव्य भावना से देना चाहिए।

क्रांति की बुनियाद, विचार-प्रवर्तन

लोग मुझसे पूछते हैं कि यह काम सरकार के जरिये हो सकता है, तो आप उससे क्यों नहीं करवाते? मैं कहता हूँ कि आपने ही सरकार चुनी है और मैंने तो सरकार के हाथ रोके नहीं। सरकार को तो अपना कर्तव्य करना ही है, पर क्रांतिकारी विचार को फैलाने का काम सरकार नहीं कर सकती। जब विचार लोकमान्य होगा, तभी सरकार यह काम करेगी और उसे यह करना होगा। नहीं करेगी, तो सरकार बदल जायगी। जहाँ लोकसत्ता चलती है, वहाँ सरकार नौकर है। अगर आपको कोई बात समझानी हो, तो नौकर को समझाते हैं या मालिक को? मालिक को समझाने पर उसे वह बात जँच गयी, तो वह अपने मुनीम को हुकुम देगा कि दान-पत्र तैयार करो। इसलिए मैं मालिक को याने आपको समझा रहा हूँ। आप मालिक हैं। इसीलिए मेरा विचार अगर आपको जँचेगा, तो आप अपने नौकर से काम लेंगे। अगर वह नौकर काम नहीं करेगा, तो आप उसे हटा देंगे और उसकी जगह दूसरा नौकर आयेगा। इस तरह की उथल-पुथल होनेवाली ही है।

लोकसत्ता में सरकार को 'शून्य' कहा जाता है। शून्य की अपनी कोई कीमत नहीं होती। अगर वह एक के आँकडे पर चढ़ गया, तो १० हो जाता है, दो पर चढ़ा, तो २० और तीन पर चढ़ा, तो ३०। परन्तु १०, २०, ३० बनाने की शक्ति शून्य में नहीं है। आप उस शून्य को दस, बीस बना सकते हैं। स्वतंत्र रूप से उस शून्य की कोई कीमत नहीं। लोकसत्ता में लोग ही सब कुछ हैं और सरकार कुछ नहीं है। जो सरकार के जरिये काम करने की बात करते हैं, वे जानते ही नहीं कि विचार-प्रवर्तन कैसे होता है। बुद्ध भगवान् ने लात मारकर राज्य छोड़ दिया और ज्ञान-प्राप्ति के बाद उन्होंने पहली दीक्षा एक राजा को याने अपने पिता को दी। उसके बाद सम्राट् अशोक आये और

फिर हिन्दुस्तान में एक राज्य-क्रान्ति हुई। जिन राजाओं ने उस विचार को नहीं माना, वे गिर पड़े।

जो लोग खुद को कम्युनिस्ट कहते हैं, उनसे मैं पूछना चाहता हूँ कि मार्क्स के हाथ में कौन-सी राजसत्ता थी, जिससे विचार में क्रांति हुई? विचार-बीज जब लोक-हृदय की गहराई में पहुँच जाता है, तब सरकार उस पर अमल करती ही है। और न करे तो गिर जाती है। इसलिए विचार-प्रवर्तन का महत्त्व समझो।

आजकल हर कोई फल चाहता है। पर वह नहीं जानता कि उसके लिए बोना भी पड़ता है। बिना बोये कैसे फल पाओगे? फ्रान्स में राज्यक्रांति हुई, तो उसके पीछे रूसो और वाल्टेयर के विचार थे। मार्क्स ने एक विचार का प्रचार किया और फिर लेनिन ने उस विचार के आधार पर क्रांति की। विचार-प्रचार के बाद ही राज्यक्रांति होती है। मेरा विश्वास है कि आज की हमारी सरकार इतनी विचारहीन नहीं है कि समाज में एक विचार को लोग पसंद करते हैं, तो भी उस पर अमल न करे। अगर वह अमल नहीं करती है, तो वह टिक नहीं सकती।

मैं गरीब, श्रीमान्, सबका मित्र हूँ। मेरा काम सबके हित के लिए है। भूमि का मसला हल किये बगैर हिन्दुस्तान का समाधान हरगिज नहीं होगा, इसमें मुझे कोई संदेह नहीं है। अगर किसीके मन में संदेह है, तो मैं नम्रता से कहना चाहता हूँ कि उसे परिस्थिति का ज्ञान नहीं है। मैं तीस साल से देहात में रहा हूँ। इसलिए देहात की परिस्थिति को अच्छी तरह जानता हूँ।

दुनिया को आकार दें या दुनिया का आकार लें

मैंने दुनिया के इतिहास का भी अध्ययन किया। इसलिए मैं जानता हूँ कि देशों के बीच दीवालें नहीं खड़ी हो सकतीं। इस देश से उस देश में विचार आते-जाते रहते हैं। यहाँ हमने अच्छा विचार नहीं चलाया, तो बाहर के बुरे विचार यहाँ के मसले हल करने के लिए यहाँ आयेंगे। अगर हमने यहाँ के मसले अपने ढंग से हल किये, तो यहाँ का विचार भी नहीं रुक सकता। वह बाहर जायगा ही और दुनिया उसको मानेगी ही। शायद ऐसा भी विज्ञान

निकल सकता है कि इधर की वायु उधर जाने से रोकी जा सके। परन्तु विचार को कोई भी नहीं रोक सकता। इसलिए या तो हम दुनिया को आकार देंगे या दुनिया हमें आकार देगी। आपके सामने दो ही मार्ग हैं, तीसरा है ही नहीं। या तो आप अपने विचार पर दुनिया को आकार देने की हिम्मत करें या दुनिया के हाथ की मिट्टी बनें। फिर दुनिया जो आकार आपको देगी, उसे आपको कबूल करना होगा। इसलिए हम या तो एक नया स्वतन्त्र विचार निर्माण करेंगे, जो दुनिया को आकार देगा या दुनिया हमें आकार देगी।

जमीन देना आज का धर्म

लोग मुझसे पूछते हैं कि जमीन का मालिक कौन है? मैं कहता हूँ कि जमीन का मालिक न व्यक्ति है, न सरकार, बल्कि भगवान् है। आज जमीन की भूख है, उसे मिटाना चाहिए। जमीन देना आज का धर्म है।

डाल्टनगंज (पलामूँ)
१६-११-'५२

सर्वै भूमि गोपाल की : ५६ :

सारी दुनिया में मानव की हलचल प्राचीन काल से हो रही है। आज भी होती है और आगे भी होनेवाली है; क्योंकि जनसंख्या बढ़ रही है और कई मुल्क ऐसे पड़े हैं, जहाँ कम लोग हैं और चंद लोगों का उन पर कब्जा है। इसलिए आगे लाखों लोग इधर-से-उधर और उधर-से-इधर जायँगे।

दुनिया एक है!

एक जमाने में एशिया के दूसरे मुल्कों से हिन्दुस्तान में लोग आये और एक जमाने में हिन्दुस्तान में से भी लोग बाहर गये। अब एक जमाना ऐसा भी आयेगा कि जब जहाँ घनी आबादी है, वहाँ के लोग अपनी जगह छोड़कर जहाँ घनी आबादी नहीं है, वहाँ जायँगे। किन्तु यह तभी हो सकेगा, जब सारी दुनिया को हम अपना ही मुल्क मानेंगे—सारी दुनिया एक है, मानव सब एक हैं, ऐसा मानेंगे। आज तो हम फलाने वंश के हैं, फलानी जाति के हैं, ऐसा मानते

हैं। जब तक ऐसा मानेंगे, तब तक मनुष्य के बीच दीवालें खड़ी होंगी और अपनी-अपनी समस्याएँ सुलझाने की जिम्मेदारी अलग-अलग देश अपनी समझेंगे। किन्तु जब मनुष्य समझेगा कि हम सब एक ही आत्मा से बने हैं, जब उसे इसका भान होगा, तब सारी दीवालें टूट जायँगी और सब भूमि गोपाल की हो जायगी।

शस्त्र-अस्त्र दुर्गादेवी के हाथ में रहें

यह सब कब होगा, यह हम नहीं जानते। किन्तु वह समय हम जल्दी ला सकते हैं, अगर विज्ञान के साथ-साथ अहिंसा को लायेंगे। आजकल विज्ञान बढ़ रहा है। इसकी मुझे खुशी है। मैं चाहता हूँ कि विज्ञान खूब बढ़े। पर वह किस दिशा में बढ़े, यह हम बतायेंगे। हम चाहते हैं कि विज्ञान से ऐटम बम न निर्माण किये जायँ। जिस तरह भस्मासुर ने शिवजी से वरदान माँगा था और आखिर अपना हाथ अपने ही सिर पर रखकर वह खुद भस्म हो गया, वैसे ही अगर हम ऐटम बम बनायेंगे, तो उसी विज्ञान से हम भस्मासुर जैसे भस्म हो जायंगे। किन्तु अगर विज्ञान को अहिंसा, प्रेम और मानवता की दिशा में ले जायँगे, तो दुनिया में स्वर्ग ला सकेंगे। अहिंसा की बात हम इसीलिए कहते हैं।

लोग हम पर यह आक्षेप करते हैं कि यह पिछड़ा हुआ है, विज्ञान को नहीं चाहता। लेकिन मैं विज्ञान को जितना चाहता हूँ, उतना उसे चाहनेवाला मनुष्य मुझे अभी दीखा है। मैं हरएक क्षेत्र में विज्ञान चाहता हूँ। हमें बीमारियाँ नष्ट करनी हैं, फसल बढ़ानी है, तो विज्ञान की जरूरत होगी ही। आज मनुष्य को अपने शरीर का भी पूरा ज्ञान हासिल नहीं है। इसके लिए विज्ञान की जरूरत है। लेकिन विज्ञान और यंत्र एक नहीं हैं। जिस तरह आत्मा के ज्ञान को 'आत्मज्ञान' कहते हैं, जो अंदर की चीज है, उसी तरह बाहर की सृष्टि के ज्ञान को 'विज्ञान' कहा जाता है। मनुष्य के लिए दोनों आवश्यक हैं। दोनों मिलकर मनुष्य का जीवन सुखी बना सकते हैं। किन्तु विज्ञान का उपयोग हम किस तरह से करते हैं, इस पर मानव का सुख निर्भर है। हम उसका उपयोग जनता का सुख बढ़ाने में, एकता बढ़ाने में, जनता को संपन्न करने में करते हैं या जनता में फूट डालने में और चंद लोगों के हाथ में सत्ता रखने में करते हैं? यह हमारे सामने सवाल है।

हम लोगों ने तो सारे शस्त्र और अस्त्र दुर्गादेवी के हाथ में रखे हैं। इसका मतलब यह है कि परमेश्वर के हाथ में शस्त्र-अस्त्र रखने से वह उसका ठीक उपयोग करेगा। अगर हम उन्हें अपने हाथ में रखेंगे, तो उससे या तो अपना या अपने पड़ोसी का गला काटेंगे। इसलिए शस्त्रों को परमेश्वर के हाथ में रखना ही मानव के लिए उचित है। आज विज्ञान किसके हाथ में रखना है, यह हमारे सामने सवाल है। आज तो ये लोग चाहते हैं कि विज्ञान चन्द लोगों के हाथ में रहे। किन्तु हम कहते हैं कि विज्ञान का भी बँटवारा कर दो। हमने भूमि के बँटवारे का काम हाथ में लिया है, पर उसके साथ और भी कई चीजों का बँटवारा करना चाहते हैं। हम तालीम का भी बँटवारा करना चाहते हैं। नहीं तो जिस तरह आज कुछ लोगों को तालीम मिलती है, बाकी सारे अपढ़ रहते हैं, इससे तो थोड़े-से पढ़े-लिखे लोगों का ही औरों पर राज चलेगा। इससे एक नयी गुलामी पैदा होगी। इसलिए हमें भूमि के बँटवारे का जो काम सूझा है, वह तो एक चिह्न है, एक प्रतीक है। उसके आधार पर हम और भी चीजों का बँटवारा करना चाहते हैं।

भौतिक सत्ता गाँव में, नैतिक सत्ता केन्द्र में

हम गाँव-गाँव में स्वराज्य लाना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि सारी सत्ता गाँव के हाथ में रहे। प्रान्तीय सरकार का काम गाँव पर हुकूमत चलाना नहीं होगा। बल्कि यह होगा कि एक गाँव का दूसरे गाँव से सम्बन्ध प्रस्थापित बना रहे। इसी तरह दिल्ली की सरकार का यह काम नहीं होगा कि प्रान्त पर हुकूमत चलाये, बल्कि यह होगा कि प्रान्तों के बीच सम्बन्ध बना रहे। जितनी-जितनी ऊँची सरकार होगी, उतना ही उतना उसके पास व्यापक काम, जोड़ने का काम रहेगा; पर सत्ता कम होगी। सत्ता तो गाँवों में रहेगी। सारी भौतिक सत्ता गांवों में और केन्द्र में नीतिमान्, चरित्र-शील लोग जायेंगे, जिनकी नैतिक सत्ता चलेगी।

लेकिन आज तो यह माना जाता है कि भौतिक सत्ता न्यूयार्क या दिल्ली में रहे। एक दुनिया बनानेवाले तो कहते हैं कि सारी भौतिक सत्ता यू० एन० ओ० (राष्ट्रसंघ) या ऐसी ही किसी सरकार के हाथ रहे। किन्तु मैं तो चाहता हूँ कि भौतिक सत्ता गाँवों में ही रहनी चाहिए। गांधीजी और बुद्ध की

सत्ता चली, क्योंकि वे सत्ता चलाने के लायक थे। नैतिक सत्ता किसीके देने से नहीं दी जाती। वह तो अपने-आप प्राप्त होती है। इसलिए जो नीतिमान् पुरुष होते हैं, वे अपने-आप ऊँची सरकार में जाने के लायक बनेंगे। उनकी सत्ता स्वयमेव चलेगी, जिस तरह जंगल में शेर की चलती है। शेर को चुना नहीं जाता। इस तरह शेर के जैसे कुछ चुने नीतिमान् पुरुष दिल्ली की सरकार में रहेंगे और उनकी सत्ता लोग प्रेम से मानेंगे। परन्तु असल सत्ता तो गाँवों में ही रहेगी।

अहिंसा का तरीका

आज हम छठा हिस्सा माँग रहे हैं, तो लोग पूछते हैं कि इससे क्या होगा? अब एक बटा छह लेते हैं और पाँच बटा छह किसके हाथ में छोड़ने-वाले हैं? लेकिन उनसे मैं कहता हूँ कि मैं पाँच बटा छह छोड़नेवाला नहीं हूँ। अभी जो मैं कर रहा हूँ, वह फच्चर है। वह छोटी-सी जगह में घुस जायगी, और फिर उस पर हथोड़ा मारेंगे, तो उसके दो टुकड़े हो जायँगे। हम तो छह बटा छह हैं। लेकिन हमारा तरीका समझ लो। जैसे कोई इंजीनियर पाँच हजार फुट ऊपर चढ़ाने के लिए सीधी दीवाल नहीं खड़ा करता, बल्कि हमें इस तरह धीरे-धीरे ऊपर ले जाता है कि मालूम भी नहीं होता कि हम ऊपर चढ़े हैं, ऐसा ही मेरा काम है। सीधी दीवाल खड़ी करना तो मूर्खों का और हिंसकों का काम है। अहिंसा का काम धीरे-धीरे ऊपर चढ़ाने का है।

हमने जो छठे का मन्त्र चलाया है, उसे तब तक चलायेंगे, जब तक भूमि पूरी बँट नहीं जाती। एक बार छठा हिस्सा माँगने पर मैं फिर से छठा हिस्सा माँगूँगा। इस तरह माँगता ही जाऊँगा। मैंने आज भोजन किया है, इसलिए क्या कल नहीं करूँगा? कल भूख लगी, तो कल भी करूँगा और परसों लगी, तो परसों भी करूँगा। लेकिन मुझे कल या परसों भूख लगनेवाली है, इसलिए क्या मैं दस दिन का आज ही खा लूँ? अगर छठा हिस्सा लेने पर भी जमीन की भूख बाकी रहती है, तो मैं फिर से माँगूँगा। अगर उसके बाद भूख मिट जाती है, तो कोई सवाल ही नहीं। परन्तु कायम रही, तो हम और भी माँगेंगे। हमारे शास्त्रों ने कहा है : "षष्ठांशमुर्व्या इव रक्षितायाः।" छठा देते-

देते आखिर सर्वस्वदान दिया जायगा। जो सर्वस्व देता है, वही सम्राट् होता है। वह कुछ खोयेगा नहीं, भर-भरकर पायेगा।

इसकी कई मिसालें इतिहास में मिलती हैं। धीरे-धीरे समाज को देने की आदत पड़ जायगी। अगर हम बच्चे को चलना सिखाते हैं, तो धीरे-धीरे सिखाते हैं। एकदम उसे नहीं कहते हैं कि दस मील चलना अच्छा है, इसलिए आरम्भ में ही दस मील चलो। आज तो लोगों को लेने और बटोरने की आदत पड़ी हुई है। उसे बदलकर देने की आदत डालनी है, तो धीरे-धीरे डालनी होगी। बच्चे को पहले तो 'शाबास' कहने से गौरव महसूस होता है और वह काम आगे करता है। इस तरह आज तो देनेवालों को 'शाबास' कहकर उनका हम गौरव करेंगे। परन्तु बाद में तो देने की अन्दर से ही प्रेरणा होगी और आखिर में देना, यह एक स्वाभाविक बात हो जायगी। दिये बगैर नहीं रहा जायगा। हमें रोज खाना है, तो रोज देना चाहिए, यह धर्म हो जायगा। यह अहिंसा का तरीका है। इससे हम सिर्फ बिहार का ही नहीं, सारी दुनिया का मसला हल करना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि दुनिया की सब भूमि का सब लोगों में बँटवारा हो जाय। यह हमारी आकांक्षा है और यह होकर ही रहेगी, क्योंकि आज सारी दुनिया इस विचार के लिए भूखी है।

जीवन का मार्ग या मृत्यु का ?

दुनिया में आज चारों ओर कशमकश और झगड़े चल रहे हैं। अमेरिका इतना संपन्न देश है, परन्तु वह रूस से डरता है और रूस भी कम सम्पन्न नहीं है, पर वह अमेरिका से डरता है। हिन्दुस्तान पाकिस्तान से डरता है और पाकिस्तान हिन्दुस्तान से। इस तरह बड़े भी डर रहे हैं और छोटे भी डर रहे हैं। शेर शेरबबर से डरता है और शेरबबर शेर से। बिल्ली कुत्ते से डरती है और कुत्ता बिल्ली से। चूहा बिल्ली से और बिल्ली चूहे से। बलवान् भी डर रहा है, कमजोर भी डर रहा है। इस डर से मुक्त होने की तरकीब किसीको मालूम नहीं है। जब अंदर से मुक्त होने की तरकीब मिलेगी, तभी बाहर से मुक्त हो सकते हैं। यह रास्ता हमें मिला है।

कुछ लोग कहते हैं कि आपका रास्ता लम्बा है। हमें फौरन पहुँचानेवाला मार्ग पसंद है। मैं कहता हूँ कि ऐसा मार्ग पसंद है, तो फौरन जाकर गंगा में डूब मरो। शीघ्रता के मार्ग फौरन मृत्यु की ओर ले जाते हैं। तो फौरन मृत्यु की ओर जाना चाहते हो या आहिस्ता-आहिस्ता जीना चाहते हो? जल्दी की भूख है या जीवन की? हमारा मार्ग आहिस्ता-आहिस्ता ले जानेवाला है। उनका रास्ता जीवन की तरफ जल्दी ले जानेवाला है, परन्तु उससे काम ही खतम हो जायँगे। मसला हल हो जायगा और मसला हल करनेवाला भी।

लोग कहते हैं कि हमें उतावली है। हम शीघ्रता चाहते हैं, इसलिए मोटर और हवाई जहाज में बैठेंगे। लेकिन फिर भगवान् आपसे कहेगा कि आपको शीघ्रता है, तो मुझे भी शीघ्रता है। आपको सौ साल नहीं जीने दूँगा। चालीस साल में ही उठा ले जाऊँगा। वह कहेगा कि आप दकियानूस नहीं बनना चाहते, तो मैं क्यों बनूँ। क्या आप चाहते हैं कि भगवान् आपको आहिस्ता-आहिस्ता सौ साल जिलायें या शीघ्रता से उठा लें? कितनी भी मोटरें और हवाई जहाज आयें, तो भी पाँव की प्रतिष्ठा कम नहीं होगी। आरोग्य के लिए पाँव से चलना आवश्यक ही होगा। जो स्थिर मूल्य हैं, उन्हें कायम रखना चाहिए। जो रास्ता जीवनदायी है, वह आहिस्ता का हो, तो भी लेना चाहिए। इसलिए जल्दी या देरी का रास्ता, यह मत सोचो। जीवन या मृत्यु किस तरफ ले जा रही है, यह सोचो। फिर भी आप यह मसला देरी से हल करना चाहते हो, तो रोज दस एकड़ ही जमीन दोगे, फिर मैं पाँच सौ साल जिऊँगा और अगर आप रोज हजार एकड़ दोगे, तो मसला एक साल में हल हो जायगा। इसलिए मसला जल्दी से या देरी से खतम करना आपके हाथ में है।

आदिवासियों का सवाल ही बेकार

मैं इन्सान के बीच कोई भेद नहीं मानता। इसलिए यह 'आदिवासी' शब्द मुझे पसन्द नहीं। कौन आदिवासी और कौन अंतवासी? कौन पहले जनमे और कौन बाद में, इसके बारे में कौन जानता है? क्या माँ अपने बेटों में यह फर्क कर सकती है कि यह आदि का लड़का और वह अंत का है? जो हिन्दुस्तान में आये और प्रेम से बस गये, वे सारे यहाँ के निवासी हैं। आखिर

तो हमें सारी दुनिया को एक करना है। इसलिए काम करोगे, तो यह आदिवासी का सवाल ऐसे ही हल हो जायगा। इन लोगों में इतनी हिम्मत है कि थोड़ी-सी राहत मिलने पर ये हिन्दुस्तान के लिए इतना काम कर सकते हैं, जितना और किसीने नहीं किया होगा।

लोहरदगा (राँची)
२४-११-'५२

मानव-धर्म की प्रस्थापना : ५७ :

आज इस देश में भूदान-यज्ञ द्वारा मानवता के धर्म की संस्थापना का काम होने जा रहा है। यह एक धर्म-विचार समाज में स्थापित करना है। छोटे-छोटे गाँव में भी लोग अत्यन्त प्रेम और उत्साह, उत्सुकता और आशा से यह सदेश सुन रहे हैं, क्योंकि मनुष्य को जब उसके उत्थान के लिए एक नया विचार मिल जाता है, तब उसे स्फूर्ति मिल जाती है। मनुष्य के लिए शारीरिक, भौतिक जीवन तो है ही, परन्तु उससे भी अधिक जरूरी जो चीज है, वह उसे मिलनी चाहिए। भूदान के काम से समाज की भौतिक आवश्यकता पूर्ण करने का याने गरीबों को आधार देने का काम तो होगा ही, परन्तु सिर्फ भौतिक आवश्यकता पूर्ण करने की बात इसमें नहीं है। इसके पीछे एक बुनियादी विचार है, एक भावना है। मनुष्य का समाधान सिर्फ भौतिक जीवन से नहीं होता, उसके साथ-साथ विचार की भी जरूरत होती है।

स्वराज्य का मन्त्र

दादाभाई नौरोजी ने बहुत चिंतन और मंथन के बाद हिन्दुस्तान को 'स्वराज्य' शब्द दिया था। उस शब्द से लोगों को प्रेरणा मिली और नतीजा यह हुआ कि हमें स्वराज्य-प्राप्त हुआ। स्वराज्य-प्राप्ति के लिए लोगों ने कितने कष्ट उठाये, मुसीबतें झेलीं और तपस्या की, परन्तु उससे उनका उत्साह बढ़ता ही गया। लोग मन में आनन्द का अनुभव करते गये। वे जेलों में कष्ट सहते गये, बाहर भी तकलीफ झेलते गये, यहाँ तक कि फाँसी पर लटकने में भी

लोगों को आनन्द महसूस होता था, क्योंकि उन्हें एक शब्द मिला था, जो महान् विचार का निदर्शक था। उस शब्द ने लोगों को जगाया, त्याग के लिए प्रेरित किया और त्याग में आनन्द भोगने की प्रेरणा की।

सर्वोदय का मन्त्र

अब स्वराज्य-प्राप्ति के बाद ऐसा विचार या शब्द लोगों को मिले बगैर उनमें जोश नहीं आ सकता। वैसा नया शब्द जो गांधीजी ने दिया था, हमें अब मिला है। वह है 'सर्वोदय'। उससे लोगों के मन में अब आशा बँध गयी है और उन्हें लगता है कि हमें एक मंत्र मिला है। उस मंत्र के व्यापक प्रचार के लिए, उसे जीवन में साकार और मूर्तिमंत बनाने के लिए, उसका साक्षात् दर्शन करने के लिए कोई कार्य-योजना चाहिए, क्योंकि बिना कार्य-योजना के मंत्र अव्यक्त रहेगा। जिन लोगों में अव्यक्त मंत्र से स्फूर्ति लेने की आदत और ताकत है, उन चंद लोगों को छोड़कर बाकी के लोगों को मंत्र जब तक प्रत्यक्ष साकार नहीं होता, तब तक प्रेरणा नहीं मिलती। यह एक तरह से मूर्ति-पूजा ही है, चाहे हम उसे गौण मानें, उसकी कीमत कम समझें। किन्तु देहधारी मनुष्य के लिए कोई चीज चाहिए, जिसे वह अपनी आँखों से देख सके और अपने हाथों से टटोल सके। ऐसी मूर्ति की जरूरत मानव-जीवन में रहती है। सारे समाज के लिए जब विचारप्रेरक मन्त्र दिया जाता है, तब पत्थर की मूर्ति या ग्रंथ नहीं, बल्कि जीवन में परिवर्तन लाने की कोई क्रिया चाहिए। तब उस मन्त्र को आकार आ जाता है। इस तरह का कोई कार्य मैं ढूँढ़ रहा था कि तेलंगाना में वह मेरे हाथ आया। तब से मैं उस चीज को पकड़े हुए हूँ। इसमें मेरा विचार केवल भूमि की समस्या हल करने तक सीमित नहीं है। वह तो एक विचार को साकार बनाने के लिए प्रत्यक्ष हासिल हुई एक मूर्ति है। इसलिए मैंने उसे उठाया और उसका प्रचार करना आरम्भ किया। वह तो एक धर्म-विचार है।

सनातन धर्म-विचार

आजकल दुनिया में हिन्दू, मुसलमान आदि धर्म चलते हैं। केवल उससे आज के लोगों का संतोष नहीं होता, पर इसलिए हमने कोई नया धर्म

निकाला है, ऐसी बात नहीं है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि के अर्थ में यह धर्म नहीं है; बल्कि यह एक सनातन धर्म है। 'सनातन' शब्द का उपयोग बहुत होता है, पर लोगों को इसके अर्थ का भान नहीं है। धर्म दोहरा होता है। एक, जो बदलता नहीं है, कायम रहता है। जैसे सत्य का परिपालन प्राचीन काल में भी धर्म-रूप था और आज भी है। भरत-भूमि में उसका परिपालन धर्म-रूप है, वैसे ही दूसरे देशों में भी। सत्य के परिपालन के लिए स्थल और काल का भेद लागू नहीं, वह तो नित्य, कायम और सनातन धर्म है। वैसे ही प्रेम, ज्ञान, दया, वात्सल्य, ये सब सनातन धर्म होते हैं। उनके अमल के लिए उस-उस जमाने में जो आचरण प्रवृत्त किये जाते हैं, वे बदलते हैं और समय, प्रसंग और देश के अनुसार हमेशा बदलते हैं। कोई खड़ा रहकर हाथ जोड़कर भगवान् की प्रार्थना करता है, तो कोई घुटने टेककर करता है। उपासना के लिए कोई कुरान का, कोई पुराण का, कोई बाइबल का और कोई गीता के वचनों का उपयोग करता है। किन्तु परमेश्वर की भक्ति, परमेश्वर के लिए सर्वस्व न्योछावर करने की वृत्ति में, जिसे हम 'भक्ति' कहते हैं, कोई फर्क नहीं पड़ेगा। प्रार्थना के अलग-अलग प्रकारों—जैसे मसजिद में जाना या मन्दिर में जाना आदि—में फर्क पड़ेगा। किन्तु सब धर्मों में भक्ति सनातन तत्त्व है। वह सबके लिए समान है, यही धर्म की असलियत है, आत्मा और तत्त्व है। उसे पकड़े रहना, उससे चिपके रहना, निरन्तर उसका ध्यान करना, उसे नजर-अन्दाज न होने देना ही हमारा कर्तव्य है। उसकी पूर्ति के लिए समाज, देश और काल के अनुसार रूढ़ियाँ और आचरण बनता है। वह धर्म का लम्बा हिस्सा है, पर वह गौण है। लेकिन जो धर्म का सार है, वही इस भूदान के द्वारा प्रकट हो रहा है। वह सनातन, न बदलनेवाला और तीनों कालों के लिए लागू होनेवाला सार है, सर्वत्र समता और एकता स्थापित करना।

नित्य और परिवर्तनशील धर्म

बावजूद इसके कि मानव के बाहरी जीवन में विविधता और विभिन्नता रहेगी, समता प्रस्थापित करना हमारा ध्येय है। कुटुम्ब में माँ-बाप का धर्म हो

जाता है कि जब बच्चे छोटे रहते हैं, तब उन्हें अनुशासन में रखें. उन्हें तालीम दें, किन्तु जब वे बड़े हो जाते हैं, उन्हें अक्ल आ जाती है, उन्हें स्वतन्त्र विचार की स्फूर्ति और वृत्ति होती है, तब माँ-बाप का धर्म यह नहीं रहता कि उन्हें अनुशासन में ही रखें। तब तो उनका धर्म यही हो जाता है कि बच्चों को आजादी दें। उनके साथ मित्र के जैसा व्यवहार करें, उन्हें सलाह दें। वे सलाह मानें, तो अच्छी बात है, न मानें तो भी बुरा नहीं मानना चाहिए। इसीमें आनन्द मानना चाहिए कि बच्चे हमारी सलाह तो लेते हैं। किन्तु उन्हें जो विचार जँचते हैं, वे ही ग्रहण कर लेते हैं। इसलिए छोटे बच्चेवाले माँ-बाप का धर्म अलग हो जाता है और तरुणों के माँ-बाप का धर्म अलग। माँ-बाप का धर्म दोनों में एक ही है कि बच्चों पर प्यार करना, उनकी सेवा करना। प्यार करने का यह धर्म अमिट है, सनातन है। पर जो दूसरा धर्म है, याने अनुशासन करने का, वह बदलता जाता है और वृद्ध होने पर तो माँ-बाप को बच्चों के अनुशासन में रहना ही धर्म हो जाता है। बुढ़ापे में माँ-बाप की यही इच्छा होनी चाहिए कि बच्चे हमसे अधिक बुद्धिमान् और अधिक तेजस्वी निकलें। अगर माँ-बाप ने बच्चों को अच्छी तालीम दी होगी, तो वे वैसे निकलेंगे भी। उस समय बच्चों के अनुकूल बरतना माँ-बाप का धर्म हो जाता है। इसलिए जब बच्चे छोटे रहते हैं, तब उन पर अनुशासन करना और जब बच्चे जवान हो जाते हैं, तब उन्हें स्वतन्त्रता देना और सलाह देना और बुढ़ापे में उनके अनुशासन में रहना, तीनों हालतों में तीन प्रकार के धर्म हैं। किन्तु तीनों हालत में न बदलनेवाला धर्म है, बच्चों पर प्यार करना।

राजा कालस्य कारणम्

वैसे ही समाज की हालत में परिवर्तन हो जाने पर धर्म में परिवर्तन होता है। एक जमाना था, जब सारे समाज में राजाओं की आवश्यकता थी। राजा लोगों ने अपनी सत्ता जनता पर लादी नहीं थी, बल्कि एक जमाने में इतनी अव्यवस्था थी कि राजा की जरूरत लोगों को ही महसूस होने लगी। पुराणों में एक कहानी है कि लोग मनु महाराज के पास गये, जो एकांत में ध्यान कर रहे थे। लोगों ने उनसे कहा कि आप रागद्वेष-रहित हैं, निरहंकारी

हैं, इसलिए आप हमारे राजा बन जाइये, हम आपका कहना मानेंगे। तब मनु ने कहा कि राज्य चलाने की जिम्मेदारी आप मुझ पर डाल रहे हैं, अगर आप मुझे इससे मुक्त रखते तो अच्छा होता; परन्तु आप सौंप रहे हैं, तो राज्य चलाने में जो दोष और पाप होंगे, उसकी जिम्मेदारी आपकी होगी, मेरी नहीं। लोगों ने उनका कहना मान लिया और तब मनु महाराज लोगों की इच्छा से राजा हुए। यद्यपि यह पुराण-कथा है, फिर भी उसमें सार है। एक जमाना ऐसा था कि जब लोग राजा की आवश्यकता महसूस करते थे। तब राजा के अनुशासन में रहना, उसकी आज्ञाओं का पालन करना प्रजा ने अपना धर्म मान लिया था, किन्तु आज आप देखते हैं कि समाज अब बाल्यावस्था में नहीं रहा है।

प्रजा कालस्य कारणम्

अब बच्चे जवान हो गये हैं। विज्ञान के कारण आज साधारण लोगों को भी वह ज्ञान प्राप्त है, जो प्राचीन काल में बड़े लोगों को भी नहीं था। नाना फडनवीस को भूगोल का वह ज्ञान नहीं था, जो आज स्कूल के एक बच्चे को है। अकबर बादशाह को मालूम नहीं था कि रूस और अमेरिका कहाँ हैं, मास्को क्या चीज है। पर आज स्कूल के बच्चों को भी यह सब मालूम है। पहले प्रजा-धर्म यही था कि राजाओं की बातें मानें, पर अब राजा का काम नहीं रहा है, लोग अपने प्रतिनिधि चुनते हैं और वे लोगों की हिदायतों पर अमल करते हैं। इसलिए सारे समाज की रचना उसी तत्त्व पर करनी है। पहले 'राजा कालस्य कारणम्' कहा जाता था। पर अब 'प्रजा कालस्य कारणम्' हो गया है। फिर भी मूलतत्त्व कायम है। वह यह है कि सारा समाज एकरस बनना चाहिए और समाज में अधिक-से-अधिक समता लानी चाहिए। यह दोनों कालों को लागू होनेवाली बात है। आज सबको शिक्षण लेकर सबकी राय लेना जरूरी है।

समता का युगधर्म

इस तरह बाहरी परिवर्तन होता है, परन्तु मूल कायम है। जो धर्म-विचार हम प्रवर्तित करना चाहते हैं, वह समता का विचार है। उसके लिए जरूरी है

कि जमीन का बँटवारा हो जाय। पुराने जमाने में जमीन बहुत पड़ी थी, इसलिए उस समय बँटवारे की जरूरत नहीं महसूस हुई। हरएक के लिए काफी जमीन थी। किसीके पास ज्यादा और किसीके पास कम तो थी, पर जिसके पास कम थी, वह भी उसके लिए पर्याप्त थी। वानप्रस्थ लोग जंगल में जाकर फल-मूल खाकर रहते थे। इस तरह जिसे जितनी जमीन चाहिए, उतनी लेने के लिए जमीन पड़ी थी, परन्तु आज जमीन मर्यादित हो गयी; क्योंकि जन-संख्या बढ़ रही है। तो, समता के लिए पहली आवश्यकता है, जमीन का बँटवारा हो जाय।

समता का मतलब यह नहीं है कि हरएक को पाँच ही एकड़ जमीन दी जाय, हरएक को उतना ही कपड़ा और एक ही किस्म का घर दिया जाय। किन्तु समता के लिए यह जरूरी है कि जो चीज सबके लिए अत्यन्त आवश्यक मानी जाती है, वह सबके लिए हो; जैसे हवा और पानी। आज तो शहरों में हवा के लिए भी ज्यादा किराया देना पड़ता है। हवा का बँटवारा वहाँ समान नहीं होता। जिसके पास अधिक पैसा है, उसे अधिक हवा प्राप्त होती है। लेकिन इस बात को छोड़कर हम कह सकते हैं कि सारे देश में हवा पर किसीका कोई खास कब्जा नहीं है। हर कोई चाहे जितनी हवा ले सकता है। पानी की भी वैसी ही हालत है। इसी तरह आज, जब कि जमीन मर्यादित है और जन-संख्या अधिक है, तो जमीन सबको मिलनी चाहिए। हरएक के पास समान जमीन रहे, ऐसी बात नहीं है, किन्तु कम-से-कम जितनी जमीन आवश्यक है, उतनी तो हरएक को मिलनी ही चाहिए, जैसी कि आज हवा मिलती है। हरएक को कम-से-कम मिल जाने पर किसीके पास अधिक जमीन रहती है, तो किसीको भी ईर्ष्या होने का कोई कारण नहीं है। हरएक को पर्याप्त मकान मिल जाने पर किसीका आलीशान मकान हो, तो उसके लिए ईर्ष्या नहीं हो सकती। पर आज तो एक ही कमरे में सोना, बैठना, खाना, पूजा, पढ़ाई, बीमार को रखना आदि सब करना पड़ता है। यह हालत नहीं होनी चाहिए। सबको पर्याप्त मिलनी चाहिए।

स्त्री-पुरुष समता

समता का सिद्धान्त हरएक युग को लागू है, किन्तु किसी जमाने में समता के लिए जमीन के बँटवारे की जरूरत नहीं थी, जो आज है—जिस तरह किसी जमाने में वोट के हक की जरूरत नहीं थी, लेकिन आज है। आज वोट सबको मिलना चाहिए, ऐसी भावना और जाग्रति हुई है। हम हिन्दुस्तान में स्त्री-पुरुषों को समान मानते हैं। उनमें कोई भेद नहीं मानते। इसलिए स्त्रियों को वोट का अधिकार मिल गया। पर आज भी पश्चिम में कई देशों में स्त्री को वोट का हक नहीं है और वहाँ की स्त्रियों को उसकी भूख भी नहीं है। वे कहती हैं कि यह तो पुरुषों का काम है, वे ही करें। लेकिन हमारे देश में ऐसी बात नहीं है; क्योंकि यहाँ स्त्री-पुरुषों में समता प्राचीन काल से, कम-से-कम विचार में तो, मानी गयी है, यद्यपि आचार में अभी भी नहीं मानी गयी है और सुधार की जरूरत है।

हमारे शास्त्र कहते हैं कि स्त्री और पुरुष, दोनों को मोक्ष का समान अधिकार है। दोनों की आध्यात्मिक योग्यता समान है। हम सिर्फ 'राम' का नाम नहीं लेते, 'सीताराम' का लेते हैं और 'राधाकृष्ण' का लेते हैं। यहाँ पर ब्रह्म-विद्या में हम जितने आगे बढ़े हैं, उतना दुनिया में कोई भी नहीं बढ़ा है। पर हम सीताराम इसलिए कहते हैं कि स्त्री-पुरुष की समता को हम मानते हैं, यद्यपि ईश्वर एक ही है, इस मूल तत्त्व को हम जानते हैं। इसलिए हिन्दुस्तान में स्त्रियों को वोट का हक हासिल करने के लिए आन्दोलन नहीं करना पड़ा। इंग्लैंड में पचास साल तक स्त्रियों को वैसा आन्दोलन करना पड़ा और आज जिस तरह गरीब-विरुद्ध-अमीर का सवाल खड़ा है, वैसा ही उन्हें स्त्री-विरुद्ध-पुरुष, ऐसा सवाल खड़ा करना पड़ा। परन्तु यहाँ की स्त्रियों को इसकी आवश्यकता नहीं रही, क्योंकि यहाँ की हवा में आध्यात्मिक और मानसिक अधिकार समान होने की बात प्राचीन काल से है। हिन्दुस्तान जैसे देश में इस तरह की समता का विचार प्राचीनकाल से चला आ रहा है, फिर भी जमीन के बँटवारे की जरूरत उस समय नहीं थी, जो आज है। इस प्रकार

आज युग-धर्म का जो प्रवर्तन हो रहा है, उससे लोगों के मन में उत्साह निर्माण होता है, नहीं तो मेरे जैसे छोटे आदमी को इतना प्रेम क्यों मिलता ? यह विचार हरएक के हृदय को छूता है और हरएक को लग रहा है कि यह क्रांति हो जानी चाहिए—इस क्रांति से समाज में चिरस्थायी रूप से काम होगा और समाज मजबूत बनेगा ।

विवेकयुक्त समता

समता की प्रवृत्ति के साथ-साथ विवेक-बुद्धि भी रहे, यह मैं चाहता हूँ । हिन्दुस्तान के बाहर लोग समता की बात कहते हैं; परन्तु वहाँ अविवेक से काम किया जाता है । उन्होंने कत्ल से और हिंसा से समता लाने की जो बात की है, वह विवेक-शून्य है । वह कोई समता नहीं है । वे तो समता के नाम पर सबको एक ढाँचे में ढालना चाहते हैं । हम इस तरह सबको एक ढाँचे में ढालना कभी पसंद नहीं करते । हम अंदर की समता को मानते हैं और देह के लिए जितनी आवश्यक है, उतनी ही समता चाहते हैं । माँ बच्चों को खिलाती है, तो छोटे बच्चे को दूध देती है, उससे जो बड़ा होता है, उसे कम दूध देती है और बड़े बच्चे को सिर्फ रोटी खिलाती है । गणित से सब बच्चों को समान दूध और समान रोटी नहीं देती । हमारी समता भी ऐसी ही विवेक-युक्त है । घर के समान समाज में जितने लोग हैं, उनकी भूख और पचनेंद्रियों की शक्ति के अनुसार उनको खाना देंगे । जिसे दूध की आवश्यकता होगी, उसे दूध देंगे और जिसे रोटी की होगी, उसे रोटी देंगे । ऐसा विवेक न रखते हुए समता लायी गयी, तो वह निकम्मी है । इसलिए हिंसा के जरिये समता विवेक-शून्य हो जाती है । हम तो आध्यात्मिक समता चाहते हैं, यही सनातन धर्म-विचार है ।

लोहरदगा

२४-११-'५२

अस्तेय और अपरिग्रह—दोनों मिलकर अर्थशुचित्व पूर्ण होता है, जिसके बगैर व्यक्ति और समाज के जीवन में धर्म की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। सत्य और अहिंसा तो मूल हैं, लेकिन आर्थिक क्षेत्र में दोनों का आविर्भाव अस्तेय और अपरिग्रह से ही हो सकता है।

यः अर्थशुचिः, सः शुचिः

आर्थिक क्षेत्र जीवन का बहुत ही बड़ा अंग है, इसलिए धर्म-शास्त्र उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता, बल्कि उसका नियमन और नियोजन करने की जिम्मे-वारी धर्म-विचार पर आती है। इसीलिए मनु ने विशद रूप से कहा है कि 'यः अर्थशुचिः, सः शुचिः।' याने 'जिसके जीवन में आर्थिक शुचिता है, उसका जीवन शुचि है।'

अर्थ-प्राप्ति की पद्धति का नियमन अस्तेय करता है और उसकी मात्रा का नियमन अपरिग्रह। अस्तेय कहता है कि शरीर का निर्वाह मुख्यतया शरीर-श्रम से, याने उत्पादक परिश्रम से होना चाहिए। शरीर-श्रम खतरा पैदा करते हैं। अगर किसी प्रकार कोई व्यक्ति शरीर-श्रम की इच्छा होते हुए भी उसे कर नहीं पा रहा हो, तो उसे दूसरी तरह से बहुत ही कठोर परिश्रम करना पड़ेगा, तभी वह खतरा टलेगा। वह परिश्रम इतना कठोर होगा, याने उसमें इतनी तपस्या भरी होगी कि उसकी तुलना में शरीर-श्रम आसान होगा। अर्थात् सर्वसाधारण लोगों के लिए अस्तेय-पालन तभी होगा, जब शारीरिक क्षुधावाला शारीरिक श्रम करे। आज दुनिया की बहुत-सी विषमताएँ, बहुत से दुःख और बहुत-से पाप शरीर-श्रम टालने की नीयत से पैदा हुए हैं। वैसी नीयत रखनेवाला गुप्त या प्रकट रूप से चोरी करता है। इसलिए अस्तेय-व्रत शरीर-परिश्रम द्वारा संपत्ति निर्माण पर जोर देता है।

'दान' याने ऋण-मुक्ति

अगर हम ऐसा नियमन मानते हैं कि शरीर-श्रम से जो उत्पन्न होगा, उसीका उपभोग करेंगे, तो अपरिग्रह बहुत-कुछ सिद्ध हो जाता है, क्योंकि शरीर-श्रम

से इतना अत्यधिक पैदा हो ही नहीं सकता कि उसमें से मनुष्य अधिक संग्रह कर सकें। फिर भी अस्तेय के साथ अपरिग्रह के अलग नियमन की भी जरूरत रह जाती है। यद्यपि शरीर-श्रम से 'अत्यधिक' पैदा नहीं हो सकता, तथापि 'अधिक' पैदा हो ही सकता है। फिर अगर उसका भी उपभोग दूसरे को दिये बगैर किया जाता है, तो खतरा पूरा नहीं टलता। बचपन से हम पर अनेकों के उपकार हैं। उसकी निष्कृति के लिए शरीर-श्रम के मान्य तरीके से भी जो हमने कमाया हो, उसका हिस्सा समाज को देना लाजिमी हो जाता है। उसमें सम्यक् विभाजन का उद्देश्य होता है। इसलिए वह दान का स्वरूप है, यद्यपि है वह ऋण-मुक्ति का प्रकार।

धर्म एक पुल है

जब हम संपत्ति-दान-यज्ञ के जरिये संपत्तिमानों से संपत्ति का हिस्सा माँगते हैं, तो क्या जिस तरीके से उन्होंने सम्पत्ति हासिल की, उसे सम्मति देते हैं? यह एक सवाल दादा की टिप्पणी का विषय है। उसका समाधान उन्होंने बहुत ही सूक्ष्म चिंतन से किया है। संपत्तिदान-यज्ञ में हासिल सम्पत्ति का विनियोग दाता को हमारे निर्देश से करना होगा, यह सारी योजना का संरक्षक अंकुश है, यह उन्होंने परख लिया और उसके लिहाज से योजना का उन्होंने बचाव किया।

लेकिन इस योजना के बारे में और भी कई दृष्टियों से सोचा जा सकता है और सोचा भी जाना चाहिए। शरीर और आत्मा के बीच या आज की स्थिति या प्रातव्य स्थिति के बीच धर्म एक पुल का काम करता है। पुल नदी के एक ही किनारे नहीं, बल्कि दोनों किनारों पर खड़ा होता है। भोग इस पार है, तो मोक्ष उस पार, पर धर्म दोनों पार है। समाज को आज की हालत में से इन आदर्शों की ओर ले जाने के लिए जो विचार प्रस्तुत होगा, वह धर्म-विचार होगा। वह केवल परिशुद्ध तत्त्वज्ञान में सहज पहुँचा देनेवाला उसका वाहन है। पंथ और मुकाम में जो फर्क और सम्बन्ध है, वही धर्म और मोक्ष में है।

संपत्ति-दान-यज्ञ मोक्ष-विचार नहीं, धर्म-विचार है। अर्थात् वह निरपेक्ष विचार नहीं, सापेक्ष विचार है। निरपेक्ष विचार में न तो संपत्ति रहेगी, न दान। और शायद यज्ञ भी न रहेगा यज्ञ भी यजनीय को, यज्ञ करनेवाले से पृथक् मान

लेता है। जहाँ इतना भी पृथक्भाव नहीं रहेगा, वहीं यज्ञ उठ जायगा या मनुष्य का सादा सरल जीवन ही स्वयमेव यज्ञ हो जायगा।

धर्म-विचार की दीक्षा

हम छठा हिस्सा माँगते हैं, तो क्या 'पांच बटे छठा' संग्रह करते हैं? पर हमारे मान्य करने का सवाल ही नहीं है। वह भला मनुष्य छह बटा छठा संग्रह ही मान्य कर रहा है। उसकी उस मान्यता को हम धक्का देते हैं, एक बटा छठा हिस्सा माँगकर। उसे हम विचार के लिए प्रेरित करते हैं। भक्तों ने कहा था : 'जिसने एक दफा हरिनाम बोल लिया, उसने मोक्ष-प्राप्ति के लिए कमर कस ली।' जिसने एक जीवन-निष्ठा के तौर पर एक बटा छह समाज को निरंतर अर्पण करने का नियम कबूल किया, उसने अपनी सारी संपत्ति, अपना सारा जीवन, यहाँ तक कि अपना शरीर-निर्वाह भी समाज को अर्पित करने के लिए कमर कस ली। संपत्ति-दान-यज्ञ को तरफ देखने की यह दूरदर्शी दृष्टि है।

आवाहन

यह बात जिन मित्रों को हृदयंगम होगी, उनसे मैं आशा करूँगा कि वे चाहे गरीब हों, चाहे धनी, चाहे भोगी सांसारिक हों, चाहे त्यागी कार्यकर्ता, संपत्ति-दान-यज्ञ में खुद दीक्षित हों और इस विचार का प्रत्यक्ष कृति से अधिक संशोधन करें। मैं इसमें अधिक गहरा जाना चाहता हूँ। तुरंत व्यापक प्रचार की मेरी कल्पना नहीं। कुछ लोग इस विचार के दीक्षित हो जायँ, उसके बाद इसका व्यापक प्रचार स्वयमेव होगा और हम उसे प्रयत्नपूर्वक भी करेंगे।

कुरु (राँची)
२५-११-'५२

मानव-पक्षी के दो पंख : आत्मज्ञान और विज्ञान : ५६ :

आप सब लोग मेरी बात सुनने के लिए यहाँ इतनी तादाद में बहुत उत्सुकता से आये हैं। मैं कुछ बातें आपको सुनाऊँ, ऐसी आप आशा रखते हैं और मेरी भी इच्छा है; लेकिन आप सुननेवाले कौन हैं और मैं बोलनेवाला कौन हूँ, यह भी जरा सोचने की बात है। आप कानों से सुनेंगे और मैं जबान से बोलूँगा। पर सिर्फ कान नहीं सुनते, अंदर कोई चीज है और वही सुननेवाली है। कानों से सुना जाता है, पर कान खुद नहीं सुनते, सुननेवाला तो अंदर कोई अलग है। वैसे ही बोलनेवाला भी जबान से अलग है, वही बोलने के लिए जबान का उपयोग कर लेता है। लेकिन जो सुननेवाला है, वह भी नहीं सुन सकता, अगर कान न होते। साथ ही सिर्फ कान भी सुन नहीं सकते, अगर सुननेवाला कोई अंदर न होता। इसी तरह बोलनेवाला न होता, तो जबान न बोल सकती। और जबान न होती, तो बोलनेवाला नहीं बोल सकता। यह एक संयोग है, अकेली कोई चीज नहीं। हममें दो हिस्से मौजूद हैं। एक वह हिस्सा, जिसका हम औजार की तरह उपयोग करते हैं। दोनों हमारे जुज हैं। दोनों मिलकर एक हो जाता है।

सारी सृष्टि के दो मसाले

हरएक व्यक्ति और सृष्टि में दो तरह के मसाले हैं : एक को सहूलियत के लिए 'देह' कहते हैं और दूसरे को 'आत्मा'। लेकिन नाम कुछ भी हो, उसका स्वरूप शब्दों में बताना मुश्किल है। फिर भी हर कोई दोनों का अनुभव लेता है। देह और आत्मा, दोनों का दृढ़ संबंध है। दोनों का पोषण किये बगैर—दोनों को अपनी-अपनी खुराक दिये बगैर—मनुष्य का समाधान नहीं हो सकता और न आनंद ही हासिल हो सकता है। एक मनुष्य को पूरा खाना मिल रहा हो या उससे भी अधिक, तो भी उसका समाधान नहीं हो सकता। खाने से आत्मा तृप्त हुई, ऐसा किसीको भी अनुभव नहीं होता। जो भी थोड़ा विचार करते हैं, वे इसका अनुभव करते हैं। इससे उल्टे शरीर को कुछ भी न मिले, तो तृप्ति नहीं होती। इसलिए शरीर और आत्मा, दोनों हिस्सों को कुछ-न-कुछ देना पड़ता है।

अपने-अपने विकास में कोई शरीर के पक्ष में ज्यादा झुकता है, तो कोई आत्मा के पक्ष में। जो शरीर की तरफ झुकता है, वह 'सुखार्थी' कहलाता है और जो आत्मा की तरफ झुकता है, वह 'आत्मनिष्ठ'। सुखार्थी सुख चाहता है, तो आत्मनिष्ठ श्रेय या कल्याण। लेकिन श्रेय और सुख, दोनों की इच्छा हरएक मनुष्य में मौजूद रहती है; फिर उसका मनुष्य में कम-वेशी परिमाण हो सकता है और अपने-अपने विचार के अनुसार इधर या उधर झुकाव रहता है। मनुष्य जिस-जिस भूमिका पर रहता है, उसीके अनुसार उसका कम-वेशी परिमाण होता है। किंतु दोनों का समाधान करने से ही उसका पूरा समाधान होता है। उसे तृप्ति का अनुभव होता है और लगता है कि मैं ठीक तरह से जीवन जी रहा हूँ।

विज्ञान और आत्मज्ञान में निरंतर प्रगति

मनुष्य के इन दोनों विकास के लिए प्राचीन काल से आज तक लोगों ने कोशिश की और कर रहे हैं। उन्हें शरीर के लिए विज्ञान की और आत्म-कल्याण के लिए आत्मज्ञान की मदद मिली है। दोनों विद्याओं का विकास मनुष्य ने हरएक समाज में किया, हिंदुस्तान में भी और बाहर भी। प्राचीन काल से आज तक विज्ञान और आत्मज्ञान के शोध होते गये, विज्ञान की बदौलत सुख के तरह-तरह के साधन मानवों को मिले। सुख-साधनों का विस्तार हुआ। वे शोध निरंतर आगे बढ़ते जा रहे हैं। आज प्राचीनों की अपेक्षा हमारे पास उपभोग की चीजें बहुत अधिक मात्रा में हैं। जिन भोग्य वस्तुओं की उन्हें कल्पना तक नहीं थी, उनका हम रोज भोग कर रहे हैं। प्राचीनों ने कभी सोचा भी नहीं था कि हम दूर की खबरें सुन सकेंगे। लेकिन आज यहाँ बैठकर दिल्ली की खबरें सुनना हमारा नित्य का कार्यक्रम हो गया है।

मनुष्य के विकास का यह एक अंग बहुत विकसित हुआ। दूसरे अंग का भी उसने विकास किया। उसके लिए आत्मज्ञान हासिल किया, आत्मा में गोता लगाया। मानव की आत्मा सत्य-निष्ठा, समत्व-बुद्धि, न्याय-वृत्ति, दया, प्रेम, वात्सल्य आदि अनेक गुणों से परिपूर्ण होती है। जैसे आकाश में अनंत तारे होते हैं, वैसे ही आत्मा भी अनंत गुणों से परिपूर्ण है। उनमें से कुछ गुणों का

भान मनुष्य को हुआ है। लेकिन जिनका भान हुआ, उनका भी अभी तक पूरा भान नहीं हुआ है। मनुष्य को सत्य और प्रेम का कुछ भान हुआ है, पर पूरा नहीं। प्रेम के विकास के लिए उसने कुटुंब बनाये, समाज बनाया, राज्य बनाया, तरह-तरह की मर्यादाएँ और नियमन बनाये। फिर भी इसका पूरा विकास नहीं हुआ, अब भी पूरा विकास करना बाकी है। आत्मा के अनेक गुण ऐसे हैं, जिनका अभी भान भी होना बाकी है। जिनका भान हुआ है, उनका भी अभी पूरा भान नहीं हुआ है। मनुष्यरूपी पक्षी के दो पंख हैं : (१) आत्मज्ञान और (२) विज्ञान। इन दो पंखों पर यह पक्षी विहार करता है। उनमें से एक भी पंख टूट जाय, तो उसकी उड़ान खतम हो जायगी। इसलिए दोनों पंखों के सहारे मनुष्य का विहार होता है। दोनों की उसे जरूरत है।

दोनों अंगों का विकास आवश्यक

इन दोनों का ठीक ढंग से समत्व रखकर विकास करने से ही मानव का समाधान हो सकता है। अगर वह किसी एक तरफ झुकता है, तो उसे असमाधान का अनुभव होता है। कुछ लोग अधिक आत्म-परायण होते हैं। वे वैराग्य से जीवन बिताते और आत्मा में बड़ा भारी समाधान पाते हैं। किंतु यह तो चंद लोगों को ही हासिल है कि वे देह की उपेक्षा कर आत्मा में ही समाधान प्राप्त करें। जो देह के ही सुख की ओर झुकते हैं, उनके जीवन में कुछ-न-कुछ ऐसे क्षण आते हैं, जब उन्हें बाहर की वस्तुओं से तृप्ति नहीं होती। मेरे श्रीमान् और गरीब, दोनों दोस्त हैं। उन्हें सारे सुख-साधन हासिल हैं, पर अंदर से दुःख है। बाहर से तो वे सुख का आभास पैदा करने की कोशिश करते हैं, पर उनके अन्तर में गहरा असमाधान होता है। इसी कारण मैंने उन्हें रोते पाया है। वे खाते-पीते हैं, फिर भी समाधान नहीं। वास्तव में सच्चे अर्थ में वे सुखी नहीं हैं। और गरीब तो दुखी हैं ही।

आज दुनिया में असमाधान पाया जाता है, क्योंकि दोनों पंखों का विकास किये बगैर जीवन का सन्तुलन नहीं होता। जिनका पशु-जैसा जीवन है, जीवन के कुछ क्षण ऐसे होंगे, जब उन्हें महसूस होगा कि हमें अंतःसमाधान की

भूख है। और जिन्हें अंतःसमाधान मिलता है, उनके जीवन में भी ऐसे क्षण आते हैं, जब उन्हें प्यास लगती है। उस समय पानी मिल जाने पर वे सुखी होते, पूर्णता का अनुभव करते हैं और पानी न मिले, तो कुछ न्यूनता का अनुभव करते हैं। अत्यंत विरक्त मनुष्य को भी इस तरह का अनुभव होता है।

भारत में आत्मज्ञान और यूरोप में विज्ञान का विकास

समाज की दृष्टि से देखा जाय, तो दोनों हिस्सों का संतुलन करने से ही समाज में समाधान स्थापित हो सकता है। हमारे शास्त्रों ने कहा है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, सबका समाधान करना चाहिए। किसीका झुकाव इधर, तो किसीका उधर होता है। प्राचीन जमाने में इस भरत-भूमि में यद्यपि विज्ञान था, पर आध्यात्मिक तृष्णा अधिक थी। उन लोगों ने आत्मा के गुणों की खोज की, उसके लिए देह को तपाकर बड़ी भारी तपस्या की, जिसका हम गौरव मानते हैं। वह हमारे लिए विरासत के रूप में मिली है। दूसरी (भारतेतर) जगह आध्यात्मिक ज्ञान नहीं था, ऐसी बात नहीं, पर यहाँ वह अधिक था। जिज्ञासा भी अधिक थी। इसलिए अधिक खोज हो सकी। दूसरे देशों में, खासकर पश्चिम के देशों में इन तीन सौ सालों में विज्ञान का अधिक विकास हुआ। इसीलिए आज मनुष्य के सामने दोनों बातें खड़ी हैं। विज्ञान ने इतना सुख-विस्तार किया है, जितना पहले कभी नहीं हुआ था। आज मनुष्य उसके पीछे दौड़ रहा है, फिर भी सुख और समाधान अधिक है, ऐसा हम नहीं कह सकते।

आज के समाज का एकांगी विकास

आज जिस तरह की लड़ाइयाँ होती हैं, वैसी पहले कभी नहीं हुईं। प्राचीन लोगों को इन लड़ाइयों की कल्पना भी नहीं हो सकती थी। एक समूचा देश दूसरे समूचे देश के खिलाफ खड़ा रहेगा, इसकी वे कल्पना भी नहीं कर सकते थे। ये यह नहीं सोचते कि 'दूसरे देश में भी अच्छे लोग हैं, वहाँ भी स्त्रियाँ और बच्चे हैं, पेड़ हैं, प्राणी हैं, जिन्होंने हमें सताया नहीं है' और ऊपर से बम बरसाते हैं, जिससे सब खतम हो जाते हैं। जिन पुस्तकों का अत्यंत प्रेम से

संचय किया जाता है, उनका भी बम से एक क्षण में नाश हो जाता है। समझ में नहीं आता कि जो साहित्य के इतने प्रेमी हैं और सैकड़ों बरसों से संग्रह कर पुस्तकालय बनाते हैं, वे इस तरह जरा भी सोचे बगैर कैसे बम बरसा सकते हैं!

मनुष्य ने सुख-विस्तार तो किया है, पर अंतःसमाधान पाने की दृष्टि और अवकाश उसे आज नहीं मिलता। इसलिए उसका विकास एकांगी हो रहा है। अगर मेरा एक ही हाथ मोटा हुआ, तो मैं यह नहीं कह सकता कि मैं सुखी हूँ। बल्कि मैं यही कहूँगा कि मेरा विकृत विकास हो गया है। इसलिए मैं दुःखी हूँ। मैं डॉक्टर के पास जाकर कहूँगा कि मेरे इस मर्ज का इलाज कीजिये। सारांश, जहाँ विकृत विकास होता है, वहाँ सुख नहीं प्राप्त हो सकता, लड़ाइयाँ ही होती हैं। आज मनुष्य सुख के लिए कितनी कोशिश करता है, फिर भी सुख हासिल नहीं कर पाता, वह दुःखी ही है। वह कोशिश तो सुख की करता है, पर पाता है दुःख ही। जाना चाहता है कलकत्ता और जा रहा है बंबई की तरफ, फिर कलकत्ता कैसे पहुँचेगा? इसका मतलब है कि कुछ पागलपन है, जिसके कारण हम सुख की तरफ जाने की कोशिश करते हुए भी दुःखी हो रहे हैं।

विज्ञान का गलत और सही उपयोग

इसका कारण यही है कि हम आत्मा की तरफ ध्यान कम दे रहे हैं और शरीर का ध्यान बढ़ गया है। आत्मा के जो अनंत गुण हैं, उनका विकास नहीं हो रहा है। जितना सुख-साधनों का विकास हो रहा है, उससे मनुष्य के गुण विकसित नहीं हो रहे हैं और वह दुःखी है। यही इस रोग का निदान है। पहले जमाने में शस्त्र-क्रिया करनी पड़ती थी, तो ढोरों के समान मनुष्य को भी बाँधते और फिर हाथ या पैर चीरते थे। पेट का आपरेशन तो संभव ही नहीं था। पर आज शस्त्र-क्रिया क्लोरोफार्म देने से इतनी आसान हो गयी है कि कुछ पता भी नहीं चलता और बीमारी का इलाज हो जाता है। इतना होने पर भी बीमारियाँ बढ़ ही रही हैं। जितना-जितना वैद्यक शास्त्र का ज्ञान बढ़ रहा है,

उतना-ही-उतना आरोग्य नहीं सुधर रहा है; बल्कि पहले जो लोग सौ साल जीते थे, आज पचास साल में ही मर जाते हैं।

एक भाई ने हमसे कहा था कि इस जमाने में आप पैदल चल रहे हैं, तो आपकी रफ्तार बहुत कम है। लेकिन हरएक काम में वे लोग रफ्तार बढ़ाते हैं, तो परमेश्वर भी उनसे कहेगा कि मैं भी आपके जैसा वेगवान् बनूँगा और आपको ४० साल में ही उठा ले जाऊँगा। आप इतने उतावले हैं और आपको जरा भी सब्र नहीं, तो मुझे भी नहीं है। आज लोग वेगवान् गति से इधर-से-उधर चले जाते हैं, पर जाते समय जरा आसपास की सृष्टि का सौंदर्य भी नहीं देखते। इसलिए ईश्वर भी कहेगा कि मैं क्यों शांत रहूँ। मैं आपको जल्दी उठा ले जाऊँगा।

आज सुख के साधन बढ़ गये हैं, पर उसका नियंत्रण करने की अक्ल तो आत्मा के गुणों में रहती है, जिसकी ओर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। इसीलिए हम दुःखी हैं। अपने पूर्वजों के पास अग्नि नहीं थी, आज है। अग्नि से रसोई बन सकती है और घर भी जल सकता है। इस हालत में विज्ञान क्या रोयेगा? विज्ञान से पूछो, तो वह कहेगा कि अग्नि से रोटी भी पक सकती है और घर भी जल सकता है। दोनों उपयोग उसने बता दिये, पर उनमें से कौन-सा उपयोग तय करना—यह विज्ञान नहीं, आत्मज्ञान तय करता है। जिसके आत्मज्ञान में दोष आयेगा, वह विज्ञान का गलत उपयोग करेगा। आज विज्ञान के सुख-साधनों का गलत उपयोग और गलत बँटवारा हो रहा है। उस पर कोई नियंत्रण नहीं है।

किन चीजों का स्तर बढ़ायें ?

अर्थशास्त्र कहता है कि जीवन का स्तर बढ़ाओ। किंतु किस-किसका बढ़ाओगे? अधिक फल खाओगे, अधिक कपड़े पहनोगे, अधिक सिगरेट-शराब पीयोगे या अधिक शहद खाओगे? दूध, हवा, शराब कुछ भी अधिक बढ़ाओ, तो स्तर (Standard) बढ़ जाता है, परन्तु किस चीज का स्तर बढ़ाना और किसका घटाना, यह कौन तय करेगा? शराब अधिक पीने से स्तर बढ़ता है या घटता है? किन चीजों का स्तर बढ़ाना और किनका घटाना, यह हम

तय करेंगे। हम कपड़े का स्तर बढ़ायेंगे, पर क्या उसके साथ-साथ हवा का कम करेंगे? आजकल लोग छोटे बच्चों को भी कपड़े पहनाते हैं, जिससे उनकी चमड़ी को सूर्य-किरणों का स्पर्श नहीं होता, उनकी हड्डियाँ मजबूत नहीं हो पातीं और वे कमजोर रहते हैं। फिर कपड़ों का स्तर बढ़ाया और सूर्य-किरणों का घटाया, तो इससे क्या लाभ होगा!

दूसरी बात यह है कि अच्छी चीज का भी स्तर कितना बढ़ाना, यह सोचने की बात है। दूध अच्छी चीज है, पर वह भी अधिक पीने से हानिकारक हो जाता है। इसलिए बुरी चीजों का स्तर न बढ़ाना और अच्छी चीजों का भी स्तर अधिक न बढ़ाकर एक मर्यादा कायम करना, यह सब तय करने की शक्ति विज्ञान में नहीं, आत्मज्ञान में है। विज्ञान यह नहीं कह सकता कि कौन-सी चीज कितनी खानी चाहिए। जीभ यह नहीं बता सकती कि कौन-सी चीज इष्ट है और कितनी खानी है। वह तो सिर्फ रुचि बतायेगी। इष्ट-अनिष्ट तय करने का काम तो आत्मा करेगा।

विज्ञान पर आत्मज्ञान का अंकुश हो

इस तरह आत्मज्ञान का अंकुश चाहिए, तभी विज्ञान का अच्छा उपयोग हो सकता है। कुछ लोग कहते हैं कि 'विनोबा विज्ञान को पसन्द नहीं करता।' लेकिन ऐसी बात नहीं है। मैं विज्ञान को बहुत चाहता हूँ। सृष्टि की शक्तियों का भान होना, उनका ज्ञान होना और काबू में आना अच्छी बात है। लेकिन उसका उपयोग, बँटवारा, नियोजन और नियन्त्रण कैसे रहे, यह आज मनुष्य जानता नहीं है, या जानता है, तो गलत जानता है। न जानना और गलत जानना, दोनों कारणों से वह दुःखी है। हम कहते हैं कि परमेश्वर ने हमें जो देनें दी हैं, उनका आत्मा के आधार पर उपयोग करना चाहिए।

अभी मैं किसी भी बहन से पूछूँ कि तुम्हारे लड़के कितने हैं, तो वह कहेगी: 'चार या पाँच।' लेकिन क्या आपके सिर्फ उतने ही लड़के हैं? चार या पाँच लड़के तो आपके शरीर से पैदा हुए हैं, लेकिन जरा आत्मा का ज्ञान करो, तो आप जवाब दोगी कि 'गाँव के सभी बच्चे हमारे हैं।' आत्मा

तो अंदर है, आप सिर्फ देह नहीं हैं। आत्मा से जानोगे, तो सही बात ध्यान में आ सकती है।

अंदर से आवाज आती है कि सारे मेरे हैं, पर मोह और अज्ञान के कारण वह दब जाती है। जब बच्चा रोता है और माँ उसे कौआ दिखाती है, तो उसका रोना बंद हो जाता है, क्योंकि उसे कौए में आत्म-चैतन्य का दर्शन होता है। वह देखता है कि कोई एक आत्मा वहाँ पेड़ पर बैठकर लीला कर रहा है। कौए में वह आत्मा का दर्शन करता और इसीलिए खुश हो जाता है। बच्चा खुद प्रकट नहीं कर सकता, पर अनुभव करता है। प्रकट करने के लिए तो कोई बुद्ध, ईसा या गांधी चाहिए, पर अनुभव करने के लिए बच्चे के पास हृदय पड़ा है। इसलिए आत्मा के अंकुश में दुनिया के सारे व्यवहार होने चाहिए, फिर चाहे जितना विज्ञान बढ़ाओ।

अहिंसा—आत्मा का गुण

इसलिए हमने इस बात पर जोर दिया है कि विज्ञान के साथ अहिंसा लानी चाहिए। आत्मा के बारे में कहा गया है : 'नाऽयं हन्ति न हन्यते'—याने आत्मा न किसीका नाश कर सकता है, न उसका कभी नाश होता है। अहिंसा आत्मा का मूलगुण है। इसलिए विज्ञान और अहिंसा एक साथ लाओगे, तो पृथ्वी पर स्वर्ग आ सकेगा। परन्तु हिंसा रखोगे याने आत्मा के गुणों को नहीं रखोगे, तो यही विज्ञान मानव के घात का कारण बन जायगा।

दुनिया के नेता प्रवाह में बह रहे हैं

मैं जब आज के भिन्न-भिन्न देश के नेताओं की ओर देखता हूँ, तो मुझे लगता है कि वे कितने बच्चे हैं! वे अपने देश के सब मनुष्यों पर काबू रखने का दावा करते हैं, पर उनका अपने ही मन, अपनी ही इंद्रियों पर काबू नहीं है। मन में काम, क्रोध सभी हैं। जिनका अपने ऊपर अधिकार नहीं, वे सारे देश को 'लीड' करते और योजना बनाते हैं, लेकिन योजना ही उनके पीछे लगती है। ये सारे एक प्रवाह में बहनेवाले हैं। लोग कहते हैं कि 'दुनिया में दो महायुद्ध हुए, और एक तीसरा विश्वयुद्ध होनेवाला है', तो मैं आह्वान दे देता हूँ कि होने दो। World War तो Divine होती है। मनुष्य

'वर्ल्ड वार' नहीं करता, वह उसमें बह जाता है। दुनिया के सभी देशों के नेता उसमें बह रहे हैं। चर्चिल से कई बार यह सवाल पूछा गया कि इस 'विश्वयुद्ध' का उद्देश्य क्या है ? उसने कई दिनों तक जवाब नहीं दिया। आखिर में कह दिया कि 'विश्वयुद्ध का और कोई उद्देश्य नहीं हो सकता, सिर्फ एक ही उद्देश्य है, जीत हासिल करना।' इसका मतलब यह है कि ये जो लड़ाइयाँ लड़ी जाती हैं, उनका कोई उद्देश्य नहीं होता। देश लाचार होकर लड़ाइयाँ लड़ते हैं, यंत्रवत् बनकर लड़ते हैं, एक प्रवाह में बहकर लड़ते हैं। प्रवाह से कैसे बचना, यह ये लोग नहीं जानते।

अहिंसा के रास्ते से ही दुनिया का बचाव

आज हिंदुस्तान की आवाज दुनियाभर में पहुँच रही है, यद्यपि हमारे पास भौतिक शक्ति बहुत कम है। इसका कारण यही है कि हिंदुस्तान में दूसरी शक्ति है। यहाँ एक ऐसा नेता निकला, जिसने राजनैतिक आजादी हासिल करने के लिए एक अजब शस्त्र दिया। हिंदुस्तान की आजादी की लड़ाई इतिहास में विशेष प्रकार की मानी जायगी। उसका परिणाम भी दुनिया पर हो रहा है। फिर हिंदुस्तान की सभ्यता और संस्कृति भी ऐसी है, जिसने मानव को आवाहन दिया था। इसीलिए हिंदुस्तान पर दुनिया की आशा लगी है। लेकिन हमारी आवाज अभी दुर्बल है, उसका दुनिया पर प्रभाव नहीं पड़ता। कारण, हमारी बाकी की सारी समस्याएँ वैसी ही पड़ी हैं। हम उनको किस ढंग से हल करते हैं, इसी पर सारा निर्भर है। अगर हिंसा से हल करो, तो दुनिया समझ लेगी कि ये लोग भी हमारे जैसे ही बहाव में बह रहे हैं। लेकिन अगर हम अपने मसले आत्मा और अहिंसा के तरीके से हल करने की सोचेंगे, तो हिंदुस्तान स्वयं तो बच ही जायगा और दुनिया को तारनेवाला भी साबित होगा।

आज जो भूमि का मसला है, वह हल होकर ही रहेगा। दूसरे देशों में इसे हल करने के लिए दूसरे तरीके आजमाये गये हैं। अगर हम यहाँ भी वे ही तरीके आजमायें, तो हमारी विशेषता नहीं रहेगी, हम सुखी नहीं होंगे। परंतु अगर हमने यहाँ का मसला अपने ढंग से हल किया, तो दुनिया में हम बच

जायँगे। मेरी सारी कोशिश यह है कि हमारे सारे मसले आत्मा के तरीके से हल हों। इस चीज को आप समझ लेंगे, तो हिंदुस्तान के सारे मसले आत्मा के तरीके से हल हो सकते हैं। इसलिए तय करो कि कौनसा ढंग अपनाना है। भूमि का मसला हल हुए बगैर तो रह नहीं सकता, यह हल होनेवाला ही है। आपके सामने सिर्फ यही सवाल है कि आत्मा के तरीके से हल करके दुनिया के नेता बनें। आज दुनिया आपका नेतृत्व स्वीकारने के लिए तैयार है। अगर यह नहीं करना हो, तो अमेरिका या रशिया का गुरुत्व मानकर उनके चरणों का अनुकरण करना होगा। यह करना हो, तो आप कर सकते हैं। परंतु दूसरा जो रास्ता है, वह भारत का, आत्मा का और गांधीजी का रास्ता है। उस रास्ते से जाना चाहो, तो जा सकते हो। मुझे उम्मीद है कि हिंदुस्तान की आवाज, भारत की संस्कृति की आवाज मैं आपको सुना रहा हूँ और आप उसे सुन रहे हैं। इसलिए जो आग मेरे दिल में है, वह आपके दिल में पैदा हुए बगैर नहीं रहेगी।

राँची
२९-११-'५२

हमारा स्वतंत्र और अक्षीण विचार : ६० :

समुद्र में नदी-नाले सब आ पहुँचते हैं। जो नदियाँ कहलाती हैं, वे भी दरअसल शुरू में नाले ही होते हैं; परन्तु कुछ नाले ऐसे होते हैं, जो आखिर तक नाले ही रहते हैं। कुछ नदी कहलानेवाले नाले नदियाँ बन जाते हैं। कहीं नदियों का उद्गम स्थान देखने जायँ, तो जी हैरान हो जाता है। वहाँ कुछ भी नहीं दीखता और निश्चित उद्गम कहाँ है, यह भी नहीं कहा जा सकता। फिर उसमें दूसरे नाले मिलते हैं, तो वह नदी हो जाती है।

क्षीण और अक्षीण विचार

लेकिन उन्हींको नाले क्यों कहा जाय, यह सवाल उठता है। गंगा में यमुना मिली या यमुना में गंगा ? ऐसा सवाल खड़ा हो सकता है।

परन्तु कुछ नाले ऐसे होते हैं, जिनमें निज का स्रोत होता है। दूसरे उसमें आयें या न आयें, वे नहीं सूखेंगे। चाहे वे बड़ा रूप न भी लें, पर कभी क्षीण नहीं होते, अक्षीण ही रहते हैं। किन्तु कुछ ऐसे होते हैं, जो बड़े होने पर भी सूख जाते, क्षीण हो जाते हैं। यही बात विचार-प्रवाह को भी लागू होती है। कुछ विचार शुरू हुए और फिर क्षीण हो गये। लेकिन कुछ शुरू हुए और बहते ही रहे। इसी तरह आन्दोलन भी होते हैं। अक्षीण विचार पर जो आन्दोलन शुरू होता है, वह निरंतर बढ़ता जाता है, नया-नया रूप लेता है। परन्तु जो आन्दोलन अक्षीण विचार पर नहीं खड़ा होता, वह कुछ समय बाद खतम हो जाता है।

साम्राज्यवाद—एक अल्पायु विचार

साम्राज्यवाद एक ऐसा ही विचार था, जिसके पीछे कम ताकत नहीं थी। अंग्रेजों ने हजारों मीलों से आकर यहाँ कितना त्याग और कष्ट उठाया, पराक्रम किया! पराक्रम और त्याग के कारण विचार का विस्तार भी हुआ। किन्तु वह अक्षीण विचार नहीं था। उसमें सारी मानव-जाति के निरंतर कल्याण का अमरतन्तु नहीं था। इसीलिए साम्राज्यवाद का वह विचार डेढ़ सौ साल बाद क्षीण हो गया। अभी भी वे लोग उसे चलाने की कोशिश तो कर रहे हैं, अपना दबदबा रखना चाहते हैं, लेकिन समझनेवाले समझ गये हैं कि यह विचार टिकनेवाला नहीं है, क्योंकि इसमें सतत प्रेरणा देनेवाला कोई विचार नहीं है।

मार्क्सवाद भी ह्रास की ओर

इसी तरह मार्क्सवाद ने सौ साल तक प्रेरणा दी। किन्तु आज उसका उतना बोलबाला नहीं, जितना सौ साल पहले था। क्योंकि उसके विचार में अमर अंश कम था और अस्थायी ज्यादा। साम्राज्यवाद की बुराइयों और कमियों के प्रतिक्रियास्वरूप कुछ विचार पैदा होते हैं। ऐसे प्रतिक्रियास्वरूप विचार उस समय बहुत-बहुत परिणामकारी भी होते हैं, उस-उस जमाने में बहुत प्रभाव डालते हैं, पर जिसके विरोध में वे खड़े होते हैं, वह मूल खतम

होते-होते ये भी विचार खतम हो जाते हैं। इसी तरह साम्राज्यवाद खतम होते-होते उसके प्रतिक्रियास्वरूप जो विचार पैदा हुए, वे भी खतम होते जा रहे हैं। जिस लकड़ी को आपने आग लगायी, उस आग ने लकड़ी को तो जला दिया। पर चूँकि आग लकड़ी से ही पैदा होती है, इसलिए लकड़ी के साथ आग भी जल गयी। सूर्य-किरणें किसीको जलाती नहीं, कारण वे अक्षीण होती हैं। लेकिन लकड़ी से पैदा हुई आग प्रचण्ड बरबादी भी कर सकती है, पर वह खुद खतम हो जाती है। लन्दन को आग लगी, तो उसने कितनी बरबादी की, पर आखिर में आग भी नहीं रही। इसी तरह आज मार्क्स के विचारों में जो कुछ त्रुटियाँ और कमियाँ हैं, अब लोगों का ध्यान उन पर जोरों से खिंच रहा है। हिन्दुस्तान में मार्क्स के विचारों को अब परिपूर्ण उत्तर मिलनेवाला है, क्योंकि यहाँ पर एक अक्षीण विचार चलता आ रहा है।

बुद्ध का अमर विचार

भगवान् बुद्ध की जयन्ती अब ढाई हजार साल बाद शुरू हुई है। जिसकी जयन्ती ढाई हजार साल बाद शुरू होती है, उसकी क्या कभी मयन्ती होगी! जो पौधा जल्दी उग जाता है, वह जल्दी खतम हो जाता है और जो देरी से उगता है, वह खतम नहीं होता। बुद्ध के विचार की जयन्ती हम आज मनाते हैं, क्योंकि उसमें निर्वैरता की एक ऐसी अमर कल्पना है कि उसके आधार से मानव आगे बढ़ सकता है। दुनिया में जैसे-जैसे अधिक वैर बढ़ेगा, वैसे-ही-वैसे इसका भान होनेवाला है। विज्ञान जोरों से बढ़ रहा है और हमें सिखाता है कि या तो अत्यन्त वैर करो या बिलकुल न करो। अब छोटी-छोटी लड़ाइयाँ नहीं हो सकतीं। उनका जमाना चला गया। अब तो बड़े पैमाने पर खूब लड़ लो या लड़ना छोड़ दो, ऐसा चुनाव विज्ञान ने हमारे सामने रखा है। वह हमें अहिंसा और निर्वैरता या विश्वव्यापी वैर, इनमें से किसी एक को चुनने की आज्ञा देता है। किन्तु विश्वव्यापी वैर में से मनुष्य खुद खतम होता है, इसलिए वह उसे स्वीकार नहीं कर सकता। जितनी-जितनी विज्ञान की प्रगति होगी, दुनिया में उतने-ही-उतने गीता और धम्म-पद पढ़े जायँगे, क्योंकि उनमें अमरमूल्य, अमरतंतु हैं।

हमारा विचार स्वतंत्र है, किसी का उत्तर नहीं

कोई कहते हैं कि 'मेरा आन्दोलन कम्युनिस्टों को उत्तर है'। किन्तु यह तो एक स्वतंत्र विचार है, किसीके विरोध में पैदा नहीं हुआ है। अवश्य ही तेलंगाना में इसका आरम्भ हुआ, पर हम किसीको उत्तर नहीं दे रहे हैं। सूर्य-किरणों से पूछो कि क्या तुम अन्धकार का उत्तर हो? तो वे कहेंगी कि 'कहाँ है अन्धकार, जरा दिखाओ तो!' क्योंकि अन्धकार उनके सामने टिक ही नहीं सकता। उनके आते ही अन्धकार खतम हो जाता है। हमारा आन्दोलन एक नित्य जीवन-विचार लेकर निर्माण हुआ है। नहीं तो सिर्फ डेढ़ साल में वह इतना व्यापक कैसे हो पाता?

आखिर मैंने उसके लिए क्या किया है? कोई बड़ी-बड़ी किताबें नहीं लिखीं। मैं काम करने के लिए निकल पड़ा और काम करता गया। यह काम इतना फैला, इसका कारण सिवा इसके कोई नहीं कि इनमें एक जीवन-विचार है। मुझमें कोई शक्ति नहीं है कि बड़े-बड़े नेता मेरे पास आकर कहें कि 'हम इस विचार को मानते हैं, हम इस विचार को फैलाना चाहते हैं।' मुझमें कोई चमत्कार नहीं, मैं कोई नेपोलियन नहीं, जो चमत्कार कर सकूँ। किन्तु जिसने ३० साल तक एकान्त में भंगी-काम, बुनाई जैसे काम किये, इस तरह के काम करनेवाला शख्स निकल पड़ता है और लोग उत्सुकता से उसके विचार को ग्रहण करते हैं, यह क्या बात है? इसलिए यह विचार किसीको उत्तर नहीं, किसी मौजूदा गलत विचार का खण्डन नहीं है।

मार्क्सवाद के नुक्स नजर आ रहे हैं

मार्क्सवाद तो साम्राज्यवाद और पूँजीवाद का उत्तर था, इसलिए ये दोनों क्षीण होते गये, तो मार्क्सवाद भी क्षीण होता गया। मार्क्सवाद तो उन्हींका बेटा है, इसलिए उन्हीं पर निर्भर करता है। वह बहुत अधिक फैला, क्योंकि ये दोनों भी बहुत फैले थे। इसलिए मार्क्स की किताब भी उस समय बहुत फैल गयी। वह एक ऐसा शास्त्रीय और कठिन ग्रंथ है कि मार्क्सवाद के प्रेमियों में सैकड़ों में से एकआध उसे पढ़ता होगा, सैकड़ों पढ़नेवालों में से एकआध पार करता होगा और सैकड़ों पार करनेवालों में से एकआध समझता होगा।

किन्तु इतना कठिन होने पर भी वह चला, क्योंकि उसकी उस समय बहुत आवश्यकता थी। उस समय की बुराइयों में से कैसे छूटें, इसका जटिल और व्यापक तत्त्वज्ञान वह बताता था। लेकिन आज लोग देख रहे हैं कि मार्क्स के कई भविष्य तो गलत निकले। अक्सर उसे वैज्ञानिक कहा जाता था और वह वैज्ञानिक-जैसे भविष्य करता था। किन्तु अगर वह वैज्ञानिक होता, तो 'यूक्लिड' का भविष्य तो गलत नहीं निकला; फिर इसका क्यों गलत निकला? इसीलिए कि उसके ज्ञान की सीमा थी। कोई भी मनुष्य सर्वज्ञ नहीं बन सकता। जिस परिस्थिति में वह पला, उसका असर उस पर हुए बिना नहीं रहा। यद्यपि वह एक ऋषि था और उसने कल्पना से भी बहुत बातें समझने की कोशिश की, यहाँ तक कि हिन्दुस्तान पर भी उसने कुछ लिख डाला। फिर भी जो स्थूल 'डाटा' होता है, वह आसपास की परिस्थिति देखकर बनता है और उस पर योजना बनायी जाती है। इसलिए उसमें नुक्स और कमियाँ होती हैं।

हमारे विचार की जड़ें गहराई में

इस आन्दोलन की तरफ इस दृष्टि से न देखिये कि इससे सिर्फ हिन्दुस्तान की आज की आवश्यकता पूरी होती है। मैं मानता हूँ कि यह जमाने की माँग है, इसलिए यह विचार फैल भी रहा है। किन्तु इतने भर से इस विचार को नापेंगे, तो इसका पूरा महत्त्व नहीं समझ सकेंगे।

लोग मुझसे पूछते हैं कि 'आप 'भूदान-यज्ञ', 'सम्पत्ति-दान-यज्ञ' इस तरह क्यों कहते हैं? 'दान' और 'यज्ञ' का डबल इञ्जन किसलिए है? 'फण्ड' भी तो कह सकते हैं।' लेकिन अगर पहाड़ पर रेल ले जानी हो, तो डबल इञ्जन के बिना कैसे चलेगी? हमारा जो विचार है, वह यहाँ की भूमि में पैदा हुए विचार के साथ जोड़ बैठानेवाला है। वह आज की आवश्यकताएँ पूरी करनेवाला है और वैदिक मंत्रों से भी इसका मेल बैठता है। मैं इस विचार के लिए वेद और उपनिषदों में से कई मंत्र कह सकता हूँ। इसीलिए तो यह सबका दिल खींचता है। हमने एक ऐसा विचार पैदा किया है, जिसका मूल इस भरत-भूमि में गहरा गया है। यह एक अमर और अक्षीण विचार है।

शीघ्र पहुँचानेवाली सीधी राह

लोग पूछते हैं कि 'हम किसीको दबा तो नहीं सकते, तो भूदान मिलना कैसे सम्भव है ?' लेकिन मैं पूछता हूँ कि हम दबा तो नहीं सकते हैं, इसलिए भूदान न मिलना कैसे सम्भव है ? क्योंकि जहाँ हम दबाते नहीं, रिझाते हैं, वहाँ दान क्यों नहीं मिलेगा ? किसी नाटकवाले से पूछो कि रिझानेवाले नाटक में लोग अधिक आते हैं या कम ? हम तो खिझाते नहीं, रिझाते हैं, इसलिए भूमिदान जरूर मिलना चाहिए। मेरा विश्वास है कि प्रेम और शान्ति से जो काम बनता है, वह और किसीसे नहीं बन सकता। इन्हींसे काम जल्दी भी बन सकता है। 'यूक्लिड' ने कहा है कि दो बिन्दुओं के बीच जल्द-से-जल्द पहुँचना हो, तो सीधी लाइन खींचो। लेकिन ये बड़े-बड़े कूटनीतिज्ञ टेढ़ी लाइन खींचने की कोशिश करते हैं, जब कि सीधी लाइन से ही जल्दी पहुँच सकते हैं। किसी विमानवाले से पूछो, तो वह कहेगा कि सीधे जाने से ही जल्द पहुँच सकते हैं। इसलिए हमारा मार्ग सीधा, प्रेम का है, तो उससे जल्द-से-जल्द काम होगा।

तिरोल

३०-११-'५२

उप-शीर्षकों का अनुक्रम

सन् १९५७ के लिए सर्वोदय-स्वाध्याय-योजना

सन् '५७ के लिए सर्वोदय-स्वाध्याय-योजना नये रूप में शुरू की जा रही है।

सन् '५५ और '५६ की सर्वोदय-स्वाध्याय-योजनाओं में रही हुई कमियों से बचने के लिए यह योजना बनायी जा रही है, जिसकी रूपरेखा इस प्रकार है :

१. यह योजना १ जनवरी '५७ से आरम्भ हो रही है। योजना-सदस्यता-शुल्क १०) है। एक संस्था एक से अधिक संख्या में सदस्यता-शुल्क जमा करा सकती है। सदस्यता-शुल्क का रुपया स्थानीय प्रमाणित खादी या साहित्य-भण्डारों में ही जमा करना चाहिए। वहीं से साहित्य भी लेना होगा। राजघाट, काशी को शुल्क न भेजा जाय।

२. सदस्यों को तीन-चौथाई मूल्य में साहित्य मिलेगा। १०) में कुल मिलाकर १३।-) का साहित्य प्राप्त होगा, जो लगभग तीन हजार पृष्ठों का होगा। सदस्यों को किताब देने पर भण्डार अपने पासवाली रसीद पर सदस्यों के हस्ताक्षर लेता रहेगा, ताकि सदस्यों को पुस्तकें ठीक से मिलती रहें।

३. इस योजना में सेट नं० १ और नं० २ से भिन्न, सर्व-सेवा-संघ से प्रकाशित नयी पुस्तकें रहेंगी। पुस्तकें जैसे-जैसे प्रकाशित होती रहेंगी, सम्बन्धित भण्डारों से उपलब्ध हो सकेंगी। १॥) मूल्य तक की हर पुस्तक योजना में दी जायगी। १॥) से ऊपर के मूल्य की पुस्तक योजना के अन्तर्गत नहीं रहेगी। टेक्निकल, शास्त्रीय तथा हिन्दी के अलावा अन्य भाषाओं की पुस्तकें भी शामिल नहीं रहेंगी।

४. प्रमाणित साहित्य-भण्डारों के पास सर्व-सेवा-संघ प्रकाशन की ओर से एक तिपानी रसीद-बुक रहेगी और उनके पास सदस्य बनाने का अधिकृत प्रमाण-पत्र रहेगा। शुल्क जमा करने पर रसीद की एक प्रति सदस्य को दी जायगी और एक प्रति प्रकाशन-दफ्तर, काशी में पहुँचती रहेगी। वह रसीद ही सदस्यता-फार्म समझा जायगा। अलग से कोई फार्म नहीं रहेगा।

५. २० या अधिक सदस्य एक साथ बनना चाहेंगे, तो उन्हें काशी से सदस्य बनाया जा सकेगा। उनका शुल्क एक साथ काशी आना चाहिए। उन्हें एक साथ ही साहित्य किसी भी रेलवे-स्टेशन-पहुँच दिया जा सकेगा। फुटकर सदस्य काशी से नहीं बनाये जायेंगे।

—संचालक